संस्कृति की राजनीति के विशेष सन्दर्भ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का एक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी से राजनीति विज्ञान
विषय में डॉक्टर ऑफ फिलासफी
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

2008

निर्देशक
डा0 रिपुसूदन सिंह
रीडर, राजनीति विज्ञान
डी0 वी0 (पी.जी.) कालेज, उरई

शोधार्थी
राममुरारी चिरवारिया
एम. ए. (राजनीति विज्ञान)
डी0 वी0 (पी.जी.) कालेज, उरई

शोध केन्द्र

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई

डा0 रिपुसूदन सिंह
रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग
एवं शोध केन्द्र
डी0 वी0 (पी.जी.) कालेज,
उरई (जालौन) उ0 प्र0

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री राममुरारी चिरवारिया ने राजनीति विज्ञान विषय में "पीएच. डी" हेतु शीर्षक **"संस्कृति की राजनीति के विशेष सन्दर्भ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का एक अध्ययन"** पर मौलिक शोध कार्य मेरे निर्देशन में नियमानुसार अपेक्षित समय सीमा के अन्तर्गत २००दिन पूर्ण किया है। मैं इसे परीक्षकों के मूल्यांकन हेतु संस्तुति करता हूँ।

दिनांकः– 02-08-08

(डा0 रिपुसूदन सिंह)

घोषणा पत्र

मैं राममुरारी चिरवारिया यह घोषित करता हूँ कि राजनीति विज्ञान विषय के अन्तर्गत **''संस्कृति की राजनीति के विशेष सन्दर्भ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का एक अध्ययन''** शीर्षक पर पीएच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत यह शोध प्रबन्ध मेरे स्वयं का मौलिक प्रयास है। मेरी जानकारी में उक्त विषय पर किसी भी अन्य शैक्षणिक संस्था में शोध कार्य नहीं किया गया है।

दिनांकः–2/8/08

(राममुरारी चिरवारिया)

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

प्राक्कथन

14वीं एवं 15वीं शताब्दी में यूरोप हुये पुर्नजागरण के चलते ज्ञानोदय हुआ। ज्ञान–विज्ञान के प्रकाश में मनुष्य स्वयं अध्ययन का केन्द्र बिन्दु बना गया। धर्म और संस्कृति जैसे मुददे पृष्टिभूमि में चले गये। इसके चलते आगे चल कर वैज्ञानिक क्रान्ति हुई। वैज्ञानिक क्रान्ति ने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया। इन दोनों ने मिलकर आधुनिकतावाद को जन्म दिया। आधुनिकतावाद के गर्भ से पूँजीवाद और साम्यवाद जैसी विचारधाराओं का जन्म हुआ। जहाँ पर पूँजीवाद के प्रवर्तक के रूप में जेरमी बेन्थम जैसे विचारकों ने उपयोगिता को राज्य का आधार बनाया और मनुष्य को एक सुखवादी प्राणी घोषित किया और अधिक से अधिक लोगों को अधिक से अधिक सुख बाँटने की वकालत की। इस दर्शन ने जहाँ एक ओर सुख समृद्धि की बात की तो दूसरी ओर समानता के मुद्दे को नजरअंदाज किया। इसकी प्रतिक्रिया में मार्क्स ने भौतिकवाद पर आधारित साम्यवादी दर्शन का प्रतिपादन किया जिससे उसने अधिक से अधिक लोगों में सुख के स्थान पर विश्व के सभी मेहनत से काम करने वाले लोगों को सुख (रोटी कपड़ा और मकान व अन्य भौतिक संसाधन) देने की वकालत की।

उपर्युक्त दोनों दर्शन ने संस्कृति और धर्म के मुद्दे को नगण्य माना और इस बात पर बल दिया कि मनुष्य के भौतिक विकास में ही जीवन के सारे अर्थ छिपे हुये हैं। लेकिन 20वीं शताब्दी के आते आते उपर्युक्त दोनों दर्शन सभी मनुष्यों के सारे भौतिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में सफल नहीं रह सके जिससे एक ऐसी

विचारधारा के प्रबल होने व पनपने का मौका दिया जिसने सभ्यता, संस्कृति, धर्म, परम्परा, रूढ़ि जैसे मुद्दों को केन्द्र में ला दिया। इस विचारधारा को आदर्शवाद के नाम से जाना गया। इस आदर्शवादी विचारधारा के विचारकों ने घोषित किया कि दुनिया रोटी, कपड़ा और मकान से भी बड़ी है और उसको सभ्यता, संस्कृति, धर्न जैसे आदर्शों के लिये त्यागा जा सकता है। ऐसे ही अर्न्तद्वन्द्व के बीच प्रथम विश्व युद्ध हुआ। इस विश्व युद्ध ने आदर्शवादी विचारधारा में एक नयी जान डाल दी जिसके चलते यूरोप में मुसोलनी और हिटलर का उदय हुआ। उन्होंने भौतिक के स्थान पर अधिभौतिक, आध्यात्मिक व आदर्शवादी बातों पर विशेष बल दिया। उनके लिये राज्य साध्य बना, मनुष्य साधन। उनके राजनैतिक शब्दावली में राष्ट्रवाद, त्याग, बलिदान, उत्सर्ग इत्यादि शब्दों का बोलबाला रहा।

1920 के दशक में भारत में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जन्म हुआ जिसने अपने आपको तत्कालीन राजनैतिक मुद्दे जैसे राष्ट्रीय स्वाधीनता, आर्थिक उत्थान, बेरोजगारी, गुलामी इत्यादि से अलग रखा और संस्कृति, धर्म के मुद्दों को प्रमुख स्थान दिया। आजादी के बाद भारत में भी संस्कृति के मुद्दे को उतना महत्व नही दिया गया जितना उसे मिलना चाहिये था। इस रिक्तता को जाने अनजाने में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने भरा और आगे चल कर संस्कृति एक प्रमुख मुद्दा बन गया। इस सन्दर्भ में पी. हंटिग्टन की पुस्तक **'सभ्यता का संकट'** और नव हीगलवादी फ्रांसिस फुकुआमा की **'End of History' (इतिहासान्त)** विगत एक दशक से चर्चा के विषय बने हैं। इस शोध के

माध्यम से यह भी देखने का प्रयास किया जायेगा कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे वैचारिक परिवर्तनों का राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ व भारतीय राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। इस शोध के माध्यम से यह देखने का प्रयास करना है कि इस **संस्कृति की राजनीति** के क्या निहितार्थ है ? क्या ये सब प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किये जा रहे हैं या वास्तव में संस्कृति को लेकर गम्भीर चिन्तन है ? ज्ञान की वर्तमान स्थिति इस मुद्दे पर आज भी आशाजनक नहीं है। इस क्षेत्र में गम्भीर व वस्तुपरक शोधकार्य करने की आवश्यकता रही है जिस दिशा में एक कदम बढ़ाना इस शोध का उददेश्य है।

अतीत का वैज्ञानिक विश्लेषण करे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी सभ्यता का निर्माण वहाँ की संस्कृति करती है। संस्कृति या सांस्कृतिक चेतना के अभाव में मनुष्य एक विकसित पशु के ज्यादा कुछ नहीं था। लेकिन यह भी सत्य है कि संस्कृति ने मनुष्य की प्राकृतिक निश्चलता को नष्ट किया और आगे चल कर वही संस्कृति दमन और शोषण का भी औजार बनी। भारत की समकालीन राजनीति में आर्थिक और सामाजिक विषमताओं के गहराते संकट को नियन्त्रित करने के लिये संस्कृति को एक माध्यम बनाया गया। अब प्रश्न उठता है कि क्या संस्कृति से बढ़ती गरीबी को रोका जा सकता है ? क्या जनता की अन्तहीन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया जा सकता है ?

वर्तमान में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जो एक सांस्कृतिक संगठन होने का दावा करता है पर भाजपा को अपनी राजनीतिक शाखा मानता है। क्या वास्तव में संघ एक

सांस्कृतिक संगठन है ? राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर अब तक तीन बार प्रतिबन्ध लग चुका है तथा महात्मा गाँधी की हत्या का जघन्य आरोप भी संघ पर लगाया जा चुका है। यह एक विरोधाभास ही है कि इन सबके बावजूद संघ के विकास में कोई कमी नहीं आयी और संघ की स्वीकारोक्ति समाज के बीच में बढ़ी। आज देश के प्रत्येक प्रान्तों में संघ की शाखायें चल रही हैं तथा विभिन्न आनुषांगिक संगठन विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत है। राजनीतिक स्तर पर देश में सीधे तौर पर छः राज्यों में सरकार चल रही है और कुछ राज्यों में राजग के नाम से भाजपा की सरकारें चल रही है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में ऐसा क्या है कि जब भी भाजपा शासित केन्द्र या प्रदेश में प्रधानमंत्री, उप प्रधानमंत्री या कोई भी मुख्यमंत्री कोई महत्वपूर्ण नीतिगत फैसला लेना होता है तो उसे भी न सिर्फ संघ बल्कि उसकी दूसरी संस्थाओं से भी विचार विमर्श करना पड़ता है। संघ भारत को हिन्दू राष्ट्र बनाना चाहता है इसके पीछे उसका क्या उद्देश्य है ? क्या यह सच है कि जैसा कि संघ दावा करता है कि यह दुनिया में हिन्दुओं का सबसे बड़ा संगठन है ?

इसी के साथ संघ को लेकर लोगों के मन में बहुत सारी पूर्व धारणायें है जैसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एक सांस्कृतिक संगठन है लेकिन इसका उद्देश्य राजनीतिक भी है। संघ एक राष्ट्रवादी संगठन है पर अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम भी इसे प्रभावित करते हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ राष्ट्रीय राजनीति में विश्वास करता है। संस्कृति के माध्यम से

हिन्दू राष्ट्र की स्थापित करना चाहता है। ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर जो संस्कृति निर्मित हुई जिसे हिन्दू संस्कृति कहते हैं उसके अनुकूल समस्त जाति व धर्म के लोगों में ढालना चाहता है। संघ का मानना है कि जो हिन्दुस्तान में रह रहा है वह हिन्दू है सबकी संस्कृति एक है और वह हिन्दू संस्कृति है। संघ का मुख्य दबाव वैचारिक परिवर्तन की तरफ है इसमें भौतिक परिवर्तन को नदारद किया जाता है। सवर्णों की संस्कृति को बढ़ावा देना और उसके प्रति झुकाव संघ के अन्तर्मन में छुपा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ यह दावा करता है कि वह अपने कार्यकर्ता को ध्येयनिष्ठ बनाता है, व्यक्तिनिष्ठ नहीं। संघ हिन्दू संस्कृति के माध्यम से एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करना चाहता है जिसके माध्यम से आर0 एस0 एस0 भारत को विश्व गुरू बना सके।

इन सब प्रश्नों के नकारात्मक और सकारात्मक संभावनाओं का सिंहालोकन इस शोध कार्य में करने का प्रयास किया गया है। विगत दिनों में आर0 एस0 एस0 एक रहस्य बन चुका है। इसके साथ अनेक प्रश्न जुड़ गये हैं जो अनुत्तरित हैं और जो वर्षों से सार्थक उत्तर की प्रतीक्षा में है। संघ से जुड़े रहस्य के इन तमाम परतों को गम्भीर शोध से ही ढूढ़ा जा सकता है।

प्रस्तावित विषय के सन्दर्भ में सीधे सीधे सामग्री उपलब्ध न होकर प्रच्छन्न रूप में है। इस शोध कार्य के लिए पूर्व में प्रकाशित विद्वानों पर आधारित पुस्तकों, राजनीतिक विश्लेषकों का समकालीन घटना पर आधारित किताबों और समाचार पत्रों व पत्रिकाओं तथा प्रमुख राजनेताओं, पत्रकारों चिन्तकों व संघ के प्रमुख पदाधिकारियों

का साक्षात्कार लिया गया है। बहुत ही सघन प्रयास के बाद आरव एस0 एस0 के प्रमुख चिन्तकों या नेताओं जैस वर्तमान सर संघचालक **के. सी. सुदर्शन**, संघ के थिंक टैंक **गोविन्दाचार्य**, सर कार्यवाह **मोहन भागवत**, के अलावा कुछ प्रख्यात बुद्धिजीवियों जैसे जवाहरलाल नेहरू विश्वविघालय के **प्रो0 तुलसीराम** और **प्रो0 एस0 एन0 मालाकार**, के अलावा अन्य महत्वपूर्ण लोगों का साक्षात्कार लिया गया और उसे भी इस शोध के आधार पर सामग्री के रूप प्रयोग किया गया है।

प्रस्तावित शोध प्रबन्ध संस्कृत, पालि, हिन्दी अंग्रजी में उपलब्ध मूल एवं प्राथमिक द्वितीयक स्रोत सामग्री पर आधारित किया गया है। शोध कार्य करने के लिये ऐतिहासिक, तुलनात्मक, विश्लेषात्मक, अनुभवजन्य, तथ्यात्मक एवं साक्षात्कार पर आधारित पद्धति का प्रयोग किया गया है।

इस शोधकार्य को **प्रस्तावना** के अलावा **सात अध्यायों** में विभक्त किया गया है। प्रस्तावना में शोध प्रबन्ध के रूप को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है ताकि संस्कृति की राजनीति और इसके प्रभाव के सार रूप की झलक दिखाई दे सके। **प्रथम अध्याय** में संस्कृति की राजनीति के सैद्धान्तिक अध्ययन के समस्त पहलुओं को स्पष्ट किया गया है। **दूसरे अध्याय** में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना के पूर्व की राजनैतिक पृष्ठभूमि जैसे खिलाफत, असहयोग आदि आन्दोलनों और गाँधीवाद जैसे महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है। **तीसरे अध्याय** में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सोच की दशा व दिशा को उजागर किया गया है। **चौथे अध्याय** में पूँजीवादी, लोकतंत्र, साम्यवाद,

राष्ट्रीयता, विश्व बन्धुत्व संघ का नारी, उदारीकरण के प्रति राष्ट्रीय संघ सेवक के दृष्टिकोग पर प्रकाश डाला गया है। **पॉचवें अध्याय** में वर्तमान मे चल रहे भूमण्डलीयकरण के दौर का संघ पर पड़े प्रभाव को स्पष्ट किया गया है। **छठे** अध्याय में संघ की संस्कृति की राजनीति का भारतीय राजनोति पर पड़े समस्त प्रभावों का तथ्यपरक विश्लेषण किया गया है। **सातवें अध्याय** उपसंहार में संस्कृति की राजनीति और संघ से जुड़े सभी पहलुओं पर समीक्षात्मक अध्ययन और उस पर आधारित निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध की तैयारी के लिए मैंने प्रकाशित पुस्तकों, आरएसएस के विभिन्न आनुषांगिक संगठनों की रिपोर्ट तथा अन्य दूसरे तरह महत्वपूर्ण दस्तावेजों का अध्ययन किया है। इन सभी स्रोतों से उचित सूक्ष्म परीक्षण के साथ सामग्रियाँ एकत्रित की गई है। उपरोक्त से प्राप्त लगभग सभी आधार ग्रन्थों का अध्ययन कर तार्किक निष्कर्ष निकालने की चेष्टा की गई है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करते हुए क्षमा याचना करना चाहता हूँ कि यथा सम्भव सुधार और परिश्रम करने पर भी प्रबन्ध में त्रुटियाँ अवश्य रह गई होंगी क्योंकि कोई भी कार्य कभी पूर्णतः का दावा नहीं कर सकता। इतना ही कह सकता हूँ कि **संस्कृति की राजनीति के संदर्भ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ** का अध्ययन एक नये दृष्टि से संस्कृति की राजनीति के मूल्यांकन का प्रयास है।

मैं निर्देशक **डा0 रिपुसूदन सिंह** के प्रति हार्दिक कृतज्ञता समर्पित करता हूँ जिनके कुशल निर्देशन एवं स्नेहिल सहयोग से ही यह शोध प्रबन्ध पूरा हो सका। अपने कार्य सम्पादन में मुझे दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्य डा0 एन0 डी0 समाधिया, महाविद्यालय के राजनीति विभाग की विभागाध्यक्षा डा0 जयश्री पुरवार, डा0 राजेन्द्र कुमार पुरवार, डा0 आदित्य कुमार एवं डा0 प्रभात कुमार (जन्तु विज्ञान विभाग) का अमूल्य सहयोग मिला जिनका मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

मैं 1996 बैच के आई0 पी0 एस0 अधिकारी ज्योतिनारायण का आभारी हूँ जिन्होंने समय–समय पर हमारा उत्साह बर्धन किया। मैं आभारी हूँ संघ कार्यालय उरई के प्रभारी (बाबाजी) का जिन्होंने कार्यालय के पुस्तकालय में विशेष सहयोग किया, दैनिक जागरण के ब्यूरो चीफ के0 पी0 सिंह जिनका समय–समय पर मुझे मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा है जिनका मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

मैं अपने माता–पिता, भाई–बहिन एवं पत्नी साधना का आभारी हूँ जिनकी स्नेह प्रेरणा व मार्ग दर्शन से इस कार्य को पूरा कर पाया। मैं आभारी हूँ अनिल कुमार मिश्रा (काजल कम्प्यूटर, रामनगर, उरई) का जिन्होंने मेरे इस शोध को त्रुटि रहित टंकित व सुसज्जित किया।

Ram

दिनांक:–2|8|08

राममुरारी चिरवारिया

शोधार्थी
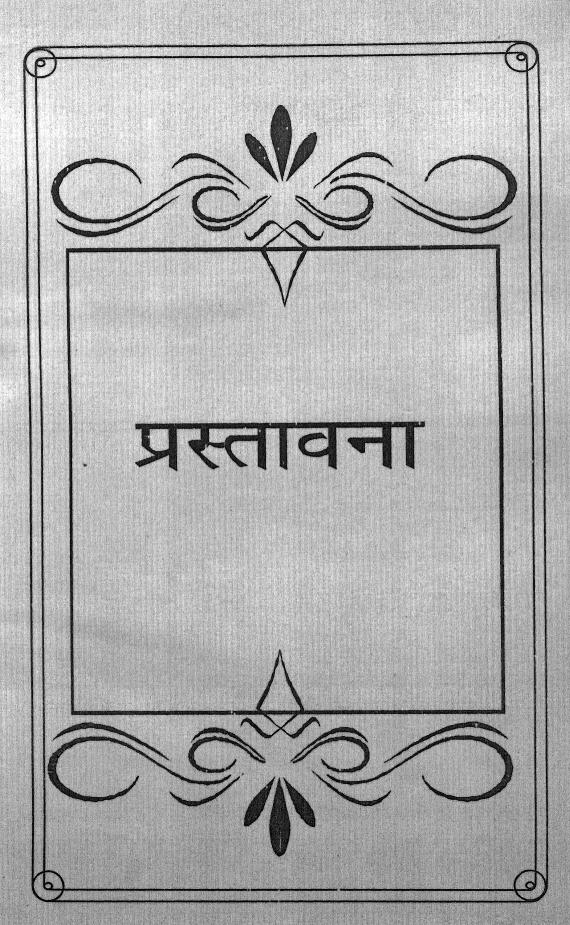
प्रस्तावना

प्रस्तावना

एक फारसी कहावत है कि **इतिहास अतीत का दर्पण है जिसमें हम वर्तमान के लिए सबक सीखते है।** इतिहास को जानना मनुष्य की अन्य स्वाभाविक प्रवृत्तियों में सबसे महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। उसके मन के पटल पर असंख्य प्रश्न उभरते रहते हैं और वह उनकी खोज में लगा रहता है। मनुष्य अपनी संस्कृति, सभ्यता या दूसरे शब्दों में कहा जाये तो अपनी पहचान को लेकर वह बहुत ही जागरूक, सतर्क और संवेदनशील रहा है। यही कारण है कि आज लगभग सभी लोगों, जातियों एवं समुदायों की यही कोशिश रहती है कि वह अपने को सबसे पुराना और आदि घोषित करे। इसी के चलते कुछ प्रश्न जैसे कि विश्व की प्राचीनतम संस्कृति और सभ्यता कौन सी है, प्रासंगिक बना है। यदि वह संस्कृति और सभ्यता विश्व में कहीं विद्यमान है तो क्या अपने मूल या परिवर्तित रूप में है।क्या एक ही संस्कृति से विश्व की अन्य संस्कृति एवं सभ्यताओं का जन्म हुआ है। ऐस असंख्य प्रश्न है जिनका उत्तर आज भी बड़ी तल्खी से खोजा जा रहा है।

देखा जाये तो समकालीन भारतीय राजनीति में धर्म, नस्ल और संस्कृति के प्रश्नों को केन्द्रीय मुद्दा बनाने का श्रेय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को जाता है। इसे लेकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की चाहे आलोचना की जाये या प्रशंसा लेकिन वर्तमान राजनीतिक एजेंडे पर संघ की प्रभावशाली छाप सुस्पष्ट है जिसके कारण पूरी राजनीति न चाहते हुए भी **"सांस्कृतिक राष्ट्रवाद"** के इर्द–गिर्द घूमने को अभिशप्त नजर आने लगी है।

20वीं सदी के प्रारम्भिक इतिहास का अवलोकन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन समाप्त कर देने के कारण राष्ट्र का चढ़ा हुआ जोश ठण्डा पड़ गया और लोगों में असंतोष व्याप्त हो गया। राष्ट्रीय आन्दोलन का जोर के कम होने से आपस में द्वेष और प्रतिस्पर्धा मुखरित हो गयी थी। व्यक्ति-व्यक्ति और जाति व धर्म के झगड़े शुरू हो गये थे। ब्राह्मण-ब्रह्मणेत्तरवाद ताण्डव कर रहा था। किसी भी संस्था में एक सूत्रता दिखाई नहीं देती थी। विविध गुट एक-दूसरे के विरोध में खड़े थे। असहयोग आन्दोलन की असफलता ने राष्ट्र में कलह और संताप का वातावरण उत्पन्न दिया था। देश के विभिन्न हिस्सों में हिन्दू-मुसलमानों के बीच खाई चौड़ी होती जा रही थी। अन्तर्राष्टीय स्तर पर भी परिदृश्य प्रतिकूल था और प्रथम विश्व युद्ध के बाद हुयी वर्साई संधि ने पराजित राज्यों में एक ऐसी विचारधारा को जन्म दिया जो खुलेआम नस्ल, संस्कृति और राष्ट्र के आधार पर समूची दुनिया को अपने कब्जे में करना चाह रहा था। इटली में फासीवाद का उदय एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना थी। भारत की राजनीति भी 1906 में मुस्लिम लीग और 1907 में स्थापित हिन्दु महासभा के बाद गरमा गयी थी। वीडी सावरकर की पुस्तक हिन्दुत्व ने उस गर्मी को और भी बढ़ा दिया था। ऐसे पृष्ठभूमि में डाक्टर हेडगेवार ने जाति, धर्म, संस्कृति और हिन्दु राष्ट्र के आधार पर संगठित करके एक संगठन बनाने का निर्णय किया जिससे **'तथाकथित यवनों या मुसलमानों'** से हिन्दुओं की रक्षा की जा सके।

1925 में विजयदशमी के दिन डा. केशवराव बलिराम हेडगेवार ने जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की नींव रखी थी उस समय उनके अलावा चार और लोग यथा—**डा. बी. एस. मुंजे, डा. एल. बी. पराजपे, डा. थोलकर और बाबा राव सावरकर** इसमें शामिल थे। अन्य लोग इसके पहले गठित हो चुके हिन्दू महासभा में थे। डा. बी. एस. मुंजे को डा. हेडगेवार अपना गुरू मानते थे और कहा जाता है कि **डा. मुंजे की भेंट इटली के नाजी शासनाध्यक्ष मुसोलिनी** से हो चुकी थी। वे मुसोलिनी से बेहद प्रभावित थे और उसकी तर्ज पर भारत में एक संगठन खड़ा करना चाहते थे।

सावरकर उस समय तक हिन्दू राष्ट्र की स्थापना को अपना लक्ष्य घोषित कर और इसके लिये मुसलमानों को अलग राष्ट्र देकर पृथक कर देने की हिमायत भी कर चुके थे। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जैसे नेताओं के न रह जाने, सामाजिक प्रश्नों की राष्ट्रीय क्षितिज पर प्रमुखता ने उच्च जातियों की असुरक्षा के बोध और हिन्दू समाज के परम्परागत ढाँचे को वचाने की व्याकुलता इत्यादि कारणों ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के गठन के पीछे एक प्रेरणा की भूमिका निभायी। संघ का गठन उपरोक्त बातों की अभिव्यक्ति का एक माध्यम भी था। इसी कारण राष्ट्रीय स्वयंसेवक जो शुरू में शारीरिक व्यायाम तक सीमित रहा धीरे-धीरे इसमें संस्कृति उन्नयन को जोड़ा जाने लगा। खाकी नेकर पहनकर शारीरिक व्यायाम करना इसकी गतिविधियों का एक प्रमुख हिस्सा था। डा. हेडगेवार ने आर० एस० एस० में **भगवाध्वज** को गुरू माना। बाद में दूसरे सरसंघचालक गुरू गोलवलकर ने 1939 में लिखी अपनी पुस्तक **We or our nationhood defined** के

प्रथम अध्याय में लिखा कि " National consciousness blazes forth and we Hindus rally to the Hindu Standard, the Bhagwa Dhwaja, set our teeth in grim determination to wipe out the opposing forces."[1] बाद में संघ ने इस 'भगवाध्वज' को गुरू दक्षिणा देने की व्यवस्था के रूप में जन्म दिया और यह व्यवस्था आज भी लागू है।

आर० एस० एस० ने अपने कार्य को आगे बढ़ाने के लिये धर्म, संस्कृति और राम का सहारा लिया। डा. हेडगेवार ने संघ की स्थापना विजयदशमी के दिन बहुत सोच समझ कर की क्योंकि इसी दिन राम ने रावण पर विजय प्राप्त की थी। संघ का नामानुकरण भी राम को केन्द्रित मानकर रामनवमी के दिन किया गया। 1927 को राम को केन्द्र मानकर ध्वज का रंग केसरिया चुना गया। प्रारम्भ में संघ का उद्देश्य पूर्ण स्वराज्य था किन्तु बाद में धर्म व संस्कृति को आधार बनाकर **हिन्दू राष्ट्र** बनाने की कोशिश और **हिन्दु पहचान** की अभिव्यक्ति आर० एस० एस० का मुख्य कार्य बन गया।

डा. हेडगेवार के समय आर० एस० का बहुत विस्तार नहीं हो सका। वे अपने समय में नागपुर के बाहर इस संगठन की 30 शाखायें स्थापित कर सके। 9, 10 नवम्बर, 1929 को संघ में सर संघ चालक का सर्वोच्च पद बनाया गया और इसकी बागडोर डा. हेडगेवार ने सम्हाली और वे 14 वर्षों तक इस पर पर रहे। 20 जून 1943 को माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर संघ के नये सर संघ चालक बने संगठन का विशेष विस्तार उन्हीं के

---

[1] M.S Golwalkar,'We or Our Nationhood defined.' Bharat Publication, Nagpur, 1939, p. 13.

कार्यकाल में हुआ। गोलवलकर ने राज्य और राष्ट्र में अन्तर किया और इसी के आधार पर उनकी सहमति भारतीय राज्य से भी नहीं थी। वे किसी भी कीमत पर हिन्दु राष्ट के कम कुछ भी नहीं चाहते थे। उनका राष्ट **Homogeneous** था न कि **Hetrogeneous.** उनके राष्ट्र में अल्पसंख्यक और अन्य धर्म व संस्कृति के लोग केन्द्र में न होकर परिधि में थे।[2]

दूसरे सर संघ चालक गोलवलकर ने **"बंच ऑफ थॉटस"** तथा **"वी. आर. अवरनेश हुड डिफाइंड"** जैसी पुस्तकों की रचना कर संघ के सिद्धान्त, विचार और आदर्श प्रस्तुत किये। हेडगेवार ने जहाँ हिन्दू महासभा से सम्बन्ध बनाये रखा वहीं श्री गोलवलकर ने संघ को हिन्दू महासभा से अलग रखा। गोलवरकर ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अत्यन्त कुशल संगठनकर्ता का परिचय दिया और केवल 6 वर्षों में ही समस्त उत्तर भारत तथा देश के विभिन्न भागों में संघ की शाखायें गठित कर दीं।

1945 में जब आर0 एस0 एस0 का प्रशिक्षण शिविर लगा तो उसमें 10 हजार से अधिक स्वयं सेवकों ने भाग लिया। संघ ने अपने विस्तार के लिये अलग–अलग क्षेत्रों में कतारें खड़ी करनी शुरू की। 1936 में संघ का पहला अनुषांगिक संगठन **राष्ट्र सेविका समिति** के नाम से बना। 1948 में संघ ने विद्यार्थियों को आकर्षित करने के लिये **अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद** का गठन किया। छात्र, वकील, महिला, शिक्षा, साहित्य, इतिहास, किसान, मजूदर, युवा, उपभोक्ता आदि को संघ से जोड़ने के लिये विभिन्न अनुषांगिक संगठनों की स्थापना की गयी। शिक्षा के क्षेत्र में **विद्या भारती,**

---

[2] Ibd. P. 2

विश्व हिन्दू परिषद व बजरंग दल जैसे संगठन संघ के गरम धड़े कहे जा सकते हैं जबकि कई संगठन उदारवादी छवि बनाये हुये हैं लेकिन संघ परिवार के सभी घटकों का लक्ष्य एक है। वर्तमान पाँचवें सर संघचालक **कुपहल्ली सीतारमैया सुदर्शन** ने एक साक्षात्कार में कहा था कि हमारे **संगठन वैचारिक स्तर पर एक है लेकिन व्यवहारिक स्तर पर सभी संबद्ध संगठनों की सोच अलग–अलग है।**

1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन के समय कांग्रेस के नेता बड़ी संख्या में जेल में बंद हो गये ऐसे में उग्र राष्ट्रवाद के प्रतीक आर0 एस0 एस0 के लिये तत्कालीन निराशा की स्थिति में युवाओं को अपनी ओर आकृष्ट करने का अवसर मिला। देश के विभाजन ने उसे विकास और विस्तार का महत्वपूर्ण अवसर दिया। महात्मा गाँधी की हत्या के बाद 4 फरवरी 1948 को पहली बार आर0 एस0 एस0 पर प्रतिबंध लगाया गया। लेकिन संघ के प्रति सहानुभूति रखने वालों की संख्या कांग्रेस में बड़ी संख्या में थी जो इसे देश भक्त संस्था कहते थे। 1963 में गणतन्त्र दिवस परेड में भाग लेने के लिये संघ के स्वयं सेवकों को आमन्त्रित किया जाना इसी का परिणाम था जिससे संघ की स्वीकार्यता को भारी बल मिला। 1965 में भारत पाक युद्ध के समय तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. श्री लाल बहादुर शास्त्री ने सर संघचालक माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर को सर्वदलीय बैठक में आमंत्रित किया।

आर0 एस0 एस0 ने अपनी राजनीतिक शाखा के रूप में 31 अक्टूबर 1958 में **भारतीय जनसंघ** की स्थापना करायी। उस समय कश्मीर को लेकर एक देश में दो प्रधानमंत्री, दो निशान और दो विधान न चलने देने के नारे

के साथ अपना राजनैतिक सफर शुरू किया। जनसंघ चौथे लोकसभा के चुनाव में सदन के अन्दर तीसरे बड़े दल के रूप में उभरकर आया। जयप्रकाश नारायण ने संघ को महान देशभक्ति का प्रमाण देना शुरू कर दिया तो संघ ने उनके **सम्पूर्ण क्रान्ति** आन्दोलन के लिये पूरी ताकत झोंक दी। इसके कारण 25 जून 1975 को संघ पर दूसरी बार प्रतिबंध लगाया गया।

1977 में **जनता पार्टी** का गठन होने पर जनसंघ ने उसमें अपने को विलीन कर दिया जनता पार्टी के विभाजन के बाद पूर्व जनसंघ ने भारतीय जनता पार्टी के रूप में जन्म लिया लेकिन उसकी राजनीतिक शक्ति बुरी तरह क्षीण थी। इस वजह से आर0 एस0 एस0 ने कांग्रेस की पहल का उसे सकारात्मक प्रतिफल दिया और 1980 व 1984 के चुनाव में काग्रेस की अप्रत्यक्ष रूप से मदद की। कांग्रेस ने इसी आभार के फलस्वरूप जिन नीतियों पर अमल किया उसका मर्म अयोध्या में विवादित स्थल का ताला खुलवाने के उदाहरण से समझा जा सकता है। इस तरह से कांग्रेस ने ही संघ के एजेंडे को भारतीय राजनीति के केन्द्र में लाने की पहलकदमी जाने अनजाने में की। इसी बीच भारतीय जनता पार्टी की बागडोर आर0 एस0 एस0 के महत्वपूर्ण व्यक्ति लालकृष्ण आडवानी के हाथ में आ गयी और उन्होंने रामजन्म भूमि आन्दोलन छोड़कर संघ के प्रति पार्टी के पितृ ऋण चुकाने की भावना प्रदर्शित की तो संघ ने पुनः एक बार राजनीतिक करवट बदली तथा भारतीय जनता पार्टी के माध्यम से राजनीतिक पटल पर उसने अपनी सांस्कृतिक महात्वाकांक्षाओं की अभिव्यक्ति शुरू कर दी।

तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी और संघ परिवार के बीच मतभेदों के आये दिन समाचार पत्रों में खबरें प्रकाशित होने के बावजूद इसमें इंकार नहीं किया जा सकता कि भाजपा के सत्ताधारी संघ के स्वप्नों को मूर्तिभान करने में कसर नहीं छोड़ रहे हैं। इसी कारण राजनीति में आज सांस्कृतिक प्रश्न महत्वपूर्ण हो गये हैं। नयी आर्थिक नीतियों की विसंगतियों से मानवीय व्यवस्था के लिये ईजाद हुये नये खतरों पर विचार विमर्श आज की राजनीति में ओझल है। उत्तर प्रदेश में राजनाथ सिंह की भाजपा सरकार सबसे बड़ी उपलब्धि के रूप में इलाहाबाद के महाकुंभ को सुचारू रूप से सम्पादित कराने को प्रचारित कर रही थी। केन्द्र सरकार गौवंश प्रतिबंध विधेयक, इतिहास और पाठ्य पुस्तकों में फेरबदल, संसद भवन में वीर सावरकर की प्रतिमा स्थापित कराना इस तरह की कवायदों से **भय, भूख और भ्रष्टाचार** जैसे बुनियादी मुद्दों के प्रति जबाव देही से हाथ झाड़ने में सफल हो गयी।

तमिलनाडु की तत्कालीन मुख्यमंत्री जयललिता ने केन्द्र से अभय प्राप्त करने के लिये धर्मान्तरण पर रोक लगाने का विधेयक पारित करा दिया। आजकल लोग मूलभूत समस्याओं के लिये सड़कों पर नहीं उतरते हैं, लेकिन धार्मिक मामलों के लिये विवाद हो रहा है। प्रतिपक्षी दल भी सांस्कृतिक राजनीति में उलझ गये। कांग्रेस वैकल्पिक नीतियों का खाका तैयार करने के बजाय स्वयं को भाजपा से अधिक हिन्दूवादी साबित करने में लगी रही। वामपंथी दल भी गरीबी के कारण हो रही सामूहिक हत्याओं के

खिलाफ खड़े होने के बजाय राष्ट्रीय एकता बचाने जैसे राजनीति से सांस्कृतिक संघर्ष की बातें करने लगे।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपने तर्क दिये कि किसी देश के विकास में उसे आत्महीनता से उभारने के प्रयास की महत्वपूर्ण भूमिका है। आर0 एस0 एस0 का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पाश्चात्य संस्कृति को कितना भेद पा रहा यह तो स्वतः स्पष्ट है कि जब तत्कालीन प्रधानमंत्री अटलबिहारी बाजपेई अंग्रेजी कैलेन्डर के नव वर्ष को मनाने के लिये आमोद–प्रमोद का केन्द्र गोवा को चुनते हैं जहाँ भारतीय संस्कृति का कोई चिन्ह नहीं है। यदि संस्कृति की राजनीति राष्ट्रीय स्वाभिमान को बुलन्द करने के लिये है तो यह जबाव देना पड़ेगा कि अपने ही पैरों में बेड़ियाँ डालने वाली बाहर से थोपी गई आर्थिक नीतियों का विरोध क्यों नहीं किया जा रहा है।

इस प्रकार देखा जाये तो संस्कृति की राजनीति एक महत्वपूर्ण अवधारणा के रूप में उभरी है। संस्कृति एवं सभ्यता भारतीय राजनीति में बहुत ही महत्वपूर्ण प्रतीक और संकेत बन गये है। लेकिन यह कहना कि संस्कृति का अपना स्वायत्त स्थान होता है आज के भूमंडलीकरण के युग में स्वीकार करना कठिन हो जाता हैं। यही कारण है कि आरएसएस की संस्कृति की राजनीति पर देश व विदेश में हो रहे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं बौद्धिक परिवर्तनों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ रहा हैं। एक अजीब का अन्तर्विरोध या द्वन्द पैदा हो गया है। संघ के सिद्धान्त और व्यवहार में एक दूरी बनती जा रही है। संघ का बड़ा परिवार और उसका

संगठन मानों सिकुड़ता जा रहा है। संघ अपनें द्वारा उठाये ढ़ेर सारे प्रश्नों से मानों स्वयं जूझ रहा है और उसके उत्तर भी ढूढ़ रहा हैं ।

पर इसी के साथ यह भी देखा जा रहा है कि संघ की संस्कृति की राजनीति से भारतीय राजनीति भी अछूती नहीं रह गयी है। संस्कृति की राजनीति का प्रयोग आये दिन अन्य तथाकथित सेकुलर और उदारवादी दल भी करने से चूक नहीं रहें है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है कांग्रेस द्वारा भिंडरवाला को प्रोत्साहन देना, राजीव गॉधी के द्वारा 1985 में विवादित बाबरी मस्जिद के दरवाजे को खुलवाना, बाबरी मस्जिद के विध्वंश के समय नरसिंम्हा राव सरकार का मूक दर्शक बनना, रामसेतु पर कांग्रेस सरकार द्वारा दुविधा दिखाना, बिहार में लालू प्रसाद व नितिश कुमार के द्वारा गंगा व उससे जुड़े प्रतीको का प्रयोग करना, पश्चित बंगाल वामपंथी सरकारों द्वारा राजनीति में दुर्गा पूजा के प्रतीकों का प्रायः प्रयोग करना इत्यादि बातें संस्कृति की राजनीति की पुष्टि करते है।

वर्तमान शोधकार्य संस्कृति मूलक प्रश्नों का अवधाणात्मक स्तर पर परीक्षण कर रहा है। इससे जुड़े हुये प्रश्नों मान्यताओं विश्वासों पूर्वाग्रहों पर वैज्ञानिक रूप से दृष्टिपात करना चाह रहा हं और यह देखना चाह रहा है कि संस्कृति और सभ्यता की अपनी स्वतन्त्र एवं स्वायत्त पहचान है। क्या इनके सरोकार अपने आप से जुड़े हुये हैं, यदि अपने आप से जुड़े हुये हैं और इनके निहितार्थ क्या है और इनके वास्तविक उद्देश्य क्या है, क्या संस्कृति और सभ्यता सनातन, शाश्वत, चिरस्थायी, अभिभाज्य, अपरिवर्तनशील एवं अपने आप में पूर्णसत्य होती है या फिर इनमें भी समय और सन्दर्भ के

साथ बदलाव आता है। उपरोक्त विचारों के सन्दर्भ में ही यह शोध कार्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विभिन्न गतिविधियों, संगठनात्मक संरचनाओं, आदर्शात्मक उद्घोषों एवं व्यवहारिक धरातल पर संपादित किये गये कार्यो का परीक्षण करता है। मूल प्रश्न यह उठता है कि क्या संस्कृति और सभ्यता की राजनीति की जा सकती है ?

राजनीति के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो पता चलता है कि प्रत्येक कालखण्ड में राजनीति के कुछ–कुछ प्रमुख विषय रहे है जैसे– सम्पत्ति, परिवार, समाज, राज्य, नैतिकता, कानून, स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व, असमानता, शोषण मानवाधिकार, नारी स्वतन्त्रता इत्यादि। अनेक बिन्दु रहे है जिनको लेकर राजनीति की शुरूआत होती रही है और उन्हीं बातों को केन्द्र में रखकर राजनीति चलती भी रही है।

अब प्रश्न उठता है कि 1920 के दशक के वे कौन से सन्दर्भ, कौन सीं घटनायें और वे कौन से कारण थे जिनके चलते 1925 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जन्म हुआ। यह भी विचार करने योग्य बात है कि यदि यह संगठन जिसको संप्रदायिक, फासिस्ट, जातिवादी, ब्राह्मणवादी इत्यादि विशेषणों से सम्बोधित किया जाता है, 83 वर्षों बाद भी भारतीय राजनीति में चर्चा का केन्द्र बिन्दु बना हुआ है। जहां पर कुछ लोगों के लिये यह गौरवगान की वस्तु बना है वहीं पर कुछ लोगों के लिए चिन्ता का। जहां पर कुछ लोगों के लिये यह चिन्ता का विषय बना हुआ है जहां पर कुछ लोगों के लिये राष्ट्रीय एकीकरण और सामाजिक एकीकरण के मार्ग में बाधा बना हुआ। प्यारेलाल को लिखे अपने पत्र में जहॉ गॉधी जी आरएसएस को एक

अनुशासित शक्ति बताते हैं वही पर वे यह भी लिखते हैं कि **"but don't forget, so had Hitler's Nazis and the fascists under Muoolini...It(RSS) is a communal body with a totalitarian outlook."**[3] गॉधी जी की हत्या के बाद सरदार बल्लभ भाई पटेल आरएसएस पर बड़ी तल्ख टिप्पणी करते हुए अपने पत्र में गोलवलकर और एसपी मुखर्जी को लिखत है कि **"All their(RSS) leader's speeches were full of communal poison. As a final result of the poison...an atmosphere was created in which such a ghastly tragedy (Gandhi's assissination) became possible..RSS men expressed joy and distributed sweets after Gandhiji's death.'**[4]

वहीं पर कुछ लोगों के लिए भारत में हिन्दु राष्ट्र की छत्रछाया में एक विशाल, समग्र और विस्तृत राष्ट्रवाद के रूप में दिखायी देता है। जहां पर कुछ लोग मिली जुली संस्कृति की बात करते हैं या एकीकृत विश्व बाजार सभ्यता की बात करते हैं वहीं पर कुछ लोग सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की बात करते हैं। प्रस्तुत शोध इन परस्पर विरोधी विचारों के बीच एक निष्पक्ष सत्यमार्ग का परीक्षण करना चाहता है और इस पूरी बहस पर एक तार्किक परिणति पर एक वैज्ञानिक प्रयास भी करता है।

इस प्रकार इस शोध कार्य के माध्यम से संघ की संस्कृति की राजनीति के समस्त पहलुओ पर तथ्यपकर अध्ययन व विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। यह विश्लेषण तुलनात्मक होने के साथ साथ कार्य

---

[3] **Outlook, April, 27, 1998, p.21.**

और कारण पर भी आधारित किया गया है। इस आधार पर यह भी प्रयास किया गया है कि संघ की राजनीति के साथ साथ संस्कृति की राजनीति के भविष्य का भी मूल्यांकन किया जा सके और निष्कर्ष के तौर पर यह भी देखा जा सके कि यह प्रतीकों और परम्पराओं पर आधारित भाववादी राजनीति जनता की मूलभूत समस्याओ यथा भौतिक समस्याओं का हल ढूढ़ पायेगा। या फिर भारतीय राजनीति की प्रकृति आदि अनादि काल से ऐसी ही रही है और आने वाले दिनों में भी ऐसी ही रहेगी। देश मध्ययुगीय धर्म व संस्कृति की राजनीति की अंधी गलियों में खोया रहेगा। ज्ञान विज्ञान, तकनीकि और भूमंडलीकरण के फायदे आस पड़ोस के लोग उठाते रहेगें और हम विश्व गुरू के दंभ में ही मग्न रहेगें।

---

[4] वही, पृष्ठ 21

अध्याय- प्रथम
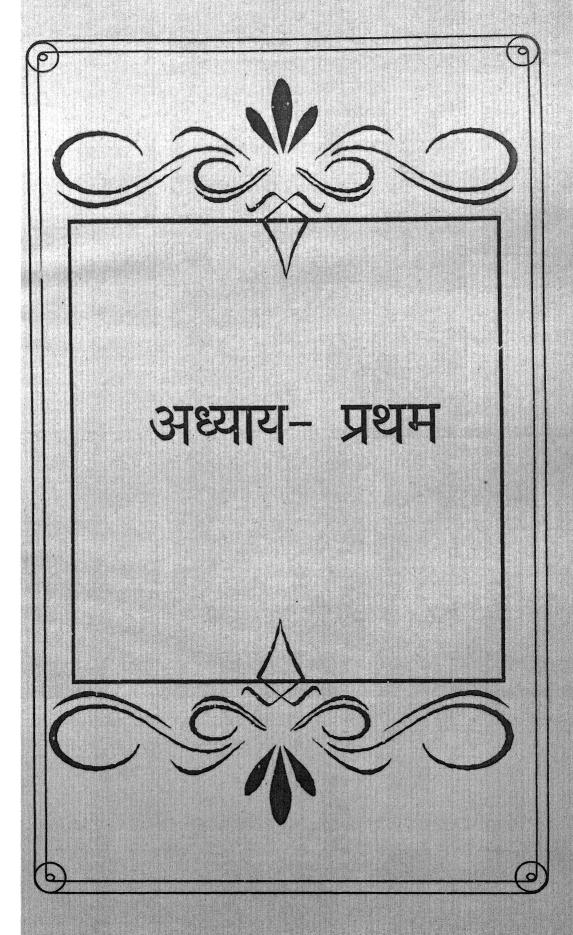
संस्कृति की राजनीति का सैद्धान्तिक अध्ययन

संस्कृति का सम्बन्ध मानव की अंतर्मुखी दशा से है। जिस कर्म व भाव से हमारे संस्कार सुन्दर बने जिसे 'कृति' का सौन्दर्य तथा दिव्यता अधिक स्पष्टता से प्रकट हो सके वही संस्कृति है। जो चेतना हमें उर्ध्वारोहित करती है वही है संस्कृति वैशिष्ट्य। उर्ध्वारोहण को प्रेरित करने वाली चेतना का स्तर हर व्यक्ति में भिन्न--भिन्न होता है, ठीक वैसे ही जैसे कि हर व्यक्ति की मानसिक संरचना भिन्न--भिन्न होती है। मानसिक संरचना में जो कलुष और पशुत्व है। उसे दूर करने के निमित्त किये गये हमारे प्रयास ही हमें संस्कारवान बनाते है। यह चेतना ही हमारी संस्कृति है। वैसे तो जीवन की समग्रता के प्रति हर व्यक्ति का अपना एक पृथक दृष्टिकोण होगा ही पर फिर भी व्यक्ति जब समूह के स्तर पर सोचता है तो समग्रता के प्रति जो चिन्तन है उसे भी वह आवश्यक महत्व प्रदान करता है। क्योंकि समूह के सहयोग के अभाव में कोई व्यक्ति जीवन के रहस्य को उद्घाटित करने के लिये अपने पूर्वजों की अनुभूतियों और अनुभवों का सहारा लेता है और स्वयं की अनुभूतियों और अनुभवों का भी इसी अधार पर व्यक्ति और समाज का व्यक्तित्व निर्मित होता है। इस व्यक्तित्व के निर्माण में जो कुछ भी सहायक है, वही संस्कृति है।

संस्कृति समाज की जीवन विधि है और इस रूप में यह आवश्यक परिवर्तन व परिवर्धन के बाद पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है। कुछ

विचारक सम्पूर्ण सामाजिक विरासत को संस्कृति मानते है, जबकि अनेक विचारक अभौतिक विरासत को ही संस्कृति मानते है। वास्तव में संस्कृति मानवीय समाज की आन्तरिक अभिव्यक्ति है। हम जो कुछ है वह हमारी संस्कृति है।[1]

संस्कृति लोगों के विचार और व्यवहार का प्रतिमान है। संस्कृति में मूल्यों, विश्वासों, आचार सम्बन्धी नियमों, सामाजिक प्रतिमानों, राजनैतिक व आर्थिक संगठनों का समावेश रहता है। वैसे संस्कृति शब्द थोड़ा नया है, अर्थात् पुराने संस्कृत वाङ्मय में यह शब्द नहीं मिलता है। किन्तु नया होते हुए भी काफी प्रचलित है और हिन्दुस्तान की लगभग सभी भाषाओं में एकाध को छोड़ दिया जाये तो इस शब्द का प्रयोग प्रचलित है। संस्कृति शब्द नया होते हुए भी वह शबद जिससे इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है वह बहुत पुराना है, वह शब्द है संस्कार। सभी इससे परिचित है और थोड़ा व्याकरण की दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृति इससे भिन्न नहीं है। मलयालम भाष में तो संस्कृति षब्द है नही। उसके स्थान पर संस्कार शब्द का ही प्रयोग होता है। संस्कारों को जीवन पर जो प्रभाव पड़ता है उनकी मन पर जो अमिट छाप पड़ती है, उसी का समावेश 'संस्कृति' शब्द में होता है।

संस्कृति किसी राष्ट्र की आत्मा होती है और कोई भी राष्ट्र तभी तक जीवित माना जा सकता है जब तक उसकी आत्मा उसके अन्दर विद्यमान है। केवल बाह्य उपकरणों से राष्ट्र जीवित नहीं रहता। राष्ट्र में रहने वाले

---

1 नरेन्द्र मोहन, भारतीय संस्कृति पृ0 1

मनुष्य आते जाते रहते है, उनकी संख्या घटती–बढ़ती रहती है। राष्ट्र की भूमि भी उन मनुष्यों के सामर्थ्य के अनुसार कभी उनके पास रहती है, कभी दूसरों के अधिकारों में चली जाती है। इन दोनों के घट–बढ़ से राष्ट्र के अस्तित्व पर प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु यदि एक बार ये दोनों बने भी रहे और 'संस्कृति' समाप्त हो गयी तो राष्ट्र जीवन का अन्त समझना चाहिए।

जिस प्रकार आत्मा निकल जाने के पश्चात् हट्टा–कट्टा शरीर भी किसी अर्थ का नहीं रहता उसी प्रकार संस्कृति के समाप्त होने के बाद, अन्य तत्व शेष रहे तो भी राष्ट्र नष्ट हो जाता है। बीस लाख वर्ष पूर्व मानव के निकट पूर्वजों की कुछ शाखायें अपने शारीरिक और सांस्कृतिक विकास की दिशा में नया मोड़ ले रही थीं। उनके सदस्य सीधे खड़े होकर चल–फिर सकते थे, आस–पास के पत्थरों के सरल उपकरण और अस्त्र बना सकते थे और वे वनों के एक छोर पर पानी के पास रहने लगे थे। धीरे–धीरे मानव इन निकट पूर्वजों के जीवन आयम बदले। आकस्मिक रूप से उसने आग पर नियन्त्रण पा लिया। इससे उसने अपने आवासों जो पहले प्राकृतिक कन्दराओं में होते थे को गर्म रखना आरम्भ किया, हिंसा प्राणियों को उनसे दूर रखना सीखा और आग में भूनकर या उवालकर अपने भोजन को रूचिकर बनाया तथा खाद्य सामग्री में अनेक ऐसे नये तत्वों का समावेश किया, जो बिना पकाये नहीं खाये जा सकते थे।

प्रायः पाँच लाख वर्ष पहले उसने वाक्शक्ति विकसित कर भाषा के आद्य रूप पर अधिकार पाया। वाक्शक्ति का विकास भी बड़ी जटिल ओर विस्मयकारी प्रक्रिया रही होगी जहाँ भाषा सांस्कृतिक पर्यावरण का अंग होती

है, वहाँ समाजीकरण की प्रक्रिया से पाँच–सात वर्ष में ही वह अपने आप सीख ली जाती है पर शब्दों, वाक्य–विन्यास और आरम्भिक व्याकरण का विकास निश्चित रूप से बहुत ही कठिन रहा होगा। क्या भाषा के बिना वह अपनी संस्कृति का विकास कर सकता था। बिना भाषा के न तो ज्ञान का भंडारण सम्भव था, न उसका सम्प्रेषण। शस्त्रशक्ति के विकास ने मानव के निकट पूर्वजों की क्षमताओं का विस्तार किया। उनकी एक शाखा होमासेपियन सेपियन ने जिसका उदय पैंतीस हजार साल पहले हुआ तीनों क्षेत्रों (युद्ध, मारकशक्ति, सुरक्षाआखेट) में सर्वाधिक प्रगति की। यह प्राचीन स्तर युग था।

संसार अब इक्कीसवीं सदी के वैज्ञानिक चमत्कारों का अनुभव कर आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है, किन्तु इस आद्य संस्कृति के अवशिष्ट अब भी आस्ट्रेलिया के आदिवासियों अमेजान क्षेत्र के इंडियन और न्यूगिनी के पर्वतीय क्षेत्र की जनजातियों में देखे जा सकते हैं। ई0 पू0 10,000 और 2500 के बीच एक सांस्कृतिक क्रान्ति आरम्भ हुई। मनुष्य ने कुछ जानवरों को पालतू बनाया और उनकी श्रम शक्ति का उपयोग अपने हित साधन में किया।

कृषि का प्रयोग आरम्भ मध्यपूर्व के नदियों द्वारा सिंचित उर्वर क्षेत्रों में ई0 पू0 9,000 के लगभग हुआ और वहाँ से उसका प्रसार ई0 पू0 6,000 तक दक्षिण–पूर्व यूरोप और दक्षिण–पूर्व एशिया में हुआ। इस तरह मानव आखटेक और संग्राहक से खाद्य उत्पादक बना। इस कृषि संस्कृति की कुछ विशेष आवश्यकतायें थी। मानव में छोटे–छोटे समूह अपेक्षाकृत बड़े समुदायों

में रहने लगे, जिनके अनुशासन–प्रशासन के लिये अधिपतियों की एक श्रेणी उभरी। तरह–तरह के विशेषज्ञ शिल्पकार भी आवश्यक हुये जिनके निर्माण की कृषि में अनुपूरक भूमिका थी। ई0 पू0 6,400 में तुर्की और ईरान में काँसे का उपयोग शुरू हुआ ई0 पू0 3,000 में सुमेर और मेसोपोटामिया में ताँबे के टिन के मिश्रण में काँसा बनाया गया, जिससे नये शस्त्र और औजार बनाये गये। ई0 पू0 1,700 में तुर्की में लोहे का उपयोग हुआ कास्य प्रविधि की तरह लौह प्रविधि भी पुर्तगाल से चीन तक फैली। अमेरिका में काँसा ई0 पू0 900 में पहुंचा, लोहा वहाँ 1,500 में यूरोपियन अप्रवासियों के साथ ही गया।[2]

इक्कीसवीं सदी से हमारी अपेक्षायें और आशायें जो भी हो, मानवता आज संक्रमण के एक भयावह दौर से गुजर रही है। संक्रमण के इस दौर में सांस्कृतिक अस्मिता का ह्रास भी एक गम्भीर संकट के रूप में उभर रहा है। वैज्ञानिक–प्रौद्योगिक विकास और सामाजिक विकास की असमान गति और विसंगतियों से सामाजिक मान्यतायें क्षीण हो रही हैं और सांस्कृतिक मूल्य विश्रंखलित हो रहे है। सांस्कृतिक लक्ष्यों और साधनों में धुधलापन आ गया है। परिणाम है एक भोग और लिप्सा वादी संस्कृति का विकास। इस प्रक्रिया में देशज चिन्तन का अवमूल्यन हो रहा है और जातीय सृजनशीलता पार्श्व में जा रही है। समय–समय पर अनुकरण की संस्कृति के विरूद्ध परम्परा और संस्कृति की तीव्र प्रतिक्रिया होती है जिससे आधुनिकीकरण और विकास की सारी योजनायें डगमगा रही है। विकास की अनिवार्यता स्वयंसिद्ध है, परन्तु

---

[2] श्यामाचरण दुबे, संक्रमण की पीड़ा पृ0 13, 15

उसके लिये समाज अनी परम्परा और संस्कृति का बलिदान करने को तैयार नहीं है।

पाश्चात्य संस्कृति

आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन लोने में जिन प्रक्रियाओं व सामाजिक शक्तियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है उनमें पश्चिमीकरण की प्रक्रिया विरोध रूप से उल्लेखनीय है। अंग्रेजों ने अपने शासन काल में भारत का घनिष्ठ परिचय पश्चिमी या पाश्चात्य संस्कृति से न केवल कराया अपितु इस ढंग से शासन व्यवस्था को व्यवस्थित किया कि भारतीय समाज में परिवर्तन स्वतः उत्पन्न हो गये। इस प्रकार पश्चिमी संस्कृति की प्रक्रिया ने सम्पूर्ण भारतीय जनजीवन को प्रभावित किया और पश्चिमीकरण के फलस्वरूप भारतीय समाज में परिवर्तन उभरकर सामने आये। ये परिवर्तन अच्छे हों या बुरे पर वास्तविक तथ्य यह है कि पश्चिमीकरण ने भारत में द्रुत सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

भारत में अंग्रेजी शासन व्यवस्था के कायम हो जाने के बाद से ही भारतीय समाज पश्चिमी संस्कृति से स्थापित हुआ और दिन–पर–दिन घनिष्ठ होता गया। चूंकि अंग्रेज शासक वर्ग थे और उनका उद्देश्य भारतीयों को भी अपने संस्कृतिक मायाजाल में फंसना था, अतः हमारे लिये स्वयं को उनकी संस्कृति के प्रभावों से विमुक्त रखना सम्भव न हुआ। साथ ही उस पश्चिमी संस्कृति में कुछ अच्छाइयाँ, अनेक आधुनिक व प्रगतिशील तत्व एवं असंख्य प्रलोभन भी थे। साथ ही अंग्रेजों का दबाव व प्रभाव भी हमारे ऊपर थ। अतः हम उनकी संस्कृति के प्रति आकर्षित हुये और अपनाया। फलतः

प्रौद्योगिकी से लेकर हमारी जातिप्रथा, संयुक्त परिवार विवाह, धर्म, कला, प्रथा, परम्परा, साहित्य, संगीत, विचार, आदर्श लक्ष्य और मूल्य सभी में पश्चिमी संस्कृति की एक अमिट छाप लग गयी हम पश्चिम के रंग में काफी हद तक रंग गये।

पश्चिमी संस्कृति के फलस्वरूप भारतीय समाज की परम्परागत व प्रभावशाली संस्थाओं जैसे, जातिप्रथा, संयुक्त परिवार, विवाह, पंचायत आदि में उल्लेखनीय परिवर्तन हुये है। दूसरी ओर प्रेस, मतदान, ईसाई मिशनरी जैसे नई संस्थाओं का भी जन्म हुआ। पश्चिमी संस्कृति के फलस्वरूप जहाँ एक ओर व्यक्तिवादी मूल्यों को बढ़ावा मिला वहीं दूसरी ओर समानता लोकतन्त्र व लौकिकवाद से सम्बन्धित मूल्यों का भी महत्व बढ़ा। कानून के सामने सब समान है यह सामाजिक मूल्य पश्चिमी संस्कृति की ही देन है। उसी प्रकार सती–प्रथा व बाल–विवाह के विपरीत मूल्यों का विकास, अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम विवाह, विधवा विवाह के अनुकूल मूल्यों का भी विकास पश्चिमी संस्कृति के फलस्वरूप ही हुआ। शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सबको है, धर्म तथा जाति के आधार भोभाव या छुआछूत की भावना अर्थहीन है स्त्रियों को दासी समझना एक सामाजिक अन्याय है तथा भाग्यवादी बने रहना अपने साथ धोखा करना है– आदि अनेक परिवर्तित सामाजिक मूल्यों का विकास पश्चिमी संस्कृति की ही देन है।

हिन्दू धर्म की पुनः व्याख्या पश्चिमीकरण का एक महत्वपूर्ण परिणाम है। पश्चिमी आदर्शों, सिद्धान्तों व मूल्यों से प्रेरणा लेकर ही इस देश में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन आदि धार्मिक संस्थाओं

का जन्म व विकास हुआ जिन्होंने हिन्दू धर्म की फिर से व्याख्या की और इसमें उत्पन्न गन्दगी को दूर करने के लिये क्रियात्मक कदम उठाये। इस कार्य में राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्या सागर, महर्षि दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, रविन्द्र नाथ टैगार, श्री अरविन्द, महात्मा गाँधी आदि ने उल्लेखनीय प्रयत्न किये। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप धार्मिक आडम्बर जाति–पाति का भेदभाव, छुआ–छूत की भावना आदि को लोग बुरा मानने लगे। पश्चिम की तो अवधारणा है कि संस्कृति की सत्ता सतत् परिवर्तनशील है। पश्चिमी चिन्तन संस्कृति की अतिमानस के व्यक्तित्व से नहीं जोड़ता। पश्चिम की मान्यता है कि संस्कृति की परिधि में केवल वही आता है जो जीवन के भौतिक पक्ष से जुड़ा हुआ है।[3]

भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति की आधारशिला है सत्य। जो सत्य नहीं है वह संस्कारवान् नहीं बन सकता। संस्कृति की परिपक्वता तो सत्य के साक्षात्कार उसकी अभिव्यक्ति और उसकी विजय से ही प्रमाणित होती है। जहाँ सत्य का बोध नहीं है, वहाँ पशुत्व अथवा अज्ञान किसी न किसी रूप में विद्यमान रहेगा। जबकि संस्कार का लक्ष्य है पशुत्व और अज्ञान से मुक्ति तथा देवत्व की उपलब्धि। देवत्व की उपासना का अर्थ यहाँ किसी देवता की मूर्ति या पूजन या उससे संबंधित कर्मकांड से नहीं है। देवत्व का अर्थ परम चैतन्य ही सत्य है और उसके प्रति उन्मुख हो जाने से है।

---

[3] नरेन्द्र मोहन, भारतीय संस्कृति पृ0 30

संस्कृति सत्य का ही विकरण है। उसे हम सत्य का प्रकाश भी कह सकते है। जैसे सूर्य की प्रत्येक किरण सूर्य का ही प्रतिनिधित्व करती है, इन किरणों के माध्यम से ही सूर्य अपने को अभिव्यक्त करता है। उसी प्रकार सत्य भी संस्कारों के माध्यम से अपने को अभिव्यक्त करता है। भारतीय संस्कृति में कुछ ऐसे शब्द हैं, जिन्हें सत्य के अनुभूतिकर्ता के साथ विशेष रूप से जोड़ा गया है। जैसे सन्यास, मोक्ष, कैवल्य, और निर्वाण।

तत्त्वमसि भारतीय संस्कृति का महावाक्य है। तत्त्वमसि के इस महावाक्य से ही 'अहं ब्रह्मस्मि' का बोध जाग्रत होता है, अर्थात् सब कुछ ब्रह्म ही है। इस महाबोध से जो अगली यात्रा है, वह है 'सोऽहम' की। जो भी है, वह मैं हूँ हर शब्द हर विचार, हर भाव हर अनुभव, हर अनुभूति, हर ज्ञान हर भेद "मैं" ही हूँ कुछ भी पृथक नहीं है। भारतीय संस्कृति के तीन आधारभूत वाक्यों पर रजनीश ने अपने ग्रन्थ 'अध्यात्म उपनिशद' में बहुत सुन्दर व्याख्या की है– जिसने अपने चित्त को ऐसे वाक्यों के साथ एकतान कर लिया जिसका चरित्र और जिसका चित्त इनकी अभिव्यक्ति बन गया।[4] भारतीय संस्कृति मानव जीवन की ऊर्जा के मूल स्रोत को खोजती है और उसके साथ प्रवाहित होती है। यह संस्कृति जीवन के किसी भी पक्ष को नकारती नहीं, उसे संस्कारित करती है।

भारतीय संस्कृति एक ओर जहाँ सत्य की खोज में सतत्रत है और इस खोज के निमित्त जहाँ केवल आडंबरों का ही नहीं, बल्कि व्यक्तित्व के हर नाम व रूप के सम्पूर्ण विसर्जन की पक्षधरता करती है वही दूसरी ओर

---

[4] नरेन्द्र मोहन, भारतीय संस्कृति पृ0 52–53

इस संस्कृति में जैसा अद्भुत समन्वय है, वह मानवता के लिये एक श्रेष्ठतम देन है। इस संस्कृति की विशेषता ही यह है कि वह हर बात, हर पक्ष के लिये राजी है।

भारतीय संस्कृति बहुआयामी भी है और एकांगी भी। भारतीय संस्कृति में कई संस्कृतियाँ समाहित है जिसके कारण यह गंगा जमुनी संस्कृति के नाम से भी जाना जाता है। 'सत्यम्' जहाँ भारतीय संस्कृति का आत्मतत्व व उसका कारण शरीर है। वही 'शिवम्' उसका सूक्ष्म स्वरूप और चेतना है तथा 'सुंदरम्' को भारतीय संस्कृति के स्थूल शरीर के रूप में देखा जा सकता है।

भारतीय संस्कृति में यज्ञ की बड़ी महिमा है। हवन, पूजन व यज्ञवेदी में अग्नि जलाकर उसमें हवि डालने का जो कार्य है, उसे सामान्यतः यज्ञ कहा जाता है। कर्मकांडियों के अनुसार यज्ञ से देवता प्रसन्न होते है। भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, मुख्य बिन्दु है–भारतीय संस्कृति में धर्म का प्रयोग अत्यंत व्यापक स्तर पर है। धर्म को कहीं कर्तव्य के साथ जोड़ा गया है, कहीं उसे पदार्थ के मूल स्वभाव से जोड़ा गया है, कहीं उसे सर्वकल्याण के साथ जोड़ा गया है और कहीं धर्म परम ब्रह्मा का प्रतीक है। धर्म की आज कोई सीधी परिभाषा उपलब्ध नहीं है क्योंकि इसका सम्बन्ध व्यक्ति के अंतर्मन से तो है ही, साथ ही देश, काल और परिस्थितियों का भी पूरा–पूरा प्रभाव है।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति होने के बावजूद आज भी जीवंत है और मानवता के विकास में सहायक है। प्राचीनतम संस्कृति

होने के कारण इतिहास मानवता के हर पग से जुड़ा हुआ है। विश्व के इतिहास का कोई भी पृष्ठ ऐसा नहीं है जो भारतीय सस्कृति से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित न रहा हो। भारतीय संस्कृति में निरन्तरता भी देखने को मिलती है। यूनान रोम और सुमेर की प्राचीन संस्कृतियाँ समय के प्रवाह में बह चुकी है आज वहाँ निवास करने वाले लोगो के जीवन में इस संस्कृति का कोई सूत्र नहीं रह गया है। पर प्राचीन भारतीय संस्कृति उसका समाज व संस्थायें आज भी जीवित है और उसकी परम्परायें आज भी भारतीय जीवन में विद्यमान है। जहाँ भारतीय समाज में व संस्कृति में निरन्तरता है, तो परिवर्तनशीलता या गतिशीलता भी है।

संस्कृति का मार्क्सवादी सिद्धान्त

कार्ल मार्क्स और उनके अनुयायो संस्कृति को वर्ग की वस्तु मानते हैं और कुछ अंशों तक संस्कृति को प्रगति से सम्बन्धित करते है। मार्क्सवादी अनुभव जगत को दो भागों में विभाजित करते हैं– प्रथम भौतिक वस्तु सम्बन्ध और द्वितीय चेतना या विचार। मार्क्सवाद बौद्धिक चेतना को वस्तु सम्बन्धों पर आश्रित बताता है।

मार्क्सवाद के अनुसार संस्कृति का सम्बन्ध सामाजिक चेतना से है और सामाजिक चेतना तथा उससे उत्पन्न संस्कृति सामाजिक सत्ता पर निर्भर रहती है। सामाजिक सत्ता से अभिप्राय है भौतिक सामाजिक सम्बन्ध। समाज में वस्तुओं और सम्पत्ति का उत्पादन करते हुए मनुष्यगण निश्चित सम्बन्धों से सम्बन्धित हो जाते है। ये सम्बन्ध अनिवार्य होते है। इन सम्बन्धों से ही समाज में वर्ग बनते हैं और वर्गभेदों का स्वरूप निश्चित हो जाता है।

वे समस्त सम्बन्ध या वर्ग किसी समाज के आर्थिक ढाँचे को निमित्त करते हैं और यह अधिक ढाँचा मूल और असली आधार होता है जिस पर कानूनी और राजनीतिक ढाँचा खड़ा होता है और जिससे सामाजिक चेतना के रूप में निश्चित होते है। संस्कृति इसी सामाजिक चेतना से सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में कह सकते है उसके आदर्शों की अमिट छाप उस समाज की संस्कृति पर अंकित होती है। वर्ग के अधिकार और सत्ता के बदलने से संस्कृति भी बदलती है। मार्क्स मत में आर्थिक पद्धति ही संस्कृति का प्राण है। संस्कृति के विविध अंगों का विकास इस प्रगति की अनुषंगिक है परिणित मात्र है।[5]

संस्कृति परिवर्तन और प्रगति पर निर्भर रहती है। जब तक किसी संस्कृति को उत्पन्न करने वाला वर्ग स्वयं प्रगतिशील रहता है, तब तक उसकी संस्कृति भी प्रगतिशील रहती है। जब वह प्रगतिशील नहीं रहता तब उनकी संस्कृति भी प्रगतिशील नहीं रहती है, बल्कि मूल्यहीन हो जाती है। उदाहरणार्थ जब यूरोप में बुर्जुआ वर्ग ने सामन्तवादी व्यवस्था को नष्ट किया, उस समय प्रगतिशील और क्रान्तिकारी था, क्योंकि उस समय बुर्जुआ वर्ग सम्पत्ति का अधिक और शीघ्रता से उत्पादन कर रहा था। जिस युग में सामन्तवादी समाज व्यवस्था विच्छिन्न हो रही थी, उस समय बुर्जुआ वर्ग की संस्कृति उन्नतिशील और महत्वपूर्ण थी। इसी समय मजदूर वर्ग और पूँजीवादी वर्ग दोनों का ही उत्थान हो रहा था। परन्तु पूँजीवादी वर्ग की दशा ऐसी नहीं थी कि वह अधिक से अधिक सम्पत्ति का उत्पादन करे,

---

[5] बी0 एन0 लूनिया, प्राचीन भारतीय संस्कृति पृ0 3

इसलिये वह संस्कृति जिसका प्रतिनिधित्व पूँजीवादी वर्ग कर रहा था, अप्रगतिशील बन गयी थी।[6]

शासक वर्ग जिन विचार प्रणालियों को जन्म देते हैं वे उसके स्वार्थों को पुष्ट करने वाली होती हैं। ये विचार पद्धतियाँ और धारणाएं उन लोगों के बीच, जो उत्पादन के साधनों पर अधिकार रखते हैं और उन श्रमिकों व अन्य लोगों के बीच, जो उत्पादन करते है, ऐसे सम्बन्धों को कायम रखती हैं और विकसित करती है जो शासक वर्गो के लिये हितकर होते है। ये विचार प्रणालियाँ और धारणायें मनुष्यों के लिये तब तक उपयोगी होती है जब तक वे उन वर्ग सम्बन्धों की बौद्धिक पुष्टि करती हैं जो अधिक उत्पादन के आधार है। जब ये सम्बन्ध अनुपयोगी हो जाते हैं ओर जब ये अधिक उत्पादन में बाधक होते हैं तब वे विचार पद्धतियाँ और प्रणालियाँ भी जो उन सम्बन्धों का मण्डन करती थी, पुरानी और अप्रगतिशील हो जाती है।

संस्कृति की सार्थकता

वास्तव में सांस्कृतिक क्रियाकलाप निरूपयोगी नहीं होते हैं। सांस्कृतिक कार्य बाहर से उपयोगी प्रतीत न होते हुए भी मनुष्य के अस्तित्व को विस्तृत और समृद्ध बनाने वाले होते है। सांस्कृतिक क्रियाकलाप चेतना का विस्तार करते हैं। मनुष्य का व्यावहारिक जीवन निरन्तर उसके सांस्कृतिक जीवन में लगातार उपयोगी एवं निरूपयोगी तत्वों की क्रिया–प्रतिक्रिया होती रहती है। एक ही आवश्यकता कई प्रकार से पूर्ण की जा सकती है। सुसंस्कृत व्यक्ति अपनी आवश्यकता को ऐसे मोहक, उदार,

---

[6] बी0 एन0 लूनिया सभ्यता और संस्कृति पृ0 3–4

विशाल और साहसपूर्ण ढंग से पूर्ण करता है कि उसकी पूर्ति के साथ–साथ उसे किसी ऊँचे मूल्य का लाभ भी हो जाये।

एक सुसंस्कृत मनुष्य के जीवन में अनेकानेक उपयोगी क्रियाकलाप एक ऐसे कार्यक्रम का अंग बन जाते हैं जिससे कतिपय आदर्श प्राप्त होते हैं। इस प्रकार संस्कृति जीवन के मामूली कार्यकलापों को एक नये सौंदर्य से मण्डित करती है। एक असभ्य, जंगली मनुष्य के लिए नारी एक ऐसी वस्तु है जो उसकी विशिष्ट शारीरिक आवश्यकता को पूरा करती है किन्तु एक सुसंस्कृत पति या प्रेमी की दृष्टि में जिसके मस्तिष्क में कवियों और दार्शनिकों के भाव है, वह नारी उन सब तत्वों की प्रतीक बन जाती है जो सुन्दर और शोभन है। इस प्रकार सुसंस्कृत व्यक्ति जीवन की तुच्छ और लघु से लघु वस्तुओं तथा क्रियाकलापों को बहताक के अनेक मूल्य एवं तथ्यों की पृष्ठभूमि में देखता है। दूसरों को जो वस्तु तुच्छ मूल्यहीन ओर अपदार्थ जान पड़ती है। वह सुसंस्कृत व्यक्ति को अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रतीत हो सकती है वे उसे तुच्छ प्रतीत होती है। सांस्कृतिक चेतना और कल्पना जीवन की करूणा, सौन्दर्य एवं अन्य तत्वों को बड़े–बड़े रूप में प्रदर्शित करती है। जिन आदर्शों एवं मूल्यों को लेकर मनुष्य जीवित रहता है उनकी गरिमा और सौन्दर्य उस मनुष्य के सांस्कृतिक स्वरूप को प्रस्तुत करते है। इस प्रकार संस्कृति वस्तु जगत के उन पहलुओं की जीवन एवं शक्तिपूर्ण चेतना है जो उपयोगी न होते हुए भी अर्थवान है, लाभदायक न होते हुए भी महत्वपूर्ण है। इस चेतना से सम्पन्न होकर मनुष्य उन वस्तुओं और तत्वों से सम्पर्क साधता है जिनका सम्बन्ध उसकी विशुद्ध आध्यात्मिकता से है, उसकी जीव प्रकृति

से है। यही धर्म और दर्शन का ज्ञान होता है। इसलिये कहा जाता है कि धर्म और दर्शन संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है। आज का मनुष्य धर्म और दर्शन से वंचित हो जाने के कारण छिछला सौन्दर्यवादी बन गया है। इस प्रकार संस्कृति मनुष्य के जीवन और अस्तित्व को अधिक सचेतन, व्यापक और समृद्ध बनाती है, उसकी आध्यात्मिकता में वृद्धि करती है धर्म और दर्शन का विकास करती है।[7] संस्कृति की यही सार्थकता है।

इस प्रकार यदि संस्कृति की व्याख्या की जाये तो स्पष्ट होता है कि इसका पहला उद्देश्य है ऐसे संस्कारों को भरना जिससे समाज की हर इकाई ईमानदार विनम्र और दायित्वबोध से लैस हो। इस नाते संस्कृति की राजनीति का पहला पड़ाव एक ऐसे **आदर्श सरकारी तन्त्र का माडल** खड़ा करने में होना चाहिये था, जो भ्रष्टाचार के विषाणुओं से रहित हो।

संस्कृति की राजनीति नयी आर्थिक नीतियों से उत्पन्न हो रही जटिलताओं के प्रबंधन का औजार सिद्ध हो रही है। लेकिन एक मानव विरोधी व्यवस्था को इस तरह प्रबन्धन करके कब तक निरापद रखा जा सकेगा। आखिर तो इसमें विस्फोट अवश्यमभावी है। इसे रोक कर संस्कृति की राजनीति का सम्बन्ध जीवन की वास्तविकताओं से जोड़ना पड़ेगा।

समाजशास्त्रियों ने संस्कृति और सभ्यता के बीच अन्तर किया है। वे संस्कृति में आदर्शों और मूल्यों को शामिल करते हैं और सभ्यता में विज्ञान, प्रौद्योगिकी या सामाजिक यान्त्रिकी को सम्मिलित करते हैं।[1] संस्कृति लक्ष्य है, संस्कृति आधार है, संस्कृति मूल्य है, संस्कृति धर्म और कर्म है। जबकि

---

[7] बी० एन० लूनिया सभ्यता और संस्कृति पृ० 7–8

सभ्यता साधन रूप अथवा उपयोगितावादी एवं भोगवादी है। परन्तु मानवशास्त्रियों ने संस्कृति को विस्तृत रूप में परिभाषित एवं तर्कयुक्त बनाया का प्रयास किया है। चाहे वे मानसिक तथ्य अर्थात् विचारधारायें हो, चाहे उसके श्रम के तथ्य हों, चाहे वे सामाजिक तथ्य हों।

संस्कृति की राजनीति कार्यों की जटिलता और विशालता का समन्वय है, राजनीति एक अत्यन्त विशाल विषय है। राजनीति की मूल संकल्पनाओं, तथ्यों, अवधारणाओं एवं व्याख्याओं को जानना आवश्यक होता है। ***प्रो0 योगेन्द्र सिंह*** का कहना है आधुनिक भारत में परम्परागत समाज और सांस्कृतिक प्रतिमानों की विशेषताओं का वर्णन करना एक कठिन कार्य है। अमूर्तता के स्वर पर ऐसा सम्भव है अर्थात् हम परम्परागत विशेषताओं का वर्णन सामाजिक व्यवस्था, मूल्य व्यवस्था तथा व्यक्तित्व व्यवस्था के स्तर पर आदर्श–प्रारूप द्वारा ही कर सकते हैं।[8]

भारतीय समाज में राजनीति तथा कानून के क्षेत्र में कानून का शासन, कानून के सामने समानता तथा प्रजातान्त्रिक सरकार की धारणा यद्यपि नवीन धारणायें हैं परन्तु इसका स्रोत प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में खोजा जा सकता है। भारतीय संविधान में स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व पश्चिमी विचारधारा से ली गयी है फिर भी न्याय, एकता के तथ्य, अवधारणायें, शासन करने की पद्धति, लोकतन्त्रात्मक परम्परायें, जनतान्त्रिक सरकार के नियम प्राचीन भारतीय संस्कृति में खोजी जा सकती है। विशेष रूप से बौद्धकालीन गणतंत्रात्मक राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था मे।

---

[8] सुदर्शन सिंह 'चक्र' "हमारी संस्कृति" पृष्ठ – 1

वर्तमान काल में जनतंत्र में बहुत कमियां अथवा असफलतायें दिखायी देती है। तो उनका कारण भारतीय जीवन की परम्परायें रीति–रिवाज और मान्यतायें नहीं है। अपितु राजनीतिक गुटबंदी, सांप्रदायिकता, उग्र विचारधारायें, राजनीति में वैमनस्यता, न्यायिक व्यवस्था, अमानवीय, अनैतिक और अवैधानिक अवधारणाओं की व्याख्या करना है।

विवेकानन्द ने चेतावनी दी थी कि **"जब सिद्धान्त पूरी तरह सृष्टि से ओझल हो जाता है एवं भावावेश ही प्रभावी हो जाता है तो धर्म का कट्टरतावाद एवं संकीर्णतावाद में अधः पतन हो जाता है।**(खण्ड–6) **जब पूर्वाग्रह धार्मिक लबादा या यहाँ तक कि एकांतिक, सामुदायिक चेतना से ढक जाता है तो उसका घालमेल काफी सोधातिक हो जाता है और विद्वेष भर दिया जाता है तो वे सबसे घृणित एवं अधम भूमिका अदा करते हैं।**[9] आर0 एस0 एस0 की मान्यता है कि स्वाधीनता के बाद भी हिन्दुओं की यह मूल निर्बलता हिन्दुओं का पिंड नहीं छोड़ रही है। देश के नेतृत्व की यह उथली धारणा नितांत थोथी सिद्ध हो रही है कि विभाजन के बाद मुस्लिम अलगाववाद का अंत हो जायेगा। हिन्दु न तो जाग्रत है और न ही संगठित। इस अभाव से प्रोत्साहन पाकर गिरगिट जैसे रंग बदलने वाले राजनेता मुस्लिमों के थोक वोट हथियाने के लिये **उनके तलवे चाट** रहे हैं। फलतः मुस्लिम अलगाववाद और कट्टरवादिता का विषधर तुष्टीकरण का दूध पीकर मीठा होता जा रहा है और दिनों–दिन नये–नये भयावह तथा उग्र रूप धारण कर रहा है।[10]

---

[9] वही, पृष्ठ – 5

[10] सुदर्शन सिंह 'चक्र' "हमारी संस्कृति" पृष्ठ – 45

संस्कृति की राजनीति में राष्ट्र की संकल्पना राजनीतिक व आर्थिक चिन्तन की अभिव्यक्तियाँ, संस्कारिक तटस्थता के मान को विकसित करती है। "किसी राष्ट्र के लिये प्रथम अपरिहार्य वस्तु एक भूखण्ड है जो यथा सम्भव किन्हीं प्राकृतिक सीमाओं से आबद्ध हो तथा एक राष्ट्र के रहने, वृद्धि और समृद्धि के लिये आधार रूप में काम दे। द्वितीय आवश्यकता है उस विशिष्ट भू–प्रदेश में रहने वाला समाज जो उसके प्रति मातृभूमि के रूप में प्रेम एवं पूज्यभाव विकसित करता है तथा अपने पोषण सुरक्षा और समृद्धि के स्थान के रूप में उसे ग्रहण करता है।[3] 'आर0एस0 एस0 की यह भी मान्यता है कि वह समाज केवल मनुष्यों का समुच्चय ही नहीं होना चाहिये। विजातीय व्यक्तियों का किसी स्थान पर एकत्रीकरण मात्र नहीं चाहिये। उनके जीवन की एक विशिष्ट पद्धति बनी होनी चाहिये, जिसको जीवन के आदर्श, संस्कृति, अनुभूतियों, भावनाओं, विश्वास एवं परम्पराओं के सम्मिलित के द्वारा एक स्वरूप दिया गया हो।

इस प्रकार जब समाज समान परम्पराओं एवं महत्वाकाक्षाओं से युक्त अतीत जीवन की सुख–दुख की समान स्मृतियों और शत्रु मित्र की समान अनुभूतियों वाला तथा जिनके सभी हित सम्बन्धित होकर एकरूप हो गये हैं इस सुव्यवस्थित रूप में संगठित हो जाता है तब इस प्रकार के लोग उस विशिष्ट प्रदेश में पुत्र के रूप में निवास करते हुये एक राष्ट्र कहे जाते हैं।"[11]

---

[11] डा0 धर्मवीर भारती "भारत की सांस्कृतिक विरासत" पृष्ठ –1, (प्रकाशक– शिक्षा साहित्य प्रकाशन, मेरठ)

संस्कृति के लिये दूसरे शब्द की तरह कभी–कभी सभ्यता का उपयोग किया जाता है, किन्तु सामान्यतया यथार्थ में सभ्यता मनुष्यों के सांस्कृतिक विकास की वह स्थिति है, जिससे नगर कहे जाने वाले जनसंख्या के क्षेत्रों में वे रहना प्रारम्भ कर देते हैं तथा उच्च श्रेणी के भौतिक जीवन का उच्च जीवन स्तर के प्रतीक बन जाते हैं। किन्तु उच्च स्तर के भौतिक जीवन में संस्कृति का अंश तभी आता है, जबकि वह उसमें हो या उच्च नैतिक मूल्यों को प्राप्त करने का कोई माध्यम बने। ऐसा जन जीवन, नैतिक मूल्य से दूर रहता है, तब वह सांस्कृतिक विकास में अवरोध बन जाता है। इस तरह सभ्यता हमेशा संस्कृति की मित्र नहीं होती, बल्कि कभी–कभी शत्रु बन जाती है।

"संस्कृति मनुष्यों के समुदाय में रहती है, जिसे कि समाज कहा जाता है। ऐसे जिस समाज में राजनैतिक और सांस्कृतिक एकता पायी जाती है या वह समाज ऐसी एकता का इच्छुक होता है, तो उसे राष्ट्र माना जाता है।"[12] राजनैतिक धारणा के रूप में राष्ट्रीयता एकदम नयी बात नहीं है, किन्तु आधुनिक यूरोप में उसे एक नया महत्व प्राप्त हुआ है। पूर्व में धर्म, जाति और संस्कृति के साथ–साथ राज्य को एक शक्ति माना जाता था जो लोगों को एक दूसरे के निकट लाने और एक सूत्र में बाँधकर रखने का कार्य करता था, किन्तु जब यूरोप में लोगों के मस्तिष्क से धर्म का प्रभाव घटा तथा चर्चों में लोगों की एकता में रखने की क्षमता नहीं रह गयी, तब राज्य

---

[12] डा० धर्मवीर महाजन "भारत की सांस्कृतिक विरासत" पृष्ठ – 185 राजनीति में पूर्वाग्रह

एकता और राष्ट्रीयता का वास्तविक माध्यम हो गया अर्थात् एक ही राज्य का नागरिक होगें, एकता का सबसे शक्तिशाली सूत्र बन गया।

भारत की राष्ट्रीय संस्कृति में दो तत्व निहित हैं–समान प्रकृति और समान दृष्टिकोण, जिसे भारतीय मस्तिष्क तथा विभिन्न आन्दोलनों और संस्कृति का बौद्धिक प्रभाव बनता है, जिसका राष्ट्रीय मस्तिष्क के साथ सामंजस्य स्थापित हो गया है, इनमें वे संस्कृतियाँ शामिल हैं, जो प्रागैतिहासिक काल में विधमान थीं। जिनका देश के साथ अस्थायी सम्बन्ध रहा। वे जो बाहर से आयी और भारत में अपना घर बना लिया तथा अंत में वे क्रान्तिकारी बौद्धिक आन्दोलन जो आप से आप स्वयं समय–समय पर इस देश में उत्पन्न हुये।

संस्कृति के वस्तुगत पहलुओं, जैसे भोजन, पोशाक, जीवन, प्रणाली आदि पर जलवायु तथा आर्थिक साधनों का प्रभाव काफी स्पष्ट है, जिसके सम्बन्ध में बहस की जरूरत नहीं है। इस तथ्य से कोई इंकार भी नहीं कर सकता कि भारतीय संस्कृति का वस्तुगत पहलू भी उसके प्राकृतिक और आर्थिक वातावरण के अनुसार ही निर्मित होता है किन्तु जब ऐसी विभिन्नताओं की ओर ध्यान जाता है, जिसके अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में लोगों की जीवन पद्धति और व्यवहार में विशिष्टताएं, जो शिक्षित वर्ग में पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण से उत्पन्न हुई है। यद्यपि भारतीय संस्कृति पर एक ओर विदेशी आक्रमण और दूसरी ओर अलगाववादी शक्तियाँ, निरंतर हावी रही और भारतीय राजनीति में विभिन्न प्रकार की विसंगतियों के विरूद्ध कार्य करती रहीं।

भारतीय राजनीति और संस्कृति का आपस में गठबन्धन है। संस्कृति के प्रतिमान हमेशा ऊँचे रहे हैं। संस्कृति में कई प्रकार के जठरत्व पाये जाते हैं जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से राजनैतिक गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। संस्कृति से संस्कार का निर्माण होता है। संस्कृति सभी स्तम्भों एवं अवधारणाओं की जननी है। जिसमें विभिन्न प्रकार की राजनैतिक अभीष्ट छिपे हुये हैं। संस्कृति से विभिन्न प्रकार के सिद्धान्तों का निर्माण होता है जो मानवीय संवेदनाओं को मिथ्यावादी राजनैतिक प्रमिमानों से परिचित कराते हैं।

संस्कृति और उससे जुड़ा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद जड़तत्व नहीं है और न उसमें किसी भी प्रकार की मूल्यविहीनता है। संस्कृति एक सतत् प्रवाहित धारा है जो राजनीति में वैचारिक अवधारणाओं और तथ्यों का निर्माण करती है। संस्कृति अंतस के कलुष को धोता है और कटुता को मिटाता है तथा जनमानस में राजनैतिक भावों को जगाता है। संस्कृति में अलगाववाद सम्प्रदायवाद और राष्ट्रीयतावाद के बीज उर्ध्वरोहण तरीके से बहते रहते हैं। "भारतीय संस्कृति में बुराई की ओर नहीं, बल्कि भलाई की ओर देखा जाता है। इस संस्कृति का लक्ष्य है अंधकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर, मृत्यु से अमरतत्व की ओर बढ़ना और तब तक बढ़ते ही चले जायें जब तक अमरतत्व की प्राप्ति न हो जाए।"[13]

---

[13] ए0 वी0 वर्धन, "विवेकानन्द का संदेश" पृष्ठ–7, (सी0 पी0 आई0 प्रकाशन)

भारतीय संस्कृति और उससे जुड़े राजनैतिक तथ्य राष्ट्रवाद का आपस में वैशिष्ट्य लगाव है। आज की राजनीति न तो सांस्कृतिक मूल्यों एवं तत्वों का अनुकरण करना चाहती है और न उसके उदात पक्ष को समझने के लिये तैयार है। डा0 केशव राव बलिराम हेडगेवार (R.S.S. के जनक) ने संघ की स्थापना की और जिन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को बचाने का प्रयास किया।

वर्तमान राजनीति भारतीयता के उदात् पक्ष को जानने और समझने से इन्कार करने लगी है। इस स्थितियों से कैसी मुक्ति पायी जाये यह अपने आप में बहुत बड़ी समस्या है। भारत की अपनी सांस्कृतिक विरासत और अपने प्राकृतिक वैशिष्ट्य की रक्षा तो करनी होगी। डा0 हेड्गेवार ने भारतीय संस्कृति की रक्षा करने के लिये कई प्रकार के अनवरत् प्रयत्न किये। उन्होंने संघ कार्य का वृक्षारोपण किया और एक महत्वपूर्ण सूत्र यह स्थापित किया कि संघ को नया कुछ करना है। उनकी मान्यता थी कि भारतीय संस्कृति, परम्परायें रीति–रिवाज प्राचीनतम है, भिन्न–भिन्न प्रतिकूल और अनुकूल परिस्थितियों से गुजरे है, तरूण एवं नव पीढ़ी को संस्कारित करके ये अपनी संस्कृति से परिचित कराकर राजनैतिक विकल्पों से जोड़ता है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्य में स्वयं सेवकों को अपने मन की भावनाओं, राष्ट्रीय विकास एवं संस्कृति के साँचे में ढ़ालकर संस्कृति की सर्वोपरिता और परिपूर्णता की ओर ले जाना है। तथा दूषित राजनीति को संस्कारित करके अनुशासन प्रिय बनाना है।

वर्तमान आरएसएस और उसके चिन्तकों का यह मानना है कि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के मूल में राजनीति नहीं है। पर वे यह स्वीकार करते है कि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के उद्घोष में राजनीति सहायक हो सकती है। और सहायक होनी चाहिए। राजनीतिज्ञों द्वारा दिया जाने वाला यह सहयोग राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्कर्ष एवं उत्थान में सहयोगी सिद्व होगा। परन्तु वर्तमान समय की राजनीति में मिथ्यावादी और सिद्धान्त विहीनता की धारा बह रही है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद तो राष्ट्र के गौरव और वैभव को बढ़ायेगा और एक ऐसी जागृति लाने में सहायक बनेगा जिससे राष्ट्र के शत्रुओं (अलगाववाद) साम्प्रदायवाद, आतंकवाद से आसानी से निपटा जा सकता है। प्रत्येक संस्कृति के शत्रु भी होते है और मित्र भी। जहाँ तक भारतीय संस्कृति की बात है वह अपने केन्द्र अर्थात अपने मूलाधार में पहुंचकर समस्त शत्रु एवं वैमनुष्यता, द्वेष और प्रतिशोध की भावनाओं को परित्याग कर देती है। और उसकी दृष्टि में शत्रु मात्र रह ही नहीं जाता लेकिन परिधि के स्तर पर शत्रुता का सामना करना पड़ता है।

आरएसएस का यह भी मानना है कि भारतीय संस्कृति सर्व विकास की पक्षधर है और परमशान्ति की उपासक है। पर परिधि पर जो चंचलता, चपलता और निष्कृष्टता है उस पर भी भारतीय संस्कृति प्रहार करने के लिये तैयार रहती है। भारतीय संस्कृति का सूत्रदीप एक महान और कार्यबोघता से परिचित करवाकर नयी कार्य पद्धति का स्वरूप एवं आकार प्रदान करती है।

डा0 हेडगेवार का मूलगामी चिन्तन :

मार्क्सवाद मानता है कि मानव समाज की समस्याओं एवं प्रतिकूल परिस्थितियों का मूल कारण आर्थिक है। उनकी मान्यता है कि आर्थिक विषमता दूर होते ही समाज और व्यक्ति के जीवन के सभी पक्ष स्वयं ठीक हो जाते हैं। दूसरी ओर गुलामी के समय सभी स्वाधीनता आन्दोलन के जननायक एवं लोकनायक कहते थे कि हमारी सभी समस्याओं का कारण हमारी पराधीनता है। ***डा० हेडगेवार*** के अनुसार, "हमारे सामाजिक और राजनैतिक जीवन में आई कतिपय न्यूनताओं के कारण हम पराधीन हुये और उन दोषों दुर्बलताओं को दूर किये बिना यदि हम स्वतंत्र हो भी गये तब भी अपनी स्वतन्त्रता को दुबारा गँवा सकते हैं इसके विपरीत यदि हममें स्वतंत्र रहने की पात्रता आ जाये तो फिर हमें परतंत्र तो कोई रख ही नहीं सकेगा। अतः स्वतंत्र होने के लिये प्रयत्न करने के साथ–साथ स्वतंत्र रह सकने की योग्यता अर्जित करना और भी अधिक आवश्यक है। तथा वह योग्यता सारे राष्ट्र को एक संगठन सूत्र में गूथने और अपनी संस्कृति, अपने आदर्शों एवं जीवन मूल्यों के प्रति गौरव बोध जाग्रत करने से आ सकती है स्वाभिमान से जीने के लिये दो बातें आवश्यक है–अपनी संस्कृति एवं आदर्शों की रक्षा करना और जीवन को संगठित एवं संयमित बनाना।"[14]

संघ के चिन्ताकों का यह स्पष्ट मत है कि तथाकथित धर्मनिपेक्ष भारतीय राजनीति ने बहुत से लोगों को दिशा एवं दिग्भ्रमित कर दिया है कि संघ की स्थापना मुस्लिम समाज की विरोधी है तथा मुसलमानों के विरूद्ध षड्यन्त्रकारी संस्था है। इस प्रकार की शंकायें सारे राष्ट्र एवं मुस्लिम

---

[14] हो० वे० शेषाद्रि, "कृतिरूप संघ दर्शन" पृष्ठ–5, (सुरचि प्रकाशन, नई दिल्ली)

समाज में व्याप्त है। डा0 हेडगेवार के उत्तराधिकारी द्वितीय सर संघ चालक गोलवरकर ने कहा था– "यदि पैगम्बर मुहम्मद साहब का जन्म न भी हुआ होता और इस्लाम अस्तित्व में आया ही नहीं होता तब भी यदि हम अपने समाज को ऐसी ही असंगठित अवस्था में पाते जैसा कि यह आज है, तो हम इसी प्रकार संगठन कर रहे होते जैसा अब कर रहे हैं।"[15]

भारतीय संस्कृति अन्तहीन विभिन्न राजनीतिक दूषित इकाइयों एवं सुदीर्घ संलयन का प्रतिफलन है। वर्तमान समय की लोकतांत्रिक प्रणाली और मानवतावादी दृष्टिकोण एवं सामाजिक ताने–बाने की सांस्कृतिक रूझानों की उपलब्धियों एवं उनके स्रोत हैं। सांस्कृतिक विलीनता और भौतिकवाद राजनीति के आयामों को दूषित कर रही है। राजसत्ता के भोग के लिये सांस्कृतिक मूल्यों की अवमानना और अवहेलना की जा रही है। हमारी प्राचीन संस्कृति को राजनीतिज्ञों ने कूड़ा और करकट की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। "आज हमारे देश में ऐसे लोग व ऐसे तत्व मौजूद हैं जो प्रगति समाजवाद मार्क्स के विचारों को "विदेशी" कहकर देश को पिछड़ेपन की ओर मोड़ने के लिये प्रयत्नशील है। वे दुनिया में नवोदित समाजवादी व सभ्य शक्तियों की धारा से अछूता रखकर इसे साम्राज्यवाद व सभ्य शक्तियों

---

[15] 1. डा0 कृष्ण कुमार बबेजा, "श्री गुरूजी–व्यक्तित्व एवं कृतित्व" पृष्ठ–151, (सुरचि प्रकाशन, नई दिल्ली)

में आबद्ध करने के लिये प्रयत्नशील है। और ये तत्व तथा शक्तियां दम्भी राष्ट्रवाद की आड़ लेते हैं।[16]

भारतीय संस्कृति के माध्यम से हिन्दुत्व की भावना को जाग्रत करना एवं उसका प्रचा–प्रसार करने का विचार डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी, दीन दयाल उपाध्याय, नानाजी देशमुख, अटलविहारी वाजपेयी आदि प्रमुख प्रचारक संघ के द्वारा दिये गये। आरएसएस के गुरू गोलवलकर ने स्पष्ट कहा था कि''राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को राजनीति में नहीं घसीटना चाहिये, क्योंकि वह किसी भी राजनीतिक दल के अधीन रहकर कार्य नहीं कर सकता, उसका वास्तविक कार्य राष्ट्र के सच्चे सांस्कृतिक जीवन आदर्श मूल्यों एवं आध्यात्मिक स्वरूप को पल्लवित एवं पुष्पित करना है।

संघ के चिन्तकों का यह मानना है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एक सांस्कृतिक एवं अनुशासित संगठन है, न कि राजनीतिक। उन्होंने हिन्दु समाज और हिन्दू राष्ट्रवादी भावनाओं को अभूतपूर्व उत्साह और हिन्दु एकात्मता की अनुभूति प्रदान की है। संस्कृति और राजनीति आपस में एक अनुपम विलयता का लोकतांत्रिक प्रारूप एवं प्रकार्य है। जिसमें विभिन्न महापुरूषों की अखण्डता और त्यागता का समावेश है। हिन्दु धर्म और ब्राह्मण ग्रन्थों का सूत्रात्मक और एकात्मक प्रायोजन है। राजनीति एक तन्त्र है जिसके द्वारा समस्त नैमित्तिक कार्य को एवं स्वरूप को विभिन्न विचार

---

[16] डा0 कृष्ण कुमार बबेजा, ''श्री गुरूजी–व्यक्तित्व एवं कृतित्व'' पृष्ठ–151, (सुरचि प्रकाशन, नई दिल्ली)

मण्डल से गौरवान्वित किया जाता है। भारतीय संस्कृति एक वैश्विक कीर्तिमान है जिसमें एकरूपता और समरसता के बीज अंकुरित होते रहते हैं।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ द्वारा नियंत्रित और निर्देशित राजनीति में पिछले चार दशक में जो उभार दिखाई दिया वह यूरोपीय देशों के नवजीवनवाद के उभार के अनुरूप है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना वर्ष 1925 में हिटलर की नाजी और इटली के मुसोलिनी की फांसिस्ट पार्टी के उदय के साथ–साथ हुयी थी। संघ के संस्थापक केशवराव बलिराम हेडगेवार, गोलवरकर व सावरकार, हिटलर और मुसोलिनी की राजनीति तब राष्ट्रवाद की विचारधारा और नवजीवनवाद की नीतियों से अधिक प्रभावित हुये।[17]

शुद्ध रक्त और नस्ल पर आधारित यह राष्ट्रवाद अपने देश के अल्पसंख्यक समूह के प्रति उतना ही असहिष्णु था जितना हिटलर का नाजीवाद यहूदियों के प्रति, संघ की पुस्तकों में हिटलर की प्रशंसा अनेक स्थानों पर मिलती है। इन पुस्तकों में यह भी सन्देश दिया गया है कि हिन्दुओं को हिटलर से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिये। अस्पृश्यता उन्मूलन के उद्देश्य से महात्मा गाँधी सन् 1934 में भारत यात्रा पर निकले तो उनके विरोध में नागपुर में एक जनसभा का आयोजन किया गया था। इसमें हिन्दु महासभा में एक जनसभा का आयोजन किया था। इसमें हिन्दु महासभा के नेता भाई परमानन्द के स्वागत में डा0 हेडगेवार ने संघ के स्वयंसेवकों से **"गॉड आफ ऑनर"** दिलाया जो राष्ट्रीय सम्मान और संस्कृति का प्रतीक है।

---

[17] दैनिक जागरण (कानपुर संस्करण) 28/10/2005

निष्पक्ष रूप से विश्लेषण किया जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि डा0 हेडगेवार में अदम्य इच्छाशक्ति और देशभक्ति की भावना थी। उनका व्यक्तित्व विराट उदात एवं सनातनीय राष्ट्र की कल्पना से ओतप्रोत था। वामपंथी राजनीतिज्ञ, विचारकों, वक्ताओं, वामपंथी कार्यकर्ताओं ने डा0 हेडगेवार के व्यक्तित्व पर कम उनके कृतित्व व विचारों पर ज्यादा कटाक्ष किया है। पर डा0 हेडगेवार में त्याग करने की क्षमता अविचल दृढ़ निश्चय और दुर्लभ संगठन कौशल और गुणों की प्रशंसा से हम बच नहीं सकते। सर्वाधिक प्रशंसनीय यह है कि उन्होंने कभी भी श्रेय लेने की कोशिश नहीं की और सर्वदा राजनीति तथा राष्ट्रवाद को व्यक्तिवाद से ऊपर रखा।

सांस्कृतिक विविधताओं पर दृष्टिपात करे तो चरम की विविधतायें देखने को मिलती हैं यदि वे पर्दा करने वाली मुसलमान और हिन्दु स्त्रियाँ है कि जिनके शरीर का कोई भी अंग पर्दे के बाहर नहीं तो दूसरी ओर ऐसे नागा साधुओं का सम्प्रदाय हैं जो बिल्कुल ही नंगे रहते हैं। एक ओर ऐसे समूह है जो माँस तो क्या प्याज भी नहीं खाते, तो दूसरी ओर ऐसे लोग भी है जिनके दैनिक जीवन का भोजन ही मांसाहारी है। इस प्रकार भारत एक सांस्कृतिक विविधता वाला देश है और आदि काल से रहा है।

विविधता और एकता का सम्बन्ध बहुत पुराना है। प्रकृति का अटूट नियम है कि पहले विविधता होती है और वही बाद में एकता पैदा करती है। समाज और राजनीति के प्रारम्भ और विकास भी इसी सिद्धान्त के आधार पर हुआ। राजनीति और राजनीतिक जीवन इसलिये विकासोन्मुख है कि इसमें विभेदीकरण और एकीकरण की प्रक्रियाएं साथ–साथ चलती रहती है। यही

कुछ भारतीय राजनीति, समाज और संस्कृति में हुआ है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति और राजनीति को ग्रामीण, नगरीय एवं जनजातियां में विभाजित किया जा सकता है। वर्तमान समय की राजनीति में सत्ता का क्षरण, विभिन्न प्रकार की राजनीतिक त्रासदियाँ जो राष्ट्रीय और क्षेत्रीय पार्टियों द्वारा उनका संचालन किया जात है, विभिन्न प्रकार के आन्दोलन, संगठन, मंच, संस्थायें एवं उनको चलाने वाले विभिन्न राजनीतिक शिरोमणि जिन्होंने अपने चेहरे पर कई प्रकार के नकाब लगा रखे है जो विभिन्न प्रकार की राजनैतिक गतिविधियों को संचालित करने के लिये अपने सिद्धान्त एवं सूत्रों का प्रतिपादन करते हैं।

संघ के चिन्तकों का मानना है कि हिन्दु राष्ट्रवादियों की विचारधारा को विभिन्न राजनेताओं के द्वारा चेतन्य अचेतन्य किया जाता है। संघ द्वारा हिन्दु समाज में चेतना पैदा करने के चारों ओर प्रमाण मिल रहे है। आज वर्तमान का हिन्दु अपने अस्तित्व को चुनौती देने वाले दृश्य और अदृश्य खतरों के विरोध में सावधान हो गया है। इसका मुख्य कारण राजनीतिक विषवमन के द्वारा सम्प्रदायवाद को जन्म देना। राजनीतिक नेता भी इस बात को अनुभव करते दिखायी दे रहे है कि इस देश का अप्राकृतिक स्वरूप दृष्टि की विशालता, सहनशीलता, अध्यात्मिक दृष्टिकोण तथा भारतीयता के प्रति निष्ठा इसलिये है क्योंकि हिन्दु इस देश में बहुमत में है।[18] और यदि

---

[18] डा0 हरिश्चन्द्र बथ्वलि, ''राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एक परिचय'' पृष्ठ–९ (सुरूचि प्रकाशन, केशवकुंज, नई दिल्ली)

दुर्भाग्य से हिन्दु अल्पसंख्यक हो गया तो यह सारे सद्गुण समाप्त हो जायेंगे।

चुनाव के समय राजनीति और संस्कृति का आपस में समन्वय दिखायी पड़ता है। विभिन्न प्रकार की राष्ट्रीय राजनीतिक पार्टियाँ और क्षेत्रीय दल अपने मूल सिद्धान्तों द्वारा राष्ट्र की अखण्डता की रक्षा तथा स्वच्छ प्रशासन का आश्वासन देकर जनसमर्थन की माँग करते है। परन्तु वास्तव में संस्कृति का मूल्य एवं महत्व कहीं भी दिखायी नहीं पड़ता है। जनमानस का राजनीतिक पार्टियों से दिन–प्रतिदिन विश्वास घट गया है। राजनीतिक शून्यता और राजनीतिक रिक्तता का अभाव फैलता जा रहा है। सत्तारूढ़ दल एवं विपक्षी दल अपनी–अपनी गोटियाँ विठाने के लिये रात–दिन दौड़ते रहते है। वर्तमान समय में वामपंथियों एवं भाजपा की सरकारें राष्ट्रीय असफलताओं एवं विफलताओं का वायदा करती है। परन्तु व्यवहारिक तौर पर विभिन्न स्थानीय असफलताओं राजनीति को प्रभावित करती है।

डा० हेडगेवार ने संघ वृक्ष बीज बोने के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के निर्णायक प्रभाव डाले जिससे सम्पूर्ण राष्ट्र संगठित होकर सारे चिरपोषित जीवन आदर्शों का संचालन कर सके। राष्ट्रीयता एक राजनीतिक धरातल पर अपने विशेष मापदण्डों के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीयता का निर्माण करती है। संस्कृति बिगड़े हुये विदेशी सम्बन्ध को जागरूप और सामाजिक बनाने में अपना विशिष्ट योगदान देती है। आये दिन समस्यायें, चुनौतियाँ उग्ररूप धारण कर रही है तथा प्रत्येक क्षेत्र में अभूतपूर्व सहयोग मिल रहा है। राजनीति प्रान्तीय और अखिल भारतीय स्तरों पर विचार–विमर्श करने का

एक मुद्दा है। अनेक दृष्टियों से भारतीयता संस्कृति अनुपम और भव्य रही है, संस्कृति के द्वारा एक चैतन्यमय वातावरण का सृजन किया जाता है।

संस्कृति के द्वारा हिन्दुत्व की शक्तियों को सुदृढ़ करना तथा अस्पृश्यता का उन्मूलन करना नगरों के झुग्गी–झोपड़ी निवासियों की वेदना को समझना, ग्रामीण निर्धन तथा वनवासी जैसे समाज के उपेक्षित एवं पिछड़े वर्ग के उत्थान के कार्यों में लगना वास्तव में सही राजनीति का मूल्यांकन तभी होगा जब सभी वर्गों का व्यापक विकास हो एवं उत्तम जन–प्रतिसाद अर्जित हो जिससे समाज में स्पष्टवादिता एवं राजनीतिक सार्वभौमिकता का प्रचार–प्रसार हो। अधिकांश क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के आन्दोलन हुये सार्वजनिक कार्यक्रम तथा सामूहिक गोष्ठियाँ आयोजित की जाती है। विभिन्न प्रकार के सन्त महात्माओं, मठाधीश, मौलवी उल्लयाओं एवं पादरियों एवं ग्रन्थी द्वारा संस्कृति पर उल्लेखनीय विचार धाराओं को प्रस्तुत किया जाता है जिससे प्रत्येक जनमानस सांस्कृतिक मूल्यों का संचय कर सके समाज के प्रमुख विचार निर्माताओं ने स्पष्टवादिता तथा हिन्दु पुनरूत्थान के लिये सांस्कृतिक चेतना में लगा हुआ परन्तु वास्तव में सांस्कृतिक विचारधारा में कहां विपुलता और अनुपमता दिखाई पड़ती है। केवल कुछ अंश संस्कृति के दिखलायी पड़ते हैं जो जनसाधारण में स्वयं स्फूर्ति प्रक्रिया का निर्माण करते है हिन्दु जनमत अपने सामाजिक जीवन में रचनात्मक एवं गत्यात्मक की स्थाई शक्ति संस्कृति के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

समय की पुकार स्पष्ट है कि राष्ट्रीय एकता अखण्डता और जीवन मूल्यों के लिये प्रतिबद्ध सभी देशभक्त शक्तियाँ आत्मप्रेरित होकर उठें,

आकर्षक आश्वासनों एवं उद्घोषों के मुखोटों की ओट में छिपी वास्तविकता को देखें और इन शत्रु शक्तियो के षड्यंत्रों को विफल कर दें।[19] राष्ट्र का एक दृश्य है कि राजनीतिक परिदृश्य और सांस्कृतिक मूल्य भारतीय जनमानस समझे कि राजनीतिक गतिविधियों और विभिन्न विभेदीकरण की समस्याओं का तुरन्त हल हो सके जिससे भारतीय लोगों के जीवन में समता एवं सम्मानपूर्ण संस्कृति विकसित हो सके। संस्कृति से रचनात्मक एवं गत्यात्मक हिन्दु समाज एक स्थाई शक्ति बने। और विभिन्न प्रकार अभिव्यक्त आशाओं, अपेक्षाओं का संतोषजनक व वास्तविक प्रगति हो सके।

राजनीतिक दलों के द्वारा विभिन्न हिन्दु और मुस्लिम मतदाताओं को आकर्षित करने के लिये राजनीति और संस्कृति का आपस में पार्श्व रूप देकर राष्ट्रीय मान बिन्दुओं की रक्षा और आत्मसम्मान के लिये सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय नवोन्वेष की दिशा का सही आंकलन किया जाये। वास्तविकता तथा गंभीरता को पहचाने धर्म और संस्कृति को राजनीति को प्रशषित कर संडाध पैदा कर रहे है। संस्कृति में धन एवं बाहुशक्ति का प्रयोग न किया जाये क्योंकि इन शक्तियों के प्रयोग से राजनीति और संस्कृति का क्षण होगा जिससे सही प्रजातांत्रिक और राष्ट्रीय मूल्यों की रक्षा नहीं हो सकी।

मतदाताओं को विभिन्न दलों और उनकी नीतियों पर स्वाभिवेक का प्रयोग किया जाये तथा विभिन्न वायदों की गाजरें लटकाकर उन्हें लुभाया, बहलाया नहीं जा सकता। भ्रष्टाचार के मसले पर यह बात सही नहीं उतर सकी कि राजनीतिक शिरोमणियों द्वारा भ्रष्टाचार को फैलाना वैदिक एवं

---

[19] एस0 आबिद हुसैन, ''राष्ट्रीय संस्कृति'' पृष्ठ–5 (नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया)

आर्यन सांस्कृतिक मूल्यों की हत्या करना चरित्र के प्रति आत्म मतदाता का यह रूझान उस परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों में लोगों की निष्ठा का परिचायक है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी उनकी नसों में प्रवाहित होते हैं और भविष्य में निस्सन्देह सार्वधानिक जीवन में हिन्दु संस्कृति की रक्षा की बात करते है। सांस्कृतिक मूल्य लोगों की निष्ठा के पारिचायक है।

धर्म और संस्कृति एक हिन्दु प्रेमियों के प्रश्न है। सामाजिक और राजनैतिक एकीकरण के लिये संस्कृति की समरसता के आपसी मतभेदों को दूर किया जाये संस्कृति आपसी प्रेम, भाईचारा को मजबूती प्रदान करती है। सांस्कृतिक धारा से जात–पात वर्ग–विभेद ऊँच–नीच के सभी भाव विलीन हो गये। संस्कृति समाज के उपेक्षित और ठुकराये हुये कमजोर वर्ग के भाइयों को बराबरता का स्थान दिलाती है। संस्कृति से छुआछूत जैसी सामाजिक बुराइयों को समाप्त किया जाता है।

सामाजिक असुरक्षा और अस्थिरता को संस्कृति से समाप्त किया जा सकता है। पंजाब में आतंकवाद का जन्म संस्कृति और राजनीति का परिणाम है। सरकार की अलगाववादी राजनीति और आतंकवादियों के उग्र तौर–तरीकों के सामने अकालियों का दुर्भाग्यपूर्ण झुक जाना ही जिम्मेवार है। विभिन्न चुनावों में (लोकसभा एवं विधानसभा) सांस्कृतिक एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों का हनन एवं अवमानना हो रही है। राजनीति में आतंकवादियों की पकड़ मजबूत करने वाले सिद्ध हुये हैं। तौर–तरीकों के सामने आतंकवादियों को सामाजिक और राजनैतिक दोनों मोर्चों पर अलग–थलग कर सामाजिक सद्भाव तथा देश की अखण्डता सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी है।

सांस्कृतिक मापदण्डों के कारण महासभा मार्ग एवं संघ मार्ग एक बड़ी खायी थी। सावरकर और परमानन्द हिन्दु एकता, हिन्दु समरसता, हिन्दु राष्ट्र, हिन्दुवादी भावनायें इन सब को राजनैतिक अपील ब्राह्य आक्रमणकारियों एवं विशेषकर इस्लाम के सन्दर्भ में स्थापित करना चाहते थे। वे ये मानकर चलते थे कि प्रचार–प्रसार एवं हिन्दुत्व की शिक्षा से समाज में व्याप्त विरोधावासों का स्वतः अन्त हो जायेगा। इसलिये महासभा नेताओं की प्रतिस्पर्धा प्रतिद्वन्द्वता कांग्रेस से थी उनको सैद्धान्तिक सन्दर्भ वामपन्थी एवं मुस्लिम लीग से थी। संघ की प्रतिस्पर्धा ने भारत की विभिन्न राजनीतिक पार्टियों को सोचने के लिये ब्राह्य कर दिया था मजबूर कर दिया गिरते हुये प्रजातांत्रिक मूल्य उनकी देशभक्ति की भावनाओं का प्रचार–प्रसार और आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिये तटस्थता का प्रचार–प्रसार किया। डा0 हेडगेवार ने हिन्दुत्व संस्कृति, वैदि संस्कृति तथा जीवन दर्शन के रूप में स्थापित करने एवं हिन्दुओं में व्याप्त संकीर्णताओं को राष्ट्रीयता के भाव एवं भावनाओं से विस्थापित करने का प्रयास किया।

डा0 हेडगेवार ने भारतीय संस्कृति के वास्तविक स्वरूप को पहचाना और राजनीतिक शक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि करने का प्रयास किया परन्तु अनुशासित एवं संयमित संघ हमेशा ओछी एवं निम्न कोटि के राजनीतिक विचारधारा को पसंद नहीं करते। संघ ने हमेशा लोकसंग्रह पर बल दिया, लोकसंग्रह करना राष्ट्र, संस्कृति, समाज एवं राजनीति का आपस में तारतम्य रखने का प्रयास किया, भारतीय संस्कृति हिन्दुत्व के लिये हमेशा चिन्तन करने की प्रक्रिया, परिभाषित करने और अखण्डित स्वरूप में देखने का

सुलभ और सरल तरीका है। संघ ने हमेशा हिन्दु समाज संस्कृति एवं धर्म को सभ्यता के प्रवाह का अंग माना है, भारत की संस्कृति, राष्ट्र परस्पर एक दूसरे पर निर्भर है, राष्ट्र का उद्भव सभ्यता की कोख से हुआ और सभ्यता का प्रवाह राष्ट्र के सवल से होता रहा है, अतः हिन्दु राष्ट्र चिंतन काल की ऐतिहासिक चेतना को सांस्कृतिक रूप से प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण है।[20] संघ में शक्ति अर्जित करने की एक सुधारात्मक और मौलिकता लिये हुये है, हिन्दुत्व का सूत्रपात संघ के कुछ शत्रु भी हैं। जो भारतीय संस्कृति को दिन–प्रतिदिन दूषित कर रही है। जैसे जनतंत्र व्यक्ति उपयोग, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता, भूमण्डलीकरण, बाजार, भौतिकवादिता, इतिहास, स्त्रीत्व प्रेम, रोमानी क्रियायें जो दिन–प्रतिदिन संघ को अपनी आगोश में लेकर उसके वास्तविक स्वरूप को बिगाड़ रही हैं।

संघ के कुछ मित्र भी है जिनसे राजनीतिक संस्कृति पल्लवित और पुष्पित हो रही है, जैसे मध्यकालीन अंधश्रृद्धा, मनुवादी, ब्राह्मणवादी, निरंकुशता, सामान्तीदास भाव वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, मंदिरवाद, मूर्तिवाद, स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार–प्रसार एवं घृणा और मिथ्या गर्व आदि। संघ और वामपन्थी अवधारणाओं में काफी अन्तर है राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ डा0 हेडगेवार की कोई राजनीतिक पृष्ठभूमि नहीं थी, न कोई राजनीतिक वैमनुष्यता बल्कि उनके विचारों में संस्कृति को सैद्धान्तिक तथा आध्यात्मिक अधिष्ठान दिलाने का प्रयास किया। विनायक दामोदर सारवरकर ने हमेशा सांस्कृतिक मूल्यों को रक्षा करने का प्रयास किया।

---

[20] संकलन प्रधान कार्यालय नागपुर, "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं राष्ट्रीय परिदृश्य पृष्ठ–24

सभी राजनीतिक दलों के अपने–अपने संगठन है, जैसे कांग्रेस वामपंथी, मुस्लिमलीग, जनतादल, फारवर्ड ब्लाक इत्यादि चुनाव में राजनीतिक पार्टियां लड़ती है एवं अपने–अपने चुनावी घोषणाओं का प्रचार–प्रसार करती है। जन संगठन उनकी मदद करता है। लेकिन संघ खुद चुनाव नहीं लड़ता। चुनाव लड़ने–लड़ाने का काम उसने भाजपा के जिम्मे कर रखा है। वह अपने अन्य अनुषांगिक संगठनों के जरिये वह समाज के विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय है। संघ ने भारत के विभिन्न प्रान्तों में संस्कृति को क्षरय होने से बचाया है। संघ की रूपरेखा एक सकारात्मक एवं संस्कृतिकरण का स्तम्भ है।

जय प्रकाश नारायण के अनुसार जब तक यह पार्टी (जनसंघ) संघ से अपना दामन नहीं छुड़ायेगी उसका चरित्र सम्प्रदायिक ही बना रहेगा। इसी तरह संघ को तब तक सांस्कृतिक संगठन नहीं माना जा सकता जब तक वह एक राजनैतिक दल का वास्तविक कर्ताधर्ता बना रहता है। संघ समुद्र में तैरता हुआ हिमखंड है जिसका थोड़ा सा भाग ही दिखायी देता है और बड़ा भाग अदृश्य रहता है। वामपंथियों एवं कांग्रेस ने संघ को सम्प्रदायिक रूप का लबादा पहना दिया। परन्तु जब उसका विश्लेषण करते हैं तो आन्तरिकता में संस्कृति की रक्षा की छअपटाहट विद्यमान है। कुछ लोगों ने संघ को लोकसभा, विधानसभा एवं विधानपरिषद में पहुंचाने वाली कार्यकर्ताओं की ऐजेंसी कहा। संघ हमेशा मुस्लिम विरोधी है। यह भावना गलत पूर्णतः सत्य नहीं हैं। संघ की हिन्दु की परिभाषा भौगोलिक है और उसके अनुसार हिन्दुस्तान में रहने वाला प्रत्येक सदस्य हिन्दु है। यही

परिभाषा संघ को एक आदर्शवादी संगठन में तब्दील कर देता है। इसी के साथ संघ की एक दुविधा हिन्दु संस्कृति की अमूर्त व्याख्या की है। संघ वास्तव में हिन्दुत्व एवं राष्ट्रवाद की बात करता है। संघ का अपना एक अस्तित्व है।

आज संस्कृति के प्रश्न उन कुछ गिने–चुने "पंडितों की परिधि तक सीमित नहीं रह गया। स्वाधीनता के बाद से संस्कृति के प्रश्न पर विशेषकर हमारे इस बहुजातीय और बहुभाषायी विशाल देश की संस्कृति के प्रश्न पर प्रायः ही विचार–विनमय होता रहा हैं। इस प्रक्रिया में एक ओर जहां भारतीय संस्कृति के आवाहन के लिये तर्क संगत और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास किया वहीं दूसरी ओर अज्ञान अंधविश्वास जड़ता और पाखण्ड को ही कुछ निहित स्वार्थी तत्वों ने भारतीय संरकृति का पर्याय बना देने का भरपूर प्रयास किया है।

भारतीय संस्कृति के निर्माण में अन्तिम किन्तु प्रभावशाली योगदान यूरोपियों में मुख्य रूप से अंग्रेजों ने किया है। राष्ट्रसंघ का बोध राजनैतिक–भौगोलिक, एकता, स्वतन्त्रता प्रेम इस संघर्ष के वे कुछ नतीजे है। राजनैतिक सामाजिक जीवन और औद्योगिक प्रबन्धों के क्षेत्र में कला और साहित्य पर वस्तुतः दृश्य और अदृश्य सभी वस्तुओं पर उनका प्रभाव महसूस किया। अनेक विद्वानों ने भारतीय जीवन पूर्णता और सुगमतर बनाया। उनका साहित्य हमारे साहित्यकारों की कीर्तियों में से झांकता है और उनके साहित्य धाराओं में प्रयोग के नये आयाम खोले है हम उन्हीं की लाझों पर अपनी संसद और विधायिकाओं, न्यायालय और शिक्षा संस्थायें चला रहे हैं।

अनेक प्रयत्नों से हमारे अतीत का गौरव उद्घाटित हुआ है, हालांकि ईमानदारी से नहीं उन्होंने हमारी संस्कृति के खजाने निकाले है और हमारे शिलालेखों को पढ़कर सुनाया है तथा अशोक को खोज निकाला है। सैकड़ों गलतियों के बावजूद भारतीय संस्कृति को उनका योगदान महान और स्थायी है हम उनसे लडे और हमने उन्हें निकाल बाहर किया और गुलामी की जंजीरें तोड़ डाली इस तथ्य के कारण हमें इन उपलब्धियों से आँखें नहीं मूद लेनी चाहिए जो पश्चिमी जगत से उनके सम्पर्क से हमें हासिल हुई। उनका उद्देश्य भले ही यह न रहा हो विजेताओं और शासकों का यह उद्देश्य कभी नहीं होता फिर भी उनके सम्पर्क से हम आधुनिक विचारों से अवगत हुये और हम उस दुनिया के रूबरू खड़े हुये हैं जिससे हम अजनबी थे और जो हमारे जानबूझकर तथा संकल्पबद्ध अलगाव में स्वयं को बंदी बनाने का नतीजा था।

भारतीय संस्कृति का राजनीति में अपार योगदान रहा। शान्ति और सारसौम्य कल्याण के ध्येय अतीत तथा वर्तमान प्रयत्न भीमकाय रहे है। उनसे पूर्वग्रह रहित होकर स्वीकार्य किया है कि भारतीय संस्कृति हर चीज में समायी हुई है कुछ लोगों को लगता है कि जड़े खोखली हो गयी है और सब कुछ संक्रमण है लेकिन हकीकत यह नहीं है आज हम ऐतिहासिक आन्दोलन के साक्षी है और भारतीय संस्कृति के पर्याय है।

अध्याय- द्वितीय
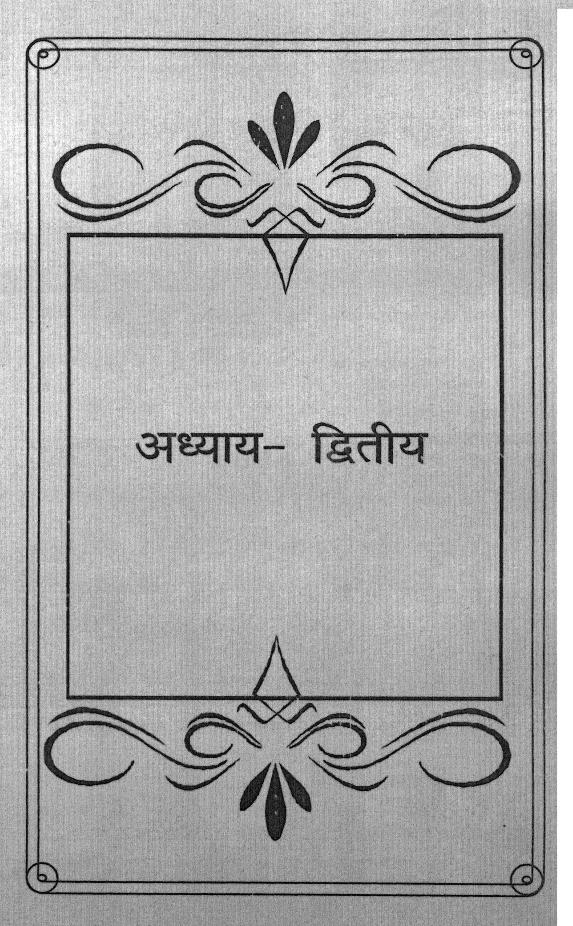
राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ : ऐतिहासिक सन्दर्भ में

यूरोप में धर्मतन्त्र को परे हटाकर आधुनिक संस्थाओं के विकास का आधार तैयार किया गया था लेकिन भारत में यूरोप जैसे रेनेसां की परिघटना के अस्तित्व में न आने के कारण राजनीतिक जागरण के लिये धार्मिक भावनाएं मुख्य रूप से उपयोगी बनी रही। 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में इन्हीं भावनाओं के सहारे जनता के विभिन्न वर्गों को लानबंद करने का काम किया गया। देशी सैनिकों में कम्पनी बहादुरां के खिलाफ कारतूसों में सुअर की चर्बी के इस्तेमाल की अफवाह ने आक्रोश धधकाने में मुख्य भूमिका अदा की क्योंकि इसे हिन्दु और मुसलमान सैनिकों ने उनकी धार्मिक पवित्रता नष्ट करने के कुचक्र के रूप में देखा। हिन्दु महेतो और यहां तक कि साधुओं और फकीरों ने इस लड़ाई को कारगर बनाने के लिये आम जनता में राष्ट्रभक्ति की भावना को जगाने का अभियान चलाया और धर्म के सामाजिक प्रभाव के कारण उनकी वजह से प्रथम स्वाधीनता संग्राम को बलवती बनाने में बड़ा योगदान हुआ। जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय को प्रोफेसर हसन अहमद का यह कथन दृष्टव्य है कि ''1857 के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में बुनियादी नारा था 'दीन–दीन–धर्म–धर्म।''

1857 में आर्य समाज, 1900 में भारत धर्म महामंडल 1906 में मुस्लिम लीग और 1916 में हिन्दु महासभा के प्रादुर्भाव के क्रम से यह स्पष्ट है कि भारत में धर्म के माध्यम से राजनीतिक चेतना के विकास की धारा प्रवाहमान हो रही थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद अपने देश के आधुनिक चरित्र के विपरीत भारतीय उपनिवेश में धर्म के सामाजिक प्रभाव को बढ़ावा देने में संलग्न था। दरभंगा नरेश द्वारा भारत धर्म महामण्डल के सम्मेलन में ब्रिटिश शासन के खिलाफ आंदोलन को हिन्दु धर्म के विरूद्ध घोषित किया गया। मुस्लिम लीग के गठन का उद्देश्य ही यह था कि मुस्लिम जनता के लिये ब्रिटिश साम्राज्य का अनुग्रह प्राप्त कर सके।

इसके विपरीत एक पूर्व ब्रिटिश नौकरशाह ए0 ओ0 ह्यूमा द्वारा 28 दिसम्बर, 1885 को संस्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस आधुनिक राजनैतिक चेतना के विकास के रूप में उभरी जिसमें आरंभिक दौर में मुसलमानों की बढ़ती भागीदारी की प्रवृत्ति को एक प्रमुख लाक्षणिक विशेषता के रूप में चिन्हित किया जा सकता है, "28 दिसम्बर 1885 को जब बम्बई में कांग्रेस के गठन की घोषणा हुयी तो उसमें मात्र 2 मुस्लिम प्रतिनिधि शामिल थे। लेकिन 1888 में कलकत्ता में हुये अधिवेशन में यह संख्या बढ़ाकर 33 हो गयी। 1890 में 6वें अधिवेशन में कुल 702 प्रतिनिधियों में 156 मुसलमान थे जो 22 प्रतिशत होते हैं। इस पर गौर करते हुये 19 जून, 1906 को भारत मंत्री मोर्चे ने वायसराय लार्ड मिन्टो को लिखा कि विश्वास रखिये कि थोड़े ही समय में मुसलमान

आपके खिलाफ कांग्रेसियों के साथ हो जायेंगे। कांग्रेस में मुसलमानों के रूझान से चिन्तित ब्रिटिश साम्राज्य को कुछ न कुछ करना ही था।[1]

दरअसल प्रथम स्वाधीनता संग्राम में मुसलमानों के द्वारा विद्रोही गतिविधियों में भाग लेने की सजा लड़ाई के थमने के बाद ब्रिटिश साम्राज्य ने उन्हें अधिक मानचित्र पर उपेक्षित रखकर दी जिसका मुसलमानों की हैसियत पर दूरगामी प्रभाव हुआ। सरकारी नौकरियों और उद्योग धंधों में अंग्रेजों की सुनियोजित नीति के कारण मुसलमान पिछड़ते चले गये जाहिर है कि इसमें मुसलमानों में अंग्रेजी शासन के खिलाफ कुंठा घर करने लगी और कांग्रेस बनने पर इस संस्था में उनकी दिलचस्पी जुड़ना नितान्त स्वाभाविक था।

इसी दौरान लार्ड कर्जन ने 1905 में बंगाल के विभाजन का फैसला लिया जो प्रशासनिक औचित्य के दृष्टिकोण से संभव है कि उचित रहा तो लेकिन इस फैसले के पीछे मुख्य मंशा मुसलमानों को यह संदेश देना था कि ब्रिटिश साम्राज्य उनका विश्वास हासिल करना चाहता है। इस विभाजन की उग्र प्रतिक्रिया हुई और कांग्रेस के तत्कालीन नेतृत्व ने इसके खिलाफ आंदोलन छेड़ दिया। इससे हिन्दु और मुसलमान एक दूसरे के खिलाफ आमने--सामने हो गये। साम्राज्यवादी हुकूमत को उसी का इन्तजार था।

"दिसम्बर 1906 में मुसलमानों के एक अखिल भारतीय संघ के लिये मुस्लिम समाज के प्रमुख नेताओं का एक सम्मेलन नबाव वकरूल नुल्क के नेतृत्व में ढाका में बुलाया गया। उसने अपने उद्देश्यों में घोषित किया कि

---

[1] राजकिशोर, भारत का राजनीतिक संकट

अखिल भारतीय कांग्रेस जिसका मुख्य उद्देश्य भारत में ब्रिटिश शासन की गलत व्याख्या तथा उसे उखाड़ फेंकना है के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिये यह संस्था कार्य करेगी। दरसल मुस्लिम लीग के गठन में अलीगढ़ मुस्लिम कालेज से जुड़े लोगों ने मुख्य भूमिका निभायी थी। इस कालेज की स्थापना करने वाले सर सैय्यद अहमद खाँ ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मुलाजिम थे और अंग्रेजों के भक्त होने के कारण उन्होंने 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम से अपने को दूर रखा। उन्होंने शैक्षणिक स्थितियों का अवलोकन करने के लिये कैम्ब्रिज जाने के लिये प्रेरित किया। सेवानिवृत्त होने के बाद उन्होंने वर्तमान अलीगढ़ विश्वविद्यालय की नींव 1877 में एंग्लो मोहम्मडन कालेज के रूप में रखी जिसका शिलान्यास तत्कालीन वायसराय ने किया। बैक के प्रभाव के कारण से सैय्यद अहमद खाँ 1885 में कांग्रेस में शामिल नहीं हुये। 1877 में जब बैक की मौत हुई तो लंदन टाइम्स ने लिखा था कि "ऐसे एक अंग्रेज का देहावसान हो गया जो साम्राज्य के निर्माण में लगा था। मृत्यु के पूर्व 1893 में बैक की प्रेरणा से मोहम्मडन ओरियेन्टल डिफेन्स एसोसियेशन बनी। स्वयं बैक इसके सचिव थे। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य मुसलमानों का कांग्रेस में प्रवेश रोकना था। इससे यह स्पष्ट होता है कि बैक के जरिये ब्रिटिश साम्राज्य भारतीय में उभर रही है राष्ट्रीय महत्वकांक्षा को बरगलाने के लिये प्रयासरत था।"[2]

अतः ऐसे लोगों की जिनकी मानसिक परिवरिश अलीगढ़ मुस्लिम कालेज के परिवेश में हुई उनके इरादे पूर्वानुमानित थे। फलस्वरूप उनके द्वारा

[2] डा0 भद्रदत्त शर्मा, भारत में संवैधानिक इतिहास

गठित मुस्लिम लीग आरंभिक काल से ही ब्रिटिश साम्राज्य के ऐजेण्ड का अनुगमन करने लगी। नबाव बकरूल मुल्क में मुस्लिम लीग की स्थापना के तीन महीने बाद अलीगढ़ के विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुये कहा था कि "खुदा न करे कि भारत में अंग्रेजी राज का अन्त हो जाये। यदि ऐसा हुआ तो हिन्दु ऐश करेंगे एवं हम लोगों के लिये प्रतिक्षण अपने जीवन एवं सम्पत्ति तथा इज्जत का संकट रहेगा।"

इसके पहले ब्रिटिश भक्त मुसलमानों का एक प्रतिनिधि मंडल 1 अक्टूबर, 1906 को सर आगा खाँ के नेतृत्व में तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड मिन्टो से शिमला में मिल चुका था। इस प्रतिनिधि मण्डल ने मुसलमानों के लिये पृथक मताधिकार एवं इनकी महत्वपूर्ण स्थिति तथा ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति भक्तों को ध्यान में रखते हुये जनसंख्या से अधिक प्रतिनिधित्व देने की मांग की थी। लार्ड मिन्टो का उनकी हमदर्दी भरा जबाव था कि मैं आपके साथ पूर्णतया सहमत हूँ। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मुसलमान कौम इस बात का पूरा विश्वास रखे कि कौम के रूप में उनके राजनैतिक अधिकारों और उसके हितों की रक्षा ऐसे किसी भी प्रशासनिक पुनगर्ठन में की जायेगी जिससे मेरा संबंध होगा।

यहाँ यह बताना मजेदार होगा कि इस प्रतिनिधि मंडल को भेजने में तत्कालीन एंग्लो मुस्लिम कालेज अलीगढ़ के प्रधानाचार्य- मि0 आर0 की0 बोल्ड का मुख्य हाथ था। उन्होंने कालेज के सचिव नबाव मोहसिन उल मुल्क को अपने पत्र में लिखा था "मुझे वायसराय के निजी सचिव ने यह सूचना दी है कि

वायसराय मुस्लिम प्रतिनिधि मंडल से भेंट करने के लिये तैयार है। उनका परामर्श है कि महामहिम से भेंट करने के लिये आपको औपचारिक पत्र भेजना चाहिये। इस संदर्भ में कुछ सुझाव हैं।" इसक बाद पत्र में मुस्लिमों की ओर से संभावित मांगो का ब्यौरा दिया गया जिस पर आधारित ज्ञापन को लार्ड मिन्टो के जीवनी लेखक बुचान ने इस्लाम के अधिकारों का चार्टर कहा था। और इससे भी पहले जब ब्रिटिश साम्राज्य के वफादार सर सैय्यद अहमद खाँ ने मद्रास में दिसम्बर, 1887 में आयोजित कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन में बम्बई के एक प्रतिष्ठित मुसलमान जस्टिस बदरूद्दीन तैयबजी को अध्यक्षता करते देख बौखलाहट में मुसलमानों को चेतावनी देते हुये कहा था कि– "और अगर इससे पहले हम यह भी मान लें कि हमारे यहाँ अमरीका की ही तरह आम मताधिकार लागू हो जाता है तो सभी को बोट देने का अधिकार मिल जाता है। और यह भी मान लें कि सभी मुसलमान मतदाता मुसलमान उम्मीदवार को आजाद सभी हिन्दु उम्मीदवार को वोट देते हैं तो फिर अब आप ही गिनती कर लीजिये कि मुसलमान उम्मीदवार को कितने वोट मिलेंगे और हिन्दु को कितने। यह पक्की बात है कि हिन्दु उम्मीदवार को चार गुना ज्यादा वोट मिलेंगे क्योंकि हिन्दुओं की आबादी तादात में चार गुना ज्यादा है। इसलिये हम महज अंक गणित से यह साबित कर सकते हैं कि हर एक मुसलमान वोट के मुकाबले चार हिन्दु वोट होंगे। फिर मुसलमान अपने हितों की रक्षा कैसे कर पायेगा। यह पांसे के

उस खेल की तरह होगा जहां एक खिलाड़ी के पास तो चार पांसे है और दूसरे के पास एक।"[3]

सुप्रसिद्ध विचारक बृजविहारी पाण्डेय कहते हैं कि "दो धार्मिक समुदायों का आपसी टकराव एक अलग चीज है और आधुनिक अर्थों में सांप्रदायिकता अलग 1730 में अहमदाबाद में होलिका दहन और गौ हत्या को केन्द्र कर जो दंगा हुआ था वह संभवता इतिहास में उल्लिखित पहला दंगा है। इस तरह के दंगे होते ही रहे और 1809 में बनारस में जो दंगा हुआ उसमें कई सौ लोग मारे गये और सेना के आने के बाद दंगा शांत हुआ। इन दंगों में धार्मिक विरोध के कारण दो समुदाय लड़ते थे मगर हर दंगा स्वतः स्फूर्त और नितान्त स्थानीय होता था, क्योंकि कोई सचेत राजनैतिक संगठन इन्हें संचालित नहीं कर रहा था। 1890 के बाद इन दंगों में संचेतना का तत्व आना शुरू हुआ। धार्मिक अनुष्ठानों को केन्द्र कर शुरू हुये दंगों से जहाँ कुछ राजनीतिक सामाजिक संगठन, मुस्लिम लीग, तब लीग आन्दोलन इत्यादि थे। कोई जरूरी नहीं कि ये संगठन दंगों का नेतृत्व कर रहे हो पर दंगों के पीछे इन संगठनों का बैचारिक योगदान या प्रभाव जरूर रहा था।"[4]

इससे स्पष्ट है कि कांग्रेस के अभियान की बजह से देश में बढ़ती राजनीतिक गतिविधियों से खतरा महसूस कर ब्रिटिश साम्राज्य ने सुनियोजित ढंग से सांप्रदायिकता का घटाटोप रचना शुरू कर दिया था क्योंकि कांग्रेस द्वारा

---

[3] रफीक जकारिया, बढ़ती दूरिया, गहराती दरार पृ0 73

[4] भारत में साम्प्रदायिकता, समकालीन जनमत 17 फरवरी 1991 के अंक में पृ0 17

संचालित राजनीतिक गतिविधियों से राष्ट्रीय उद्देश्यों के लिये हिन्दु–मुस्लिम समुदाय के प्रयास एकजुट हो गये थे। इस बात के दस्ताबेजी प्रमाण है कि अंग्रेजों ने प्रथम स्वाधीनता संग्राम के बाद से ही इस तरह के प्रयासों को विफल करने की योजना बना रखी थी। बम्बई के गर्वनर एल्फिसटन ने अपनी 14 मई, 1859 की डायरी में लिखा था– प्राचीन रोम की नीति का सूत्र यह था कि फूट फैलाकर राज्य करो और यही हमारा भी सूत्र होना चाहिए। इसी तरह सेक्रेट्री आफ स्टेट बुड ने 3 मार्च, 1862 को लार्ड एल्गिन को पत्र लिखा कि हमने भारत में अपनी शक्ति एक हिस्से से दूसरे हिस्से से भिड़ाकर बनाये रखी है और हमें यही करते रहना चाहिए। अतः आप साझा भावना के विकास को रोकने के लिये जो भी कर सकते हो, करें। फिर सेक्रेट्री आफ स्टेट जार्ज फ्रांसिस हेमिल्टन ने 26 मार्च, 1888 को लार्ड कर्जन को लिखा कि धार्मिक क्रियाकलापों के विभाजन से हमें बहुत लाभ होता है तथा भारतीय शिक्षा और पाठ्यक्रमों पर तुम्हारी जांच समिति के फलस्वरूप कुछ अच्छा नतीजा मिलने की पूरी उम्मीद है।[5]

हालांकि सर सैय्यद अहमद खाँ शुरू से सांप्रदायिक नहीं थे। "एक समय उन्होंने हिन्दु मुसलमानों को 'एक दुल्हन दो आँखें' कहा था। उनकी मान्यता यहाँ तक थी कि 'हिन्दु' शब्द का अर्थ हिन्दुस्तान का रहने वाला होता

[5] भारत का राजनीतिक संकट सम्पादक– राजकिशोर में प्रकाशित आलेख 'जिन्हें पाकिस्तान चाहिये" लेखक– कुंवर प्रसून से पृष्ठ-- 98--99

है फिर चाहे वह किसी भी धर्म का अनुयायी क्यों न हो।"[6] इस लिहाज से इस संज्ञा में हिन्दुस्तानी मुसलमान भी शामिल हो जाते हैं। लेकिन अंग्रेजों ने उनका ब्रेनवाश किया। दसरअसल सर सैय्यद अहमद खाँ की समस्या दूसरी थी जिसकी वजह से कांग्रेस का अभियान उनके लिये चिंता का कारण बना और अंग्रेज उनका इस्तेमाल कर सके 1887 के दिसम्बर में लखनऊ में राष्ट्रीय आंदोलन की निंदा और भर्त्सना करते हुये सर सैय्यद अहमद खाँ ने इन शब्दों में अपनी भावनायें व्यक्त की थी कि "अगर सरकार अफगानिस्तान से लड़े या वर्मा को जीते तो उस नीति की आलोचना करना हमारा काम नहीं है। सरकार ने कानून बनाने के लिये कौंसिल बना रखी है। इस कौंसिल के लिये वह सभी प्रदेशों से अधिकारियों को चुनौती है जो राजकाज और जनता की हालत से बहुत अच्छी तरह परिचित है और कुछ रहीसों को भी चुनौती है जो समाज में अपने ऊँचे रूतवे की वजह से असेम्बली में बैठने के काबिल है। कुछ लोग पूछते हैं कि उनका चुनाव इसलिये क्यों किया जाये कि वे रूतवे वाले हैं ? योग्यता का ध्यान क्यों न रखा जाये ?. . . . मैं आपसे पूंछता हूँ कि क्या आपके मालदार घराने के लोग यह पसंद करेंगे कि छोटी जाति और छोटे खानदान के लोग चाहे वे बी0 ए0 या एम0 ए0 ही क्यों न हो और जरूरी योग्यता रखते हों उन पर हुकूमत करें और इनकी जानोमाल से सम्बद्ध कानून बनाने की ताकत रखे।

[6] विश्वश्रुति : भारतीय जनसंघ क्यों पुस्तक के अध्याय सांप्रदायिकता और उसके इतिहास से

वायसराय ऐसा कभी नहीं कर सकता कि सिवाय ऊँचे खानदान के आदमी के किसी और को अपना साथी कबूल करे या उसके साथ भाई चारे का वर्ताव रखे या उसे ऐसी दावतों में निमंत्रण दे जिनमें ब्रिटेन के अमीर उमरा के साथ दस्तरखान में बैठना पड़ता हो। क्या हम कह सकते है।[7] तो यह थी जनाव सर सैय्यद खाँ की फिक्र वे समझते थे कि साम्राज्य विरोधी विचारो के बलवती होने से देशी कुलीनों की सत्ता के गढ़ भी हिल जायेंगे।

उसी समय कांग्रेस में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के प्रचड नेतृत्व का उदय हुआ जिनमें उग्र राष्ट्रभक्ति थी लेकिन सामाजिक विचारों में वे पूरी तरह रुढ़िवादी थे। सुप्रसिद्ध पत्रकार स्व0 राजेन्द्र माथुर ने लिखा है कि "तिलक भारत के पहले नेता थे जिन्होंने बगावत की प्रतिष्टा दी। उन्होंने 1897 में केसरी मे क्रान्तिकारी लेख लिखा जिसमें उन्होंने राजद्रोह का दोषी ठहराकर मुकदमा चलाया गया और वे भारत के पहले ऐसे बड़े नेता बने जो अपने लिखे शब्दों की खातिर जेल गये। राजेन्द्र माथुर लिखते हैं कि "गाँधी द्वारा चलाये गये स्वाधीनता संग्राम में कोई भी बड़ा नेता लगातार छैः साल तक जेल में नहीं रहा, लेकिन तिलक रहे। तिलक के पहले कांग्रेस के अगुयायी कर रहे गोपालकृष्ण गोखले व फिरोजशाह मेहता कहते थे कि अंग्रेजों का राज्य ईश्वर का वरदान है। पर तिलक ने ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ मुठभेड़ के तेवर अपनाये जिससे उनकी लोकप्रियता इतनी बढ़ गयी कि कांग्रेस पर वे ही वे छा गये। लेकिन तिलक पर जिस लेख की वजह से मुकदमा चला था उसका

---

[7] राजेन्द्र माथुर संचयन, पुस्तक से

मजमून भी जान ले। यह लेख शिवाजी द्वारा धोखे से अफजल खाँ की हत्या को सही ठहराता था। यह राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये प्रतीक चुनने की उनकी दिशा का संकेत करता है जिसका इस्तेमाल करने के लिये अंग्रेज घात लगाये बैठे थे।

तथापि 1904 में में तिलक पर जो मुकदमा चला उसकी पैरवी मुहम्मद अली जिन्ना ने की थी, यह भी एक तथ्य है। जिन्ना तिलक से बेहद प्रभावित रहे। उन्हें हिन्दुओं के कई पौराणिक चरित्र भाते थे लेकिन मुसलमान होने के बावजूद इस्लाम से उनका सम्बन्ध इतना झीना था कि वे कलमा तक नहीं पढ़ सकते है। जिन्ना को एक चीज से नफरत थी कि वे धर्म को राजनीति में नहीं लाना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने कभी गाँधी जी को महात्मा गाँधी कहकर सम्बोधित नहीं किया, सदैव मिस्टर गाँधी कहा। गाँधी जी ने जब असहयोग आन्दोलन के साथ खिलाफत आन्दोलन को जोड़ा तो जिन्ना ने नाखुशी प्रकट की थी। 1928 की मुस्लिम कान्फ्रेस में जिन्ना अकेले मुस्लिम नेता थे जिन्होंने मुसलमानों के लिये पृथक निर्वाचक मंडल की मांग का विरोध किया था। पर वही जिन्ना बाद में घोषित करने लगे कि हिन्दु और मुसलमान दो अलग–अलग राष्ट्र है जो एक नहीं रह सकते। जब उन्होंने देखा कि धर्म के बिना राजनीति में सफल हुआ ही नहीं जा सकता तो उन्होंने अपनी महात्वाकांक्षाओं के लिये गाँधी से बढ़कर धर्म की राजनीति कर दिखाने की ठान ली और आखिर में भारत के बटवारे के जिम्मेदार बने जिसके लिये हजारों बेकसूरों को जान देनी

पड़ी। पर जिन्ना को धर्म के सहारे राजनीति वही सही हुई। तुर्की के खलीफा को पुरी दुनिया के मुसलमानों के मजहवी सरपरस्त के रूप में बहाल करने के लिये आन्दोलन को राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जोड़ने के नतीजे सबने देखे जो बहुत विनाशकारी थे। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन का समूचा परिदृश्य बदल गया।

प्रथम विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों की विजय के बाद अंग्रेजों ने आटोमन साम्राज्य के दो टुकड़े कर दिये। इससे भारत में तमाम तरह की अफवाहें फैलने लगी। यह जाहिर किया जाने लगा कि ब्रिटिश सरकार मुसलमानों के सर्वोच्च पवित्र धार्मिक केन्द्रों मक्का व मदीना पर कब्जा कर लेगी और उनके धर्म के आध्यात्मिक केन्द्र को तहस–नहस कर डालेगी। इससे भारतीय मुसलमानों में भावनात्मक तूफान आ गया जबकि दुनिया के अधिकतर मुसलमान इस परिघटना को कोई महत्व नहीं दे रहे थे। अरबों ने तो ब्रिटिशों को समर्थन देना बेहतर समझा था। लेकिन हिन्दुस्तान के मुसलमानों ने आटोमन खिलाफत के बचाव के लिये जो विराट जन आन्दोलन खड़ा किया उसकी तुलना दुनिया के विशालतम आन्दोलनों से की जा सकती है। महात्मा गाँधी ने मुसलमानों के गुस्से का इस्तेमाल उन्हें साथ जोड़कर कांग्रेस को मजबूत बनाने के लिये करने की नीति बना ली और इस तरह उन्होंने राजनीति को धार्मिक मुद्दों की ओर मोड़ दिया। अली बन्धुओं (मुहम्मद अली और शौकत अली) ने जो खिलाफत आन्दोलन के अगुआ थे उन्होंने महात्मा गाँधी को इस कदम के लिये मुसलमानों के बीच जमकर नवाजा। जब खिलाफत आन्दोलन को कुचलने के लिये

मुसलमानों का दमन किया गया तो सैकड़ों मुसलमानों ने हिन्दुस्तान छोड़ दिया क्योंकि उनकी निगाह में ब्रिटिशों के अधीन का हिन्दुस्तान दार–उल–हरब हो चुका था। बड़ी संख्या में मुसलमान अफगानिस्तान की ओर गये लेकिन वहां के अमीरों ने उन्हें प्रवेश देने से इन्कार कर दिया। निराश होकर वे हिन्दुस्तान की ओर लौटे जिसमें कई तो रास्ते में ही मौत का निवाला बन गये और कइयों ने अपने को ब्रिटिश जेल में कैदी पाया। मुसलमानों की मायूसी उस समय चरम पर पहुँच गयी जब तुर्कस्तान के नये शासक कमाल पाशा अतातुर्क ने ही 1924 में अपने देश से खिलाफत को समाप्त करने की घोषणा कर दी।

इस अवसाद का असर यह था कि धार्मिक मुस्लिम नेता गाँधी जी तक के खिलाफ उग्र सांप्रदायिक प्रतिक्रिया करने लगे। मौलाना मुहम्मद अली खिलाफत के समय गाँधी जी जिनकी आँखों के तारे थे उन्होंने कहा कि गाँधी चाहे जितना पवित्र हो परन्तु धार्मिक दृष्टिकोण से मुझे वह एक पतित मुसलमान से भी घटिया दिखायी देता है। खिलाफत आन्दोलन के वेग ने मुसलमानों को मजहबी दृष्टिकोण की लहर से इतना अदलावित कर दिया था कि उन्हें हिन्दुओं के साथ मिलकर ब्रिटिश साम्राज्य की गुलामी से मुक्त कर दिया था कि उन्हें हिन्दुओं के साथ मिलकर दिलचस्पी नहीं रह गयी थी।

उधर 5 फरवरी, 1922 को संयुक्त प्रांत (वर्तमान में उ० प्र०) में चौरा–चौरी में आन्दोलनकारियों द्वारा की गयी हिंसक घटना से क्षुब्ध होकर गाँधी जी ने 12 फरवरी 1922 को असहयोग आन्दोलन की समाप्ति की घोषणा

कर दी। ऐसे समय जबकि आन्दोलन शिखर पर था गाँधी जी के इसमें आकस्मिक ब्रेक ने बहुत ही बिडम्बनापूर्ण स्थितियाँ बना दी। इससे भटकाव को जन्म मिला जो लोगों की ऊर्जा के संप्रदायीकरण का कारण सिद्ध हुआ। उसी दौरान केरल के मालवार में हुये भीषण सांप्रदायिक दंगा की जाँच के लिये हिन्दु महासभा की ओर से डा0 बी0 एस0 मुंजे के नेतृत्व में एक जाँच समिति बनायी गयी जिसकी रिपोर्ट हिन्दुओं के लिये बेहद भड़काऊ थी। पं0 मदन मोहन मालवीय जैसे नेता ने 1922 में गया में हिन्दु महासभा के अधिवेशन में हिन्दुओं से आत्मरक्षा के लिये संगठित होने की अपील कर डाली। 1927 तक देश भर में दंगों के कारण हिन्दुओं और मुसलमानों में भीषण मारकाट मची रही।

इसके समानान्तर एक और घटना चक्र चल रहा था। महाराष्ट्र के अछूत नेता डा0 भीमराव अम्बेडकर ब्रिटेन से उच्च शिक्षा पूरी कर स्वदेश लौटे तो उन्हें व्यक्तिगत रूप से इस कारण अपमानजनक स्थितियाँ झेलनी पड़ी कि वे एक अछूत समाज में पैदा हुये है। उनकी विद्वता और पद भी इस मामले में रूढ़िवादियों को उनके प्रति दुर्व्यवहार से रोक नहीं पाये। इस वजह से अम्बेडकर ने पूरे महाराष्ट्र में अपनी महार जाति के लोगों को संगठित कर बराबरी के अधिकार के लिये संघर्ष छेड़ दिया। सार्वजनिक तालाबों में अछूतों को भी पानी के उपयोग और मंदिर में प्रवेश का अधिकार दिलाने जैसे मुद्दों पर उनके आन्दोलन ने परम्परावादियों की नींद हराम कर दी। उधर स्वाधीनता संग्राम के अग्रगण्य महापुरूषों में गिने जाने वाले तिलक ने एक अवसर पर कहा

था कि अछूतों को कानून के अधिकार की महात्वाकांक्षा पालने की बजाय अपने को कानूनों व मान्यताओं के आज्ञाकारी ढंग से पालन तक सीमित रखना चाहिये। कांग्रेस में सभी तरह की विचारधाराओं के लोगों का तालमेल था लेकिन तिलक से प्रेरणा लेने वाले कांग्रेसी पार्टी की राजनैतिक मुख्यधारा में अछूतों के प्रति दिखायी जाने वाली हमदर्दी को लेकर कड़ी आपत्ति रखते थे। उन्हें इसमें अपनी सभ्यता और संस्कृति के मौलिक तत्व नष्ट हो जाने का खतरा नजर आता था।

"संघ के संस्थापक डा0 केशव राम बलिराम हेडगेवार के जीवनी लेखक राकेश सिन्हा ने लिखा है कि (हेडगेवार) शैशवकाल में भौंसले राजाओं के दुर्ग के खंडहर एवं उस पर फहराते हुये युनियन जैक ने उनके मन में प्रश्न खड़ा कर किया था कि हम लोग गुलाम क्यों बने" ?[8]

महाराष्ट्र के हर तिलकपंथी को पेशवा साम्राज्य का स्वप्न भावविव्हल करता था और डा0 अम्बेडकर के द्वारा अछूतों में पैदा की जा रही जागृति के कारण उनकी चेतना का पेशवा (ब्राह्मण) साम्राज्य की ओर आकर्षण सुरक्षित प्रतीकों में शरण लेने की उनकी भाव दशा का संकेत कहा जा सकता है। भले ही डा0 हेडगेवार ने व्यक्त रूप से अछूतों के आन्दोलन को लेकर कोई उल्लेखनीय टिप्पणी न की हो। सांप्रदायिक मोर्चे पर कांग्रेस की समन्वयकारी नीति और अछूतों के विद्रोही तेवरों के बीच हा–हाकार मचाती तिलक पंथियों

---

[8] राकेश सिन्हा, डा0 केशव बलिराम हेडगेवार पृ0 72

यह बैचेनी एक नया रास्ता तैयार कराना चाहती थी। ''डा0 हेडगेवार चरित्र'' के लेखक ना0 ह0 पालकर ने जिक्र किया है कि 1920 में नागपुर में हुये कांग्रेस अधिवेशन में डा0 हेडगेवार इसी दौरान लोकमान्य तिलक के आकस्मिक देहावसान से शोक संतप्त होन के बावजूद बेहद सक्रिय थे।[9] इसी अधिवेशन में कांग्रेस ने जहाँ मुसलमानों को निकट लाने के लिये खिलाफत का प्रश्न हाथ में ले लिया था वही एक स्थानीय नेता श्री बढे ने प्रार्थना की कि गौर रक्षा का प्रश्न राष्ट्रीय है अतः कांग्रेस को इस सम्बन्ध में भी कुछ करना चाहिये तो कहा गया कि इससे मुसलमानों की भावनायें दुःखी होगी अतः यह प्रश्न कांग्रेस हाथ में नहीं ले सकती। इस पर वाद–विवाद शुरू हो गया। महात्मा गाँधी ने श्री बढे से कहा कि मंडल छोड़कर चले जाये। इस घटना ने डा0 हेडगेवार को बहुत आहत कर दिया। गौ रक्षा को तिलक पंथियों ने हिन्दु अस्मिता के साथ जोड़ दिया और किसी अवसर पर वे इस प्रश्न को उठाने की चेष्टा करते थे तथा बहुत भावुक हो जाया करते थे। इससे निश्चित दबाव बढ़ता जा रहा था कि कांग्रेस हिन्दु अस्मिता के साथ न्याय नहीं कर पा रही है। इसके लिये अलग से संगठन बनाने की आवश्यकता है। इन्हीं दिनों वीर सावरकर को रिहाई मिल गयी और डा0 हेडगेवार ने उनसे मुलाकात की। सावरकर को ब्रिटिश हुकूमत ने रिहा करने का फैसला क्यों किया यह विवादित विषय है। लेकिन जिस तरह सावरकर ने अपने सार्वजनिक भाषणों (रिहाई के बाद) राजभक्ति की कसमें

---

[9] ना. हा. पालकर, डा0 हेडगेवार चरित्र पृ0 175

खाते हुये हिन्दुओं को कांग्रेस से मोहभंग की स्थिति में धकेलकर हिन्दु महासभा के मंच की ओर मोड़ने की कोशिश की वह एक सर्वविदित तथ्य है।

लेकिन इसके विपरीत डा0 हेडगेवार हिन्दुराष्ट्र की बात करते हुये भी भी कांग्रेस से अलग राजनीतिक मंच नहीं बनाना चाहते थे। उन्हें यह अनुभव था कि कांग्रेस राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन का एक सर्वस्वीकृत मंच है और उसके समानांतर राजनैतिक पार्टी बनाने का मतलब है कि मुख्य धारा से अलग–थलग हो जाना। इसकी वजह भविष्य में उनके द्वारा गठित राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में इस बात पर जोर दिया गया कि यह गैर राजनैतिक संगठन हिन्दुओं में एक धारा माइंड सेट के लोग तैयार करेगा जो जिस क्षेत्र में भी कार्य करेंगे उसमें अपनी कार्यनीति हिन्दु राष्ट्र की अवधारणा के अनुरूप निर्धारित करेंगे।

सन् 1925 में विजयदशमी के दिन डा0 हेडगेवार ने मात्र 25 लोगों के साथ राष्ट्रीय स्वयं संघ की नींव नागपुर में रखी। इस समय इसकी विचारधारा बीज के रूप में थी। यहाँ तक कि संगठन का नामकरण भी नहीं किया गया था। डा0 हेडगेवार के जीवनी लेखक राकेश सिंन्हा ने स्वयं लिखा है कि उस समय स्थानीय प्रशासन तथा कुलीनों एवं बुद्धजीवियों को संघ की प्रतिदिन की शाखा में व्यायामशाला प्रतीत हुयी।

इसी वर्ष 12, 13 जुलाई को ईद व अषाढ़ी एकादशी एक साथ पड़ गयी जिसमें हिन्दु मुसलमान आपस में लड़ गये। डा0 मुंजे और डा0 हेडगेवार ने इस तनाव के समय मुसलमानों को सबक सिखाने के लिये बहुत ही सक्रिय भूमिका

निभाई। इस दौरान उन्होंने यह भी मत प्रतिचारित किया कि हिन्दु युवकों को लाठी चलाने का नियमित प्रशिक्षण लेना चाहिये। जिससे वे फसाद होने पर ईंट का जबाव पत्थर से देने में सक्षम हो सके। नागपुर नेशनल यूनियन नामक एक संगठन डा0 हेडगेवार पहले से ही चला रहे थे और इसे सैन्य स्वरूप में ढालने के लिये वे नये संगठन के निर्माण के लिये उन्मुख हुये।

"नये संगठन का नामकरण 17 अप्रैल, 1926 को हुआ। इस सम्बन्ध में 17 अप्रैल को डा0 हेडगेवार ने जब अपने घर पर प्रमुख लोगों की बैठक बुलाई जिसमें 26 व्यक्ति उपस्थित थे। उसमें संघ के लिये अनेक नाम सुझाये गये। उन पर वाद–विवाद होकर तीन नाम मत के निमित्त सभा के समक्ष रखे गये। 1. राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ 2. जरिपटका मण्डल 3. भारतोद्धारक मण्डल। तथापि डा0 हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ नाम का चयन इसमें से किया।"[10]

हिन्दु राष्ट्र बनाने के लिये गठित किये जाने वाले संघ का नाम हिन्दु स्वयं सेवक संघ न रखकर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ क्यों रखा गया यह भी एक जिज्ञासा का विषय है। डा0 हेडगेवार चरित्र के लेखक ना0 ह0 पालकर का कहना है कि हिन्दुस्तान इसमें रहने वाले सब लोगों का राष्ट्र है यह गलतफहमी उस समय हिन्दु नेताओं के मन में इतनी गहरी बैठी थी कि उन्हें हिन्दु संगठन का काम राष्ट्रीय लगना सम्भव नहीं था। अतः डाक्टर जी ने यह नाम गलत एवं

---

[10] दन्तोपन्त ठेगडी पांञ्चजन्य, पृ0 8 2–4–2003

गलत स्थान पर प्रयुक्त किया है। यह पराये शत्रु तथा स्वकीय मित्र दोनों ही बोलने लगे। राष्ट्रीयत्व की विकृत कल्पना लेकर चलने वाले लोगों ने संघ के राष्ट्रीय विशेषण का विरोध किया होगा किन्तु डाक्टरजी का यह दृढ़ विचार था कि हिन्दुस्तान में हिन्दु समाज की हर बात हर संस्था तथा आन्दोलन राष्ट्रीय है। तथा वहीं सही अर्थों में पूरी–पूरी राष्ट्रीय हो सकती है।

तटस्थ विद्वानों का मत यह है कि मुगल बादशाहों ने देश के अन्दर रहने वाली सभी वर्गों की प्रज्ञा को हिन्दु नाम की समूह वाचक संज्ञा में सम्बोधित करना शुरू कर दिया था जिससे हिन्दु राष्ट्र का एक खास अर्थ हो गया था। डा० हेडगेवार अपने संगठन से मुसलमानों का पृथक्करण प्रदर्शित करने में गफलत नहीं रखना चाहते थे जिसकी वजह से उन्होंने इसका नाम हिन्दु स्वयं सेवक संघ की बजाय भारतीय स्वयं सेवक संघ रखा। उनकी निगाह में भारतीय वही हो सकता था जो सनातन धर्म और सनातन संस्कृति में आस्था रखता हो।

'प्रारम्भ में संघ ने उसी भेष को स्वीकार किया जो नागपुर के कांग्रेस अधिवेसन के समय डा० पराजये तथा डा० हेडगेवार के नेतृत्व में बनाये गये भारत सेवक समाज के स्वयं सेवकों का था। उसमें खाकी नेकर खाकी कमीज तथा दो बटनों की खाकी टोपी का अन्तर्भाव होता था। खाकी नेकर की लम्बाई उस समय घुटने तक होती थी। बाद में संघ के लिये अलग गणवेश निश्चित किया गया। इसी तरह पेशवाओं के भगवा झण्डे को संघ ने अपने झण्डे के रूप में अपनाया। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जब जम उठा तो वैचारिक स्तर पर इसमें

सक्रियता के लिये संघ शिक्षा वर्ग की योजना लागू की गयी। जिसे अधिकारी प्रशिक्षण शिविर भी कहा जाता है। ओटीसी के नाम से प्रचलित इस प्रशिक्षण की शुरूआत 1929 से की गयी।"[11]

चार साल बाद डा0 हेडगेवार ने उन प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को जो संघ के काय्र के लिये स्वेच्छा से पूर्ण समय देने को तैयार रहते थे प्रान्त एवं प्रान्त से बाहर कार्य के विस्तार के लिये भेजा। ऐसी प्रशिक्षित स्वयं सेवकों को प्रचारक की संज्ञा दी गयी। लेकिन डा0 हेडगेवार के समय आर0 एस0 एस0 का बहुत अधिक विस्तार नहीं हो सका। अपने समय में वे नागपुर के बाहर इस संगठन की 30 शाखायें स्थापित कर सके। वास्तव में संगठन का असली विस्तार उनकी मृत्यु के बाद 1940 में गुरू गोलवरकर जी सर संघ चालक बनने पर हुआ। गोलवरकर ने आर0 एस0 एस0 के अत्यन्त कुशल संगठनकर्ता का परिचय दिया और अपने कार्यकाल में आरम्भिक 5 वर्षों में ही समस्त उत्तर भारत तथा देश के अनेक भागों में संघ की शाखायें स्थापित कर दी।

डा0 हेडगेवार की दृष्टि में संघ का गठन करते समय सामाजिक विषमता के खिलाफ चल रहे आन्दोलन किस तरह से थे यह उनकी डायरी में उनके द्वारा दर्ज इन विचारों से उजागर हो जाता है– "महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन के समय राष्ट्र को चढ़ा हुआ जोश ठण्डा हो गया था तथा उस आन्दोलन के कारण राष्ट्र में उत्पन्न होने वाले दोष सिर ऊपर निकलकर घूमने लगे थे। राष्ट्रीय आन्दोलन का जोर कम होकर आपस में द्वेष और मत्सर स्पष्ट

---

[11] ना. हा. पालकर डा0 हेडगेवार, चरित्र, पृ0 173

दृष्टिगोचर होते थे। व्यक्ति, व्यक्ति के बीच झगड़े पराकाष्ठा को पहुंचते दिखायी देते थे, जाति–जाति के बीच झगड़े शुरू थे, ब्राह्मण–ब्राह्मणेत्तर ताण्डव नृत्य कर रहा था। किसी भी संस्था में एकरूपता नहीं दिखाई देती थी।"[12] असहयोग आन्दोलन में दूध पीकर पुष्ट हुये यवनरूपी सर्प अपनी विषभरी फुंफकारी सर्वत्र छोड़कर राष्ट्र में कलह उत्पन्न कर रहे थे।

यह उल्लेखनीय है मुगलों की सत्ता जब स्थापित हुयी तो बाहरी होने की वजह से न तो उन्हें देश के हिन्दुओं का समर्थन था और न मुस्लिम शासक वर्ग का। बाबर के मरते ही उसके पुत्र हुमायूँ को अपना साम्राज्य बचाने के लिये नाको चने चबाने पड़े। शेरशाह सूरी ने उसे परास्त कर बुरी तरह खदेड़ा लेकिन किस्मत से एक बार फिर बाजी पलटी और उसने पुनः हुकूमत छीन ली। इस जद्दोज्हद की बजह से हुमायूँ का बेटा अकबर जब बादशाह की गद्दी पर बैठा तो मुगल सल्तनत के स्थायित्व की मजबूत करने का दारोमदार उसने कुबूल किया। उसने मुगल शासकों को परायेपन से उबारकर हिन्दुस्तान के प्रभावशाली समाज में पैठ बनाने के लिये हिन्दु रानी जोधाबाई से शादी की। बाद में इस रानी से पैदा बेटा सलीम उर्फ जहांगीर को उसकी विरासत मिली और मुगलों ने हिन्दु रानी की कोख से जन्मे बेटे को बादशाहत मिलने की खायत सी बन गयी। अकबर ने भारत में तेजी से बढ़ते इस्लामीकरण के कारण बहुलता के बीच समन्वय बनाये रखने की हुकूमत की क्षमता को निखारा। उस समय प्रबंध शब्द का चलन शुरू नहीं हुआ था लेकिन आज मुहावरे को भाषा में

---

[12] ना. हा. पालकर, हेडगेवार, चरित्र पृ0 219

कह सकते हैं कि अकबर का सत्ता प्रबन्ध बाद में भारत में शासन नीति की महत्वपूर्ण विशेषता बन गया क्योंकि इसका मतलब अलग–अलग धर्माबलम्बियों वाले समाज को जोड़े रखने की अनिवार्य शर्त रहा।

पर प्रतिगामी शोच के कारण एक वर्ग को समय की यह वास्तविकता स्वीकार नहीं थी। वे इतिहास की प्रगति के पहियों को पीछे की ओर घुमाकर भारत में इस्लामी आक्रमणकारियों के आने के समय के पहले ले जाने को कटिबद्ध है। हांलाकि विकास की लम्बी यात्रा में वर्तमान को अतीत से जोड़ने की एक सीमा रेखा अनिवार्य है। यदि भारत के वर्तमान को अतीत से जोड़ने में सीमा का ध्यान न रखा जाये तो हिन्दु संस्कृति जिसका वास्तविक नाम सनातन संस्कृति है। बात वहीं तक कैसे ठहर सकती है क्योंकि उसके पहले इस देश की संस्कृति बौद्ध थी। इस तरह सांस्कृतिक मूल की खोज का प्रयास काफी जटिल और महंगा सिद्ध हो सकता है। पर आर0 एस0 एस0 के संस्थापकों के विचारों के अवलोकन से यही इंगित होता है कि उन्हें मुगलों से प्रेरित भारत की सामाजिक संस्कृति का वर्तमान स्वीकार नहीं हो सका।

जब संघ के गठन के समय बीजरूप में मौजूद विचारधारा वृक्ष का रूप लेने लगी तो मुसलमानों व दलित आन्दोलन के अलावा समाजवाद भी संघ के निशाने पर आ गया। गुरू गोलवरकर ने इस संदर्भ में अपनी पुस्तक में लिखा है कि समाजवाद वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त की प्रक्रिया की उपज है। यह रूस में भी विफल हो चुका है। समाजवाद के नाम पर क्या हुआ है ? जो कुछ चीन में

हुआ वही यहाँ भी हो रहा है। जमींदारी खत्म कर दी गयी है। अदालतों को यह अधिकार दिया गया है कि बिना मुआवजा दिये सम्पत्तियाँ ले ली जायें। उद्योगों और बैंकों के राष्ट्रीयकरण की बात हो रही है। आर0 एस0 एस0 के मुखपत्र आर्गेनाइजर में छपा था कि कोई व्यक्ति या तो हिन्दु हो सकता या कम्युनिष्ट। और यह भी कि भारत में असली लड़ाई हिन्दुत्व और साम्यवाद में होगी। हिन्दु राष्ट्र क्यों में गोलवरकर लिखते हैं कि दुर्भाग्यवश हमारे संविधान में इस भूमि के पुत्री और आक्रमणकारियों को समानता का दर्जा देकर सभी लोगों को बराबरी के अधिकार दिये गये हैं। यह उसी प्रकार है जैसे कोई व्यक्ति अपने बच्चों और चोर के बच्चों को समानता के अधिकार दे और सारी सम्पत्ति उसमें बाँट दे। यही नहीं गोलवरकर ने इस बात पर भी खेद प्रकट किया कि "अब इसे (वर्ण व्यवस्था को) व्यक्तिवाद की संज्ञा दी जा रही और इसका मजाक उड़ाया जा रहा है।

गाँधीवाद का प्रभाव (गाँधी और संघ) :

आजादी के बाद महात्मा गांधी के प्रति राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के दृष्टिकोण को लेकर राजनीतिक एवं शैक्षणिक दोनों स्तरों पर लगातार चर्चा होती रही है। महात्मा गाँधी एवं उनके दर्शन का भारतीय सामाजिक, राजनैतिक जीवन में 1920 के बाद से केन्द्रीय स्थान प्राप्त हुआ है। स्वतन्त्रता आन्दोलन पर उनकी जीवन दृष्टि की अमिट छाप थी। औपनिवेशिक भारत में सिद्धान्तों के आधार पर कांग्रेस एवं कांग्रेस के बाहर अनेक छोटे–बड़े आन्दोलनों का जन्म

हुआ। इन आन्दोलनों की अपनी दृष्टि थी और इसके संस्थापकों के जीवन दर्शन, सैद्धान्तिक पहचान और कार्यक्रमों ने तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक वातावरण को कमोवेश प्रभावित किया था।

डा0 हेडगेवार एवं गांधीजी के दृष्टिकोण में एक बड़ी भिन्नता थी। गांधी जी का दृढ़विश्वास था कि स्वतन्त्रता की लड़ाई में अहिंसा का मार्ग ही सर्वोत्तम है और वह अन्य मार्गों के प्रतिपादकों को पसंद नहीं करते थे। क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रति उनकी थोड़ी सहानुभूति नहीं थी। डा0 हेडगेवार स्वतन्त्रता के प्रश्न पर गाँधीजी के मार्ग को उत्तम मानते थे। असहयोग आन्दोलन एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान उन्होंने एवं संघ के अर्द्धसैनिक प्रशिक्षण प्राप्त स्वयंसेवकों ने गाँधीजी द्वारा दी गयी अहिंसा की शपथ वं आन्दोलन की मर्यादा को दोनों बार अंत तक बनाए रखा। परन्तु डा0 हेडगेवार इस बात से तनिक भी सहमत नहीं थे कि अन्य मार्गों का अनुसरण करने वालों की देशभक्ति अथवा उनके द्वारा अपनाए गये साधनों की पवित्रता पर प्रश्नचिन्ह लगाया जाये। उन्होंने कहा था कि "स्वतन्त्रता के लिए अंग्रेजों की बूट पालिश करने से लेकर उनके बूट को पैर से बाहर निकालकर उससे उनके ही सिर को लहूलुहान करते हुये मरम्मत करने तक के सब मार्ग मेरे लिये स्वतन्त्रता प्राप्ति के साधन हो सकते हैं। किसी भी मार्ग के लिये मेरे मन में तिरस्कार का भाव नहीं है। मैं तो इतना जानता हूँ कि अंग्रेजों को निकालकर देश को स्वतन्त्र करना है।"[13]

[13] राकेश सिन्हा, डा0 केशवराव बलिराम हेडगेवार, पृ0 170

डा0 हेडगेवार गाँधीवाद को सिर्फ एक विचारधारा न मानकर सार्वजनिक जीवन जीने वालों के लिये एक पवित्र दृष्टिकोण मानते थे। यह एक विडंवना ही है किसी व्यक्ति को 'वाद' के दायरे में समेटकर उसके समर्थक कर्मकाडी हो जाते हैं।

संघ की शाखाओं एवं प्रशिक्षण शिविरों को रहस्यमय रूप में प्रस्तुत करने का कार्य सिर्फ ब्रिटिश साम्राज्यवाद ही नहीं कर रहा था, बल्कि देश के भीतर भी संघ से सैद्धान्तिक रूप से असहमत अनेक राजनीतिक व्यक्तियों एवं संगठनों द्वारा उसकी आलोचना होती थी। इनमें से किसी को भी शाखा की संरचना एवं इसके कैंपों के कार्यक्रमों की जानकारी नहीं थी। महात्मा गांधी इस श्रेणी के राजनीतिज्ञों से एकदम भिन्न थे। वह संघ के बारे में प्रत्यक्ष जानने और उसके संस्थापक से मिलने के लिये उत्सुक थे।

25 दिसम्बर 1934 को महात्मा गांधी ने वर्धा (नागपुर) में लगे संघ के प्रशिक्षण शिविर का अवलोकन किया। तब गाँधी जी ने शिविर में सभी जाति वर्ग के लोगों को साथ–साथ खाते–पीते और सभी कार्यक्रम करते हुये देखा तो हेडगेवार से कहा था कि मैं संघ के स्वयं सेवकों का अनुशासन एवं उनके बीच छुआछूत की भावना बिल्कुल न होने की और उनकी सादगी से प्रभावित हूँ।

"15 अगस्त 1947 को भारत आजाद हुआ, अखण्ड भारत दो भागों में बंट गया भारत और पाकिस्तान। 30 जनवरी 1948 को महात्मा गांधी की प्रार्थना सभा में नाथूराम गोड़से नाम के व्यक्ति ने गांधी जी की गोली मारकर हत्या कर

दी। गाँधी जी की हत्या का आरोप संघ पर मढ़ा गया। और संघ पर तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहर नेहरू सरकार ने 4 फरवरी 1948 को संघ पर प्रतिबंध लगा दिया।"[14] संघ पर प्रतिबन्ध के सम्बन्ध में नेहरू सरकार में गृहमंत्री सरदार पटेल ने नेहरू को पत्र लिखकर कहा था कि संघ का इस कार्य से कोई लेना देना नहीं है। यद्यपि इस हत्या के षड्यन्त्र की जांच करने वाले दोनों आयोगों ने संघ को किसी भी षड़यन्त्र का हिस्सा नहीं माना और 12 जुलाई 1948 को केन्द्र सरकार ने इस पर से प्रतिबन्ध उठा लिया।

खिलाफत आन्दोलन :—

प्रथम विश्व युद्ध में भारतीयों ने अंग्रेजों की तन—मन से सहायता की थी। करोड़ों रूपयों से आर्थिक सहायता प्रदान की थी। यही नहीं, करीब—करीब दस लाख भारतीय सैनिक विदेशों में अंग्रेजों की तरफ से युद्ध में लड़ने के लिये भेजे गये थे। भारतीय सेना ने युद्ध में अपने शौर्य से नवीन कीर्तिमान स्थापित किये थे। ब्रिटिश प्रधानमंत्री लार्ड जार्ज ने 1918 के प्रारम्भ में भारतीय सेना के कार्यों की प्रशंसा की थी।

"प्रथम विश्व युद्ध काल में मित्र राष्ट्रों ने घोषणा की थी कि 'लोकतंत्र की रक्षा' तथा 'आत्मनिर्णय के सिद्धान्त' के लिये युद्ध लड़ रहे हैं। अतः भारतीयों को विश्वास था कि युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारतीयों ने युद्ध में अंग्रेजों की जो सहायता की है उसके प्रतिफलस्वरूप वे भारतीयों को कुछ

---

[14] डा० राकेश सिन्हा, डा0 केशव बलिराम हेडगेवार, पृ0 168

राजनीतिक अधिकार अवश्य प्रदान करेंगे। लेकिन युद्ध समाप्ति के पश्चात् भारत को केवल निराशा ही हाथ लगी।"[15]

युद्ध काल में ब्रिटिश शासन ने भारतीय मुसलमानों को यह आश्वासन दिया था कि खिलाफत (खलीफा के पद) का अन्त नहीं किया जायेगा, और न तुर्की का राज्य ही विघटित किया जायेगा। इसी आश्वासन पर मुसलमानों ने अंग्रेजों की युद्ध में बहुत अधिक मदद की थी तुर्की का साम्राज्य विस्तृत था और उसका सुल्तान समस्त इस्लामी जगत का खलीफा–धार्मिक गुरू था।

"युद्ध का अन्त होने पर यह स्पष्ट हो गया था कि अंग्रेजों ने मुसलमानों को धोखा दिया है। मित्र–राष्ट्रों ने पराजित तुर्की के साथ विश्व युद्ध की समाप्ति पर सन्धि की थी। यह सीर्वस की सन्धि कहलाती हैं इस सन्धि से यह स्पष्ट हो गया था कि अंग्रेज अपने वचन पर कायम नहीं रहे थे। इससे मुसलमानों की आँखे खुल गयीं। अंग्रेज को तुर्की का विधटन करने एवं खलीफा के पद का अन्त करने पर अमादा थे। अंग्रेजों की इस नीति से भारतीय मुसलमानों ने अपने अपमानित महसूस किया और उनमें अंग्रेजों के प्रति तीव्र असन्तोष पैदा हो गया था। मुल्ला एवं मौलवियों ने अंग्रेजों के विरूद्ध मुसलमानों को भड़काना शुरू कर दिया था।"[16]

इंगलैण्ड के प्रधानमंत्री ने युद्धकाल में भारतीय मुसलमानों से सहायता एवं सहयोग प्राप्त करने के लिए स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि ब्रिटिश शासन

---

[15] शर्मा, जगदग्नि "भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संविधान पृ0 84
[16] वही, पृ0 90

युद्ध के बाद तुर्की से बदला नहीं लेगा। लेकिन यह तो ब्रिटिश कूटनीतिक चाल थी। युद्ध के बाद सीर्वस की सन्धि से तुर्की का साम्राज्य विघटित कर दिया गया था। वहाँ एक उच्चायुक्त हाई कमिश्नर की नियुक्ति कर दी गयी थी जो कि वास्तविक शासक था। तुर्की का सुल्तान उसका बन्दी था। अंग्रेजों की इस नीति के विरूद्ध मुसलमानों ने खिलाफत आन्दोलन छेड़ दिया और मांग की तुर्की साम्राज्य का विघटन न किया जाय और खलीफा का लौकिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप पूर्ववत् बना रहने दिया जाय।

''महात्मा गाँधी ने खिलाफत के प्रश्न पर मुसलमानों से सहानुभूति प्रदर्शित की थी। वे हिन्दु–मुस्लिम एकता को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये आवश्यक मानते थे। मुसलमानों में व्याप्त असन्तोष एवं रोष महात्मा गांधी की दृष्टि में हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करने की दृष्टि से एक स्वर्णिम अवसर था। महात्मा गांधी की अध्यक्षता में 24 नवम्बर 1919 को अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में यह स्वीकार किया गया कि जब तक ब्रिटिश शासन तुर्की के सुल्तान को अपने दिये गये वचन को पूरा नहीं करता तब तक उससे कोई सहयोग नहीं किया जायेगा। मुसलमानों के हितों के संरक्षण की दृष्टि से जन सहयोग प्राप्त करने के लिये अखिल भारतीय खिलाफत समिति की भी स्थापना की गयी।[17]

[17] जगदिग्न, शर्मा, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारतीय संविधान पृ0 98

अमृतसर कांग्रेस के समय महात्मा गांधी ब्रिटिश शासन के साथ सहयोग के पक्षपाती थे। लेकिन आठ माह के भीतर महात्मा गांधी सहयोगी से असहयोगी बन गये। डा0 एम0 ए0 अन्सारी के नेतृत्व में गर्वनर जनरल चेम्सफोर्ड से 19 जनवरी, 1920 को एक प्रतिनिधि मण्डल मिला। जिसने मांग की कि तुर्की के साम्राज्य को छिन्न--भिन्न न किया जाये और सुल्तान को खलीफा बना रहने दिया जाये। लेकिन वायसराय कोई सन्तोषजनक आश्वासन न दे सके। 29 मार्च, 1920 को सारे हेन्दुस्तान के मुसलमानों ने मातम का दिन मनाया। मौलाना अली के नेतृत्व में प्रतिनिधि मण्डल लन्दन भी गया। लेकिन कोई परिणाम नहीं निकला।

असहयोग आन्दोलनः—

1918 के बाद घटित घटनाओं रौलट एक्ट का पारित किया जाना जलियाबाला हत्याकाण्ड, खिलाफत के प्रश्न तथा अन्य अत्याचारों ने उन्हें ब्रिटिश विरोधी बना दिया। वे सहयोगी से असहयोगी बन गये और उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य को ''शैतानीराज्य'' की संज्ञा दी। ''महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन को प्रारम्भ करने के पूर्व सारे देश का दौरा किया और जनता को आन्दोलन के सम्बन्ध में परिचित कराया था। उन्होंने अहिंसा पर विशे बल दिया। आन्दोलन को प्रारम्भ करते हुये महत्मा गांधी ने ब्रिटिश शासन प्रदत्त 'केसर–ए–हिन्द' की उपाधि को वापस कर दिया था। सारे देश में असहयोग की भावना फैल गयी। हजारों की संख्या में विद्यार्थियों ने शासकीय एवं

अर्द्ध–शासकीय विद्यालयों एवं महाविद्यालयों से त्याग पत्र दे दिया।"[18] हजारों भारतीयों ने ब्रिटिश शासन से प्राप्त पदवियाँ लौटा दीं। जमनलाल बजाज ने 'रायबहादुरी' लौटा दी तथा जनवरी, 1921 में अवैतनिक मजिस्ट्रेट के पद से त्याग पत्र दे दिया। देश के हजारों वकीलों ने वकालत छोड़ दी। 8 जुलाई को करांची में अखिल भारतीय खिलाफत समिति की बैठक हुई। मौलाना मोहम्मद अली इसके अध्यक्ष थे। उन्होंने यह फतवा दिया कि हर मुसलमान का यह फर्ज है कि वह फतवा जारी करने के दिन से सेना की नौकरी न करे और न कोई भरती में कोई सहयोग दे। मादक द्रव्यों के क्रय–विक्रय एवं पीने के विरूद्ध आन्दोलन किया गया। फलस्वरूप इससे शासन को प्राप्त होने वाले राजस्व में हानि हुई। विदेशी वस्त्रों के प्रयोग का बहिष्कार किया गया। जगह–जगह विदेशी वस्त्रों की होली जलायी गयी।

डा0 हेडगेवार ने असहयोग आन्दोलन में बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया जबकि डा0 मुंजे आन्दोलन के प्रति अपनी आपत्ति को सार्वजनिक रूप से अभिव्यक्त किया था। मुंजे का मानना था कि महात्मा गांधी मुस्लिम तुष्टोकरण की नीति अपनाकर आन्दोलन का विस्तार करना चाहते है। "डा0 हेडगेवार की अगुआई में एक असहयोग आन्दोलन समिति की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य था कार्यकर्ताओं को असहयोग आन्दोलन के लिये एक बौद्धिक मानसिक एवं शारीरिक रूप से तैयार करना। नागपुर असहयोग समिति ने 11 नवम्बर, 1920

---

[18] शर्मा, जगदग्नि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संविधान, पृ0 94

से एक सप्ताह 'असहयोग सप्ताह' के रूप में मनाया।[19] जब आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था तभी चौरी–चौरा नामक स्थान पर एक हिंसात्मक घटना घटी जिससे सारी स्थिति ही बदल गयी। 15 फरवरी 1922 को कांग्रेस के जुलूस एवं पुलिस से मुड़भेड़ हो गयी थी। पुलिस के सिपाहियों को उत्तेजित भीड़ ने खदेड़ कर पुलिस थाने को घेर लिया एवं थाने में आग लगा दी। फलस्वरूप 21 सिपाही जलकर मर गये। महात्मा गांधी को इससे बड़ा दुःख हुआ। 12 फरवरी, 1921 को बरदौली में कांग्रेस कार्यसमिति का अधिवेशन आयोजित किया गया। महात्मा गांधी ने आन्दोलन स्थगित करने एवं रचनात्मक कार्यक्रम पर बल दिया।

महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आन्दोलन को समाप्त करने का आकस्मिक निर्णय लेना एवं कांग्रेस कार्यसमिति के द्वारा उसे स्वीकृत करना आलोचना का विषय बन गया था। जब आन्दोलन स्थगित हुआ तब कांग्रेस के प्रमुख नेता जेल में बन्द थे। मोतीलाल नेहरू एवं लाला लाजपतराय ने जेल से महात्मा गांधी को लिखा कि– "किसी एक स्थान के पाथ के लिये सारे देश को दण्ड देना उचित नहीं है। सुभाष चन्द्र बोस का कथन था कि "जब जनता का उत्साह चरमोत्कर्ष पर था उस समय वापस लौटने का आदेश राष्ट्रीय संकट से कम न था।[20]

---

[19] राकेश सिन्हा, डा0 केशव बलिराम हेडगेवार पृ0 42
[20] Subhash Chnadra Bose : Indian Struggle p. 108

"कांग्रेस जनों में बड़ा असन्तोष था। दिल्ली में कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन में डा0 मुंजे ने गांधी जी के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसका कुछ सदस्यों ने समर्थन भी किया।"[21] असहयोग आन्दोलन भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष के इतिहास में युगान्तरकारी संघर्ष है। महात्मा गांधी के हाथों में उसके साथ राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व पूर्णरूपेण आ गया और कांग्रेस अंग्रेजी राज के प्रशंसकों तथा उग्रवादियों की संस्था न रहकर भारतीय जनता की संस्था बन गयी। नेहरू जी एवं सुभाष का मत था कि महात्मा गांधी ने कांग्रेस को एक गतिशील संगठन बनाया। सुभाष चन्द्र बोस ने 1921 में लिखा था कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में आधुनिक राजनीतिक दल के सभी तत्व स्पष्ट हो गये हैं। इसका श्रेय आन्दोलन के नेता महात्मा गांधी को है। आन्दोलन जन–आन्दोलन बन गया था। यह समझना भूल है कि महात्मा गांधी द्वारा आन्दोलन को वापस लेने का यह कारण है कि वह असफल रहा है। पहली बार भारतीय जनता ने इतने बड़े पैमाने पर किसी आन्दोलन में भाग लिया था।

---

[21] शर्मा, जगदग्नि, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संविधान पृष्ठ 98

अध्याय- तृतीय
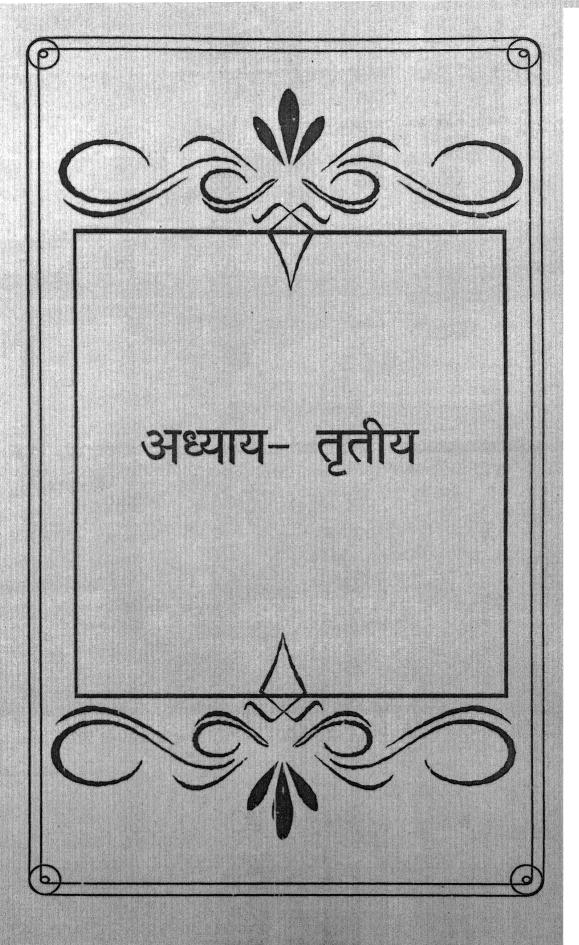
संघ की विचारधारा

डा0 हेडगेवार के मन पर समाज के तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव बाल्यकाल से ही पड़ा था। जैसे–जैसे वे बड़े हुये उनका चिन्तन परिपक्व होता गया। शिक्षा ग्रहण करने के साथ–साथ समाज की दिशा और दशा के प्रति निरन्तर सजग रहते हुये तथा व्यवहारिक रूप से समाज में कार्य करते हुये अनेकानेक अनुभवों के एवं ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर राष्ट्रीय सन्दर्भ में उन्होंने कुछ मौलिक विचारों सका सृजन किया जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के माध्यम से समाज के समक्ष प्रस्तुत किया। डा0 हेडगेवार का स्पष्ट चिंतन था कि भारतवर्ष का मूल समाज हिन्दू समाज है जिसकी गौरवशाली सांस्कृतिक परंपरा एवं इतिहास रहा है परन्तु समय के कालचक्र में इस्लामिक आक्रमणों एवं क्रिश्चियन उपनिवेशवाद के चलते भारत का मूल हिन्दू समाज अनेक कुरीतियों से ग्रसित होता गया एवं अपने प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं एवं गौरवशाली इतिहास का विस्मरण होगा गया समाज के संगठित स्वरूप का विघटन हो गया। हिन्दू समाज अपनी मौलिक समाज से विमुख होता गया।

इस प्रकार डा0 हेडगेवार का स्पष्ट चिंतन था कि जब तक इस देश के अन्दर स्वामित्व का भाव जागृत न हो एवं सांस्कृतिक विरासत एवं उपलब्धियों के प्रति गौरवानुभूति न हो और समाज शक्ति सम्पन्न एवं संगठित न हो तब तक इस राष्ट्र की समस्याओं का सभाधान नहीं होगा। लेकिन डा0 हेडगेवार को

इस प्रकार का कार्य करना इतना सरल नहीं था केवल भाषणों से यह कार्य होने वाला नहीं था। अतः डा0 हेडगेवार ने 1925 में विजयदशमी के दिन मोहिते के बाडा में एक संघठन की स्थापना की। जिसका उद्देश्य हिन्दू समाज में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत कर अपने सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक मूल्यों के प्रति गौरवान्वित करने की भावना विकसित करना।

"महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन के समय का राष्ट्र का चढ़ा हुआ जोश ठंडा हो गया था तथा उस आन्दोलन के कारण राष्ट्र में उत्पन्न होने वाले दोष सिर ऊपर निकलकर घूमने लगे थे। राष्ट्रीय आन्दोलन का जोर कम होकर आपस में द्वेष और मत्सर स्पष्ट दृष्टिगोचर होते थे। व्यक्ति व्यक्ति के बीच झगड़े की पराकाष्ठा को पहुंचते दिखायी देते थे। जाति–पांति के बीच झगड़े शुरू थे, ब्राह्मण–ब्राह्मणेतरवाद ताडण्व नृत्य कर रहा था। किसी भी संस्था में एकसूत्रता नहीं दिखती थी। असहयोग आन्दोलन में दूध पीकर पुष्ट हुये यवनरूपी सर्प अपनी विषभरी फुँफकारी सर्वत्र छोड़कर राष्ट्र में कलह उन्पन्न कर रहे थे।"[1]

इस सम्पूर्ण अनावस्था के बाह्य रूप विविध दिखे तो भी उनका मूल कारण हिन्दुओं की आतविस्मृति एवं अंसशगठितता है, यह अचूक निदान डा0 हेडगेवार ने कर लिया था तथा इन बाह्य लक्षणों का विचार न करते हुये मूल रोग को ही समाप्त करने की दृष्टि से संघटन की स्थापना की। संघ का नामानकरण 17 अप्रैल 1926 को डा0 हेडगेवार के मकान पर हुई बैठक में तय

[1] न. हा. पालकर, डा0 हेडगेवार चरित्र पृ0 175

हुआ। संगठन का नाम राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ रखने के सम्बन्ध में डा0 हेडगेवार का मानना था कि हिन्दू स्थान में हिन्दू समाज की हर बात, हर संस्था तथा आन्दोलन राष्ट्रीय है तथा वही सही अर्थों में पूरी–पूरी राष्ट्रीय हो सकती है। परस्पर–विरोधी परम्परा संस्कृति तथा भावना वाले लोगों की खींचतान कर बाँधी हुई गठरी राष्ट्र नहीं होती, बल्कि धर्म, संस्कृति, देश, भाषा तथा इतिहास के साधर्म्य से हम सब एक है। यह ज्ञान तथा 'एक रहेंगे' इसका निश्चय होकर जो अपूर्व आत्मीयता तथा तन्मयता ह्रदय से उत्पन्न होती है वही राष्ट्र का अधिष्ठान है।

डा0 हेडगेवार का विचार था कि संघ एक शक्तिशाली सुदृढ़ संघठन बने इसके लिये त्याग की आवश्यकता है। डा0 सहाव ने संघ को मजबूत करने के लिये एक विशेष पद्धति का अविष्कार किया जिसका नाम उन्होंने 'शाखा' रखा। संघ की रीढ़ प्रत्येक दिन एक घंटे की लगने वाली शाखा में व्यायाम, खेल, गीत बौद्धिक एवं प्रार्थना जैसे कार्यक्रम होते हैं।

"राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ किसी भी व्यक्ति को गुरू न मानकर भगवाध्वज को ही गुरू मानता है।"[2] व्यक्ति कितना भी महान हो फिर भी उसमें अपूर्णता रह सकती है। इसके अतिरिक्त यह नहीं कहा जा सकता कि व्यक्ति सदैव ही अडिग रहेगा। तत्त्व सदा अटल रहता है। उस तत्व का प्रतीक भगवाध्वज भी अटल है। इस ध्वज को देखते ही राष्ट्र का सम्पूर्ण इतिहास, संस्कृति और परम्परा हमारी आँखों के सामने आ जाती है। सघ इसलिये किसी

---

[2] संघ उत्सव, सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज, नई दिल्ली

भी व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ स्थान पर नहीं रखता है। संघ की विचारधारा में व्यक्तिवाद से ऊपर राष्ट्रवाद है।

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के **प्रो0 तुलसीराम** का मानना है कि ''संघ का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद व्यवहार में सांस्कृतिक फांसीवाद है।''[3]

''मार्त्सिया कसोलारी का मानना है कि संघ की कार्यशैली गोरिल्ला संगठनों से काफी मिलती जुलती है। गोरिल्ला संगठनों में 6 वर्ष से 18 वर्ष के लड़के–लड़कियों को शामिल किया जाता है। इनकी साप्ताहिक बैठकें हुआ करती है जहाँ वे ड्रिल, परेड, शारीरिक व्यायाम तथा अर्द्धसैनिक अभ्यास किया करते हैं। यहाँ अपने देश में सुबह शाम खुलेआम सार्वजनिक स्थलों पर लगने वाली संघ की शाखाओं में देख सकते हैं।''[4] राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शाखाओं का निर्माण और संचालन फाँसीवादी उद्देश्य के तहत शुरू किया और आज भी उसके माध्यम से ये पूरे देश को हिन्दू फाँसीवाद की शिक्षा दे रहे हैं।

व्यक्ति निष्ठा के स्थान पर ध्येय निष्ठा

संघ के द्वितीय सर संघ चालक गुरूजी के अनुसार– ''राष्ट्र को पुनर्गठित करने का लक्ष्य अर्थात् अपने सभी राष्ट्र बन्धुओं को समान दीर्घकालिक भ्रांति भावना में जोड़कर रखने का कार्य अत्यन्त कठिन है क्योंकि जिन्हें हम संगठित करना चाहते हैं वही लोग विभिन्न कारणों से एक दूसरे से पृथक एवं विछिन्न अवस्था में हैं। उनमें से प्रत्येक को संगठन में अनुकूल कार्य देते हुये राष्ट्र की सेवा के लायक बनाने का कार्य सरल नहीं है। अनेक प्रकार

[3] देंखे, परिशिष्ट

[4] मार्त्सिया कसोलारी राष्ट्रीय सहारा 11/03/2000

की मानव प्रकृतियों के परस्पर व्यवहारों का समावेश होने के कारण कार्यकर्ताओं के लिये आचरण हेतु नियमों का बनाना भी कठिन है।[5]

जिस समय व्यक्ति राश्ट्र के पुनर्निमाण का ध्येय लेकर कार्य करना चाहता है तो उसके समक्ष दो बाधायें मुख्यतः आती हैं एक राष्ट्रीय चेतना का अभाव तथा दूसरी समाज में संगठित जीवन जीने की भावना की कमी उपरोक्त कारणों से व्यक्ति के अन्दर दूसरों के कार्यो पर टिप्पणी करने का तथा उन्हें अपने से छोटे समझने का प्रलोभन सदैव बना रहता है। इससे प्रायः आत्म प्रशंसा एवं अहंकार का भाव प्रकट रहता है। यह पतन का पहला गर्त है जिससे राष्ट्रीय कार्य में लगे हुए कार्यकर्ता को बचना चाहिए यदि मैं ही श्रेष्ठ हूँ और सभी बेकार इस पूर्वागृह को लेकर कार्यकर्ता कार्यक्षेत्र में लेकर जाता है तब भला वह लोगो के बीच में किसी प्रकार कार्य कर सकता है और कैसे सभी का प्रेममय सहयोग प्राप्त कर पायेगा? इस सम्बन्ध में संत कबीर का बचन ध्यान देने योग्य है–

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जेसे पेड़ खजूर।
पंक्षी को छाया नहीं, फल अति दूर।।

अर्थात् इतना बड़े होने के क्या फायदा जिसके कारण अपने ही लोगों के साथ हम प्रेम और सहयोग के साथ मित्रवत मिल जुलकर न रह सके इसलिए सामाजिक कार्यकर्ता में विद्यमान महान गुणों के पश्चात् भी उसे अपनी ऊँचाई से उतरकर सामान्य जनों के बीच में पहुंचना चाहिए। समाज बन्धुओं के साथ मेलना जुलना चाहिए उसे सर्वसाधारण के साथ इस प्रकार एक रूप होना

---

[5] मा. स. गोलवलकर, विचार नवनीत पृ0 443

चाहिए कि लोग उसे असाधारण न समझ अपनी योग्यता तथा त्याग की चेतना से उत्पन्न पृथकत्व की किनिचित्व छाया भी उसके और अन्य लोगों के मध्य में न आवे। क्योंकि कार्यकर्ता जिन विविध सद्गुणों को प्रयत्न पूर्वक अपने आप में उत्पन्न करता है वे सभी सद्गुण रूपी पुष्प समाज देवता, राष्ट्र देवता के चरणों पर ही समर्पित करने के लिए ही तो है। यही तो हमारी सच्ची ध्येय निश्ठा है।

पूर्व काल में प्रकट हुए महान पुरूषों का जीवन कार्य राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यकर्ताओं के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुआ। शिवाजी महाराज ने निरक्षर गरीब कृषकों के बीच में जाकर अत्यन्त प्रेम और भ्रातृत्व के भाव से मिले आदर्शों के वातावरण में उनका पोषण किया तथा उन्हें विजयी राष्ट्र रूपों के बीच बदल दिया। सद्गुणों और दुर्बलताओं में सभी लोग एक समान नहीं होते यह नितान्त सत्य है जिससे कि प्रत्येक मनुष्य को इस बात की प्रेरणा मिले कि उसमें जो कुछ भी शक्ति और सद्गुण है उसे वह समाज के लिये अपर्ण करें। इसको उपलब्धि के लिए राष्ट्र के कार्यकर्ताओं में समाज के साथ पूर्णतादाद में की भावना होना आवश्यक है।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ इसी सुविचारित भाव विचार के साथ सम्पूर्ण देश के अन्दर लक्ष्याविधि कार्यकर्ताओं की श्रृंखला का निर्माण अपनी दैनंदनी शाखाओं के माध्यम से कर रहा है। जो कि प्रतिक्षण प्रतिपल राष्ट्र के लिए समर्पित है। जब ध्येय निष्ठा के स्थान पर व्यक्ति निष्ठा स्थान ग्रहण कर लेती है तो संगठन कार्यकर्ताओं के सामने से दिण्य भण्य लक्ष्य ओझल हो जाता है ऐसे कार्यकर्ताओं अथवा राष्ट्रजनों से युक्त संगठन जहाँ तार–तार होता है वही

राष्ट्र भी फिरंगियों के सम्मुख परास्त एवं पद्धदलित होता है। भारतीय इतिहास में ऐसे कई उदाहरण विद्यमान है जब ध्येय निष्ठा के स्थान पर व्यक्तिपरख चापलूसी उभरने लगती है। तब फिर वहां सत्य, असत्य, धर्म, अधर्म, लाभ या हानि का विवेक राष्ट्र के हित में शून्य हो जाता है। जैसे महाभारत के युद्ध के पूर्व की घटनाओं की ओर दृष्टिपात करे तो यह स्वयं सिद्ध हो जाता है।

राष्ट्रीय स्वयं संघ के संगठन में कार्यकर्ता का गठन करते समय पूर्ण सावधानी रखी जाती है कार्यकर्ता व्यक्तिनिष्ठ न होकर ध्येय निष्ठ बने इस हेतु से नित्य लगने वाली शाखा पर किसी व्यक्ति को महिमा मंडित नही किया जाता ध्वज के रूप में एक प्रतीक को रखा गया एक विद्यार्थी मुख्य शिक्षक की आज्ञा का पालन बड़े–बड़े श्रीमान और उच्च पदस्थ लोग भी करते हैं।

साधन और साध्य की पवित्रता

"हमारी संस्कृति में ध्येय अर्थात् साध्य "सामाजिक हित" को प्राप्त करने के साधन रूप में जो व्यक्ति है उसकी पवित्रता एवं शुद्धता पर विशेष बल दिया गया है ? किन्तु आधुनिक विचारधारा से ओतप्रोत लोगों के द्वारा यह सुना जाता है कि साध्य ही साधन के औचित्य का निर्णय करता है तात्पर्य यह है कि व्यक्ति जो कि सामाजिक परिवर्तन लाने का साधन ही है उसे पृष्ठभूमि में डाल दिया गया आज उसी कारण से संसार में मनुष्य का पतन भयंकर रूप से हो रहा है।"[6] क्योंकि लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयत्नों में मनुष्य तत्व के विचार का तिलांजलि दे दी गई है किन्तु हमारी संस्कृति का आदेश भिन्न है हम राम व

---

[6] मा. स. गोलवलकर, विचार नवनीत पृ0 118

शिवाजी को जितनी उनकी राष्ट्रीय उपलब्धियों के लिये श्रद्धा समर्पित करते हैं उतनी ही उनकी पवित्र एवं निष्कलंक व्यक्तित्व चरित्र के लिये भी यह दृष्टिकोण कि व्यक्ति अर्थात् साधन सार्वजनिक क्षेत्र में भलीभाँति रीतिनीति के अनुसार कार्य करे तो उसके व्यक्तित्व कमजोरियों को उपेक्षित किया जा सकता है अथवा उसे उचित ठहराया जाना हमारी मूलभूत मान्यताओं के विपरीत है। क्योंकि बुरे साधनों के परिणाम अच्छे नहीं हो सकते है जिस प्रकार बर्फ के तूफान में फंसने पर आग के बीच बैठकर अपने को गर्म करने का प्रयत्न करना इस उष्णिता के परिणाम स्वरूप तो हम राख ही हो जायेंगे।

इसी प्रकार अल्पकालिक रूप में बुरे साधन अच्छे परिणाम देते हुये दिख सकते हैं। दीर्घकालिक नहीं। चरित्र से हीन या व्यसनग्रस्त व्यक्ति अपने राष्ट्र की उन्नति नहीं बना सकता दिव्य देह को प्राप्त करने में सदा असमर्थ ही रहेगा। "जैसा कि प्रथम विश्वयुद्ध की घटना हमारे समक्ष की ही मित्र राष्ट्रों के युद्ध नायक जिन योजनाओं पर विचार विमर्श करते थे एवं गोपनीय निर्णय लेते थे जर्मन सेनाधिकारी को उनका पता लग जाता था। फलस्वरूप योजनाओं के कार्य रूप में परिणित होने से पूर्व ही शत्रु उनका प्रतिकार करता अस्तु मित्र राष्ट्रों की योजनायें उपहास बनकर रह जाती जब इस रहस्योद्घाटन के स्रोत का पता लगाया गया तब ज्ञात हुआ कि मित्र राष्ट्रों के सेनाधिकारियों के खेमों में माताहारी नाम की एक महिला गुप्तचर है। उस आकर्षक महिला के आकर्षण में फंसकर मित्र राष्ट्र के सेनाओं के अधिकारी अपनी योजनाओं की जानकारियाँ उसे दे दिया करते थे और वह गुप्तचर महिला जर्मन सेनाधिकारी तक उनकी

योजनाओं को पहुंचाया करती थी जब वह महिला गुप्तचर पकड़ी गयी तव ही मित्र राष्ट्रों की सेनाओं को विजय प्राप्त हो सकी यदि मित्र राष्ट्रों के दृढ़ चरित्र के होते तो अपने देष को बहुत बड़ी क्षति और अनर्थ को बचा सकते थे।[7]

प्रायः देखने में आता है कि सामाजिक क्षेत्र एवं राजनैतिक क्षेत्र के कार्य करने वाले लोगे अपनी प्रशंसा सुनकर उल्लसित होते हैं और फूलकर कुप्पा हो जाते हैं फिर उनसे जो भी करना हो सब कुछ करने को तैयार हो जाते हैं। अनेक बातों को प्रतिकार किया जाता है किन्तु खुशामद का नहीं भयंकर विष तो पचाना सरल है किन्तु स्तुति और सम्मान को पचाना आसान नहीं भगवान शंकर ने भी सृष्टि की रक्षा के लिए विष तो पीकर पचा गये किन्तु वहीं शंकर भस्मासुर के द्वारा दी गयी स्तुति के शिकार हो गये और स्वयं विपत्तियों में फंस गये। चाटुकारिता व्यक्ति को फुटवाल की तरह से फुला देती है। जिसकी सदैव एक ओर से दूसरी ओर को ठोकर मारी जाती है। अतः यदि हम प्रत्येक परिस्थिति में अपनी राष्ट्र की सेवा के योग्य बनना चाहते हैं तो व्यक्ति अर्थात् साधन का इन सभी प्रकार की कमजोरियों से बचना होगा। विशेषता सार्वजनिक क्षेत्र का कार्यकर्ता जब लोगों के बीच कार्य करता है तो जनता की पैनी दृष्टि सदैव उस पर गढ़ी रहती है। गोलवलकर का मानना था कि यदि हम रंगीन वस्त्रों को एक दिन के लिए पहनने या सप्ताह भर के लिए उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। किन्तु स्वच्छ और सफेद वस्त्र पर पानी की एक बूंद भी कुछ समय के लिए अपना चिन्ह छोड़ जाती है। इसलिए हम जितना भी अधिक शुद्ध बनने

[7] मा. स. गोलवलकर, विचार नवनीत पृ0 420

की आकांक्षा करते हैं अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को उतना ही अधिक सावधानी से परखना होगा।

सामाजिक क्षेत्र का कार्यकर्ता केवल एक व्यक्ति मात्र नहीं है वह समाज का एक अविभाज्य अंग है। इस संबंध में उसके चरित्र की पवित्रता उसके व्यवहार में प्रकट होना चाहिए। अर्थात् उसका कृतत्व और वक्रतत्व में समानता होनी चाहिए। यदि इस पहलू की ओर दुलक्ष्य किया जो केवल व्यक्तिगत पवित्रता और श्रेष्ठता राष्ट्र के लिए उपयोगी नहीं होगी। जब चरित्र के दोनों पहलू अभिव्यक्त होते हैं तभी व्यक्ति और समाज प्रगति करता है। यह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक पर राष्ट्र का चिन्ह अंकित है तो दूसरे पर उसका मूल्य किसी एक का घिसना उसकी उपयोगिता समाप्त कर देता है। इसलिए यह अनिवार्यता है कि व्यैक्तिक अच्छाई एवं चारित्रिक पवित्रता को राष्ट्रीय हित में अर्थात् ध्येय को प्राप्त करने के लिए सक्रिय एवं गतिशील बनायी जाये।

राष्ट्रीय स्वयं संघ के दृष्टिकोण में व्यक्ति ऐसे सम्पूर्ण गुण राष्ट्र के प्रति समपर्ण के रूप में व्यक्त होने चाहिए जो प्रतिकार के रूप में किसी बात की चाहे वह नाम या ख्याति या अन्य किसी प्रकार का लाभ व अपेक्षा न करे। व्यक्ति को इस बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि समाज के लोग हमारी प्रशंसा करते है कि नहीं वास्तव में यहाँ अच्छा है कि हम जिनकी सेवा करते है वह लोग हमारी स्तुति न करे तभी कार्यकर्ता उस स्तुति के वन्दन से मुक्त रहेगा। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ अपने राष्ट्र को इष्ट देवता के रूप में देखता

है। यह इष्ट देव संघ का साध्य है साधन अर्थात् व्यक्ति का सर्वस्य समपर्ण निरपेक्ष रूप से अपने साध्य अर्थात् राष्ट्र देव के प्रति होना चाहिए।

कार्य और लक्ष्य

राष्ट्रीय स्वयं संघ का लक्ष्य है सम्पूर्ण समाज में हिन्दू समाज को संगठित करना जिसमें प्रत्येक आदर्श मनुष्यत्व की मूर्ति बनकर समाज के संगठित व्यक्तित्व का सजीव अंग होगा। "यह कल्पना ऐसी नहीं है जो कुछ दिनों अथवा कुछ वर्षों में ही साकार की जा सके इस दिव्य भव्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सैकड़ों और हजारों समर्पित जीवन चाहिए जो शान्तिपूर्वक अभिचल भाव से अथक प्रयास करते है ऐसे सबल एवं धैर्यवान हृदयों की आवश्यकता है जो विपरीत परिस्थितियों तथा प्रलोभनों के बीच अडिग बने रहे इस प्रकार के स्वतः स्फूर्त जीवन निर्माण करने के लिए ही संघ प्रतिदिन के संस्कारों पर बल देता है तथा व्यक्ति के मन मस्तिष्क एवं हृदय पर उन सभी गुणों को महत्व प्रतिदिन अंकित करता है। जो उसे सम्पूर्ण जीवन के समपर्ण के मार्ग पर अग्रसर होने की शक्ति और योग्यता प्रदान करते है।"[8] कार्य करने के लिये प्रकार स्थिर शान्त एवं आजीवन श्रृद्धा आजकल के संसार में विचित्र और असाधारण प्रतीत हो सकती है।

इसमें इसकी स्वयं की मौलिकता एवं नवीनता भी है। इसी कारण संघ के दृष्टिकोण को समझने और आत्मसात् करने में लोगों को समय लगता है ये स्वाभाविक ही है ऐसे अनेक लोग है जो राष्ट्रीय स्वयं संघ की इस कार्य पद्धति

---

[8] मा. स. गोलवलकर, विचार नवनीत, पृ0 67

को देखकर भय और विषमय से अभीभूत हो जाता है कि इसमें जीवन भर वर्षानुवर्ष एक निश्चित समय एवं स्थान पर प्रतिदिन उपस्थित होना आवश्यक रहता है। आज की मनोवृत्ति है कि लोग शीघ्र फल एवं सफलता का आसान उपाय चाहते हैं।[9] अल्प परिश्रम के द्वारा अधिकतम लाभ प्राप्त करने की मानवीय दुलर्भता ने हमारे राष्ट्र जीवन के सभी क्षेत्रों को ग्रस्त कर रखा है। कठोर परिश्रम वाले ईमानदारी के रास्ते का स्थान बेइमानी ने लिया जहाँ बुरे और भले का कोई विचार नहीं होता इसीलिए आज धनार्जन करने वाला व्यक्ति अधिक धनी बनने के लिए आसान मार्ग के रूप में कालावाजारी जैसे नीच करम में तत्पर दिखता है। विडम्बना है कि आज हमारे सामाजिक जीवन का कोई भी पहलू ऐसा नहीं जो छुद्र मानसिकता एवं हीनता की कलंकता से बचा हो।

चारों और इसी वातावरण के कारण सामान्य जनसंघ के कार्य में भी छोटा एवं सरल मार्ग कौन सा है के कारण इसका विचार करते है। वे पूछते है कि कितने समय तक संघ अपनी इस वर्दी को चलाते हुए अपनी कल्पना के अनुसार समाज का रूपान्तरण करने में समर्थ होगा कितने वर्ष तक संघ इसी मार्ग तक फिर विचारों की ओर दृष्टि डालते है और देखते है कि शक्तिषाली प्रशासन ऐसी बड़ी शक्तियाँ धारण किये हुये है कि राष्ट्र जीवन का सम्पूर्ण प्रसार उस पर अभिलिखित है। आप कल्पना करते है कि राज्य की यह शक्ति अर्थात् प्रशासनिक अधिकारीगण राजतंत्र एवं अधिकार साधन हमें उपलब्ध हो जाए तो अन्तकाल में ही देश का स्वरूप ही बदल देंगे शिक्षा आदि के द्वारा

[9] मा. स. गोलवलकर, विचार नवनीत पृ0 67

आने वाली पीढ़ी को अपने अनुसार ढालने में सफलता हो सकती है। इस प्रकार के सरल और छोटे मार्ग पर आवश्यकताओं के विकास में कण्ठ और त्याग कम फल प्राप्ति शीघ्र होती है। हम विश्व इतिहास के पन्ना पलटे और देखें कि किसी भी देश का अजर अमर राष्ट्र का जीवन निर्माण करने में क्या राज्य सत्ता का प्रयोग थोथा विचार और तत्क्षण फलेक्षा ने वास्तव में सहायता पुरातनकाल में ऐसे अनेक साम्राज्य रहे जो पूर्ण रूपेण राज्य सत्ता पर निर्भर थे। उदाहरण फारस अपनी सभी प्रकार की सुरक्षा एवं प्रगति के लिए पूर्णता साम्राज्य पर निर्भर था। साम्राज्य की सत्ता सर्वोच्चतम वह जनजीवन के सभी पहलुओं का नियमन करता था। वह धर्म का निर्णायक वह भी था। कुछ समय के लिए वहां के लोग निश्चित ही दुःखी थे। किन्तु उनके राष्ट्र जीवन का भव्य भवन अरवों के आक्रमण के एक ही धक्के में धाराशाही हो गयी। रोम और मुयान की भी यही दुर्गत हुयी। यह इस कारण नहीं हुआ कि इन साम्राज्य में न्याय सम्बन्धित सेना का उत्तम प्रबंध का अभाव था।

वरन् वे सभी चीजें राजा की राजनीतिक सत्ता एक बालू के ढेर पर नाव खड़ी थी और धर्म राष्ट्रीयता सभी कुछ एक ही धमाके के साथ धाराशाही हो गये फिर विश्व मंच पर कभी प्रकट होना हमारे देश की कहानी नितान्त अन्य प्रकार का चित्त प्रस्तुत करती है। हमारे समाज को भी अत्यन्त बर्बर जातियों के अगणित आक्रमणों का सामना बराबर करना पड़ता था। हमारे समाज में इस शत्रुता की शक्तियों का कुछ काल के लिये राजनीतिक अधिपत्य भी बना रहा। रावण के काल से लेकर अब तक समय–समय पर धार्मिक एवं विनाशकारी

शक्तियों ने स्वतंत्रता यहाँ शासन किया है। इन सभी ने हमारे राष्ट्र जीवन के छिन्न–भिन्न के प्रयास किये किन्तु भयंकर संकट काली का सामना करता हुआ हमारा समाज एवं राष्ट्र जीवन आज भी सुरक्षित ही बारम्बर यह अपनी भस्म से उदित हुआ तथा दृष्टि शक्तियों के फाँसी के फंदे को नष्ट करके अपनी वही गौरवशाली परम्परा आदर्शवादी की अखण्डता एवं असमंजस धारा को प्रभावित करता रहा यह चमत्कार किस प्रकार घटित हुआ।

इस आरम्भता का गूड रहस्य क्या है। भीषण से भीषण विष प्रहार के बाद भी समाज की मृत्यु को चुनौती देने की चिर जीवन क्षमता का रहस्य क्या है? अपने राष्ट्र जीवन की प्राचीन एवं उदात्मक परम्पराओं की यह धारा अबोध रूप से युग युगान्तर तक वहती रहे उसका जीवन स्रोत खोजने न पाये इसका दायित्व वहां के राष्ट्रीय समाज का है।

व्यक्ति समाज की जीवन वस्तु अपने समाज और राष्ट्र के प्रति समर्पित व्यक्ति की है किन्तु व्यक्ति निर्माण का कार्य इतना सरल नहीं है; राष्ट्रीय स्वयं संघ के संस्थापक संघ स्थापना के पूर्व भलीभाँति इस दिशा में विचार किया और व्यक्ति निर्माण का कार्य करने हेतु संघ की स्थापना की संघ का–राष्ट्र के प्रति उस के अध्यात्मिक मूल्यों के प्रति निष्ठा से अति प्राप्ति हो। जो अपने अतिशुद्ध चरित्तण तथा सबके प्रति प्रेम की भावना की शक्ति के आधार पर समाज को संगठित शक्ति का संचालन इस स्तर तक जा करें। की कोई भी राज्य सत्ता हो वह अपनी को का लांघ सके और समाज हित के अतिरिक्त अन्य किसी भी बात के लिये सत्ता का प्रयोग न कर सके। इस प्रकार के व्यक्तियों का संगठन

ही समाज की शशक्त शक्ति का आधार बन सकता है। वह होगा ऐसा संगठन जो परिस्थितियों के प्रवाह के ऊपर उठ सके जो छुद्र स्वार्थी की पूर्ति की भावनाओं से अथवा राजनीतिक सत्ता की अधिकृत कर लेने की लालसा से स्फूर्ति न हो जिसका सम्पूर्ण समाज के साथ तादात्मय हो यही ही संघ के द्वारा व्यक्ति निर्माण है।

सत्ता पर नियंत्रण :

"यौवन धन सम्पत्तिः, प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकयम्यनर्थाव, किमु यत्र चतुष्टयम्।।

अर्थात् यौवन धन सम्पत्ति सत्ता और अविवेक इनमें से अनर्थ के लिए एक ही पर्याप्त है फिर जहाँ चारों ओर हो वहाँ के लिए क्या कहा जाए। कुछ लोग मानते है कि सत्ता के द्वारा ही सभी समस्यायें का समाधान हो सकता है। इसलिए धार्मिक विचार प्राणी के प्रसार के लिए राजनीतिक सत्ता को आवश्यक मानते है उनका मानना है कि भूतकाल में इसाई धर्म एवं इस्लाम धर्म का प्रसार उनकी राजकीय सत्ता के कारण हुआ है। किन्तु इन सबका गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि राजकीय सत्ता समस्या का समाधान कभी नहीं करेगी।

उदाहरणः— सम्पूर्ण राजसत्ता तथा अधिकतर लोग एकांकी व्यक्ति ईसा मसीह के विरूद्ध खड़े हो गये थे। उसे शूली पर चढ़ा दिया गया तो उनके शिष्यों का मार्गदर्षन के लिए कोई नहीं बचा था। किन्तु उनके हृदय आर्शीवाद से प्रेरित थे। ईसा की भावना से अपनी नवीन अनुभूति के उत्साह एवं विश्वास और उत्साह को लेकर संसार में दूर—दूर तक फैल गया। तथा विश्व उनके

चरणों पर विनत हुआ। उस समय उनके पास राजकीय सत्ता था किन्तु कालान्तर में उनके उत्तराधिकारी राजकीय के प्रलोवन के शिखर हो गये तो उनके अनुयाथी में भ्रष्टता और अवनित का प्रवेश हो गया। सत्ता के मद से मतवाले अनुयायियों के हाथों इस्लाम का विषय जिसे मूल से इस्लाम का प्रसार कहा जाता है।"[10]

जीवन के अध्यात्मिक मूल्यों के जागरण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। कवेल राजसत्ता के माध्यम से समाज हित की उपलब्धि का सब से नवीनतम प्रयोग हुआ। हम रूस में देखते हैं उसने भी यही निर्णय लिया है कि सत्ता भ्रष्ट करती है। तथा सम्पूर्ण सत्ता सम्पूर्ण स्पिेन भ्रष्ट करती है एक बार सत्ता मिलने पर उसे किसी भी मूल्य पर बनाये रखने की आकांक्षा सत्ताधारियों में उत्पन्न हो जाती है। ऐसी दशा में जनता के प्रति देखने का यह भाव हो जाता है कि मैं स्वामी हूँ और तुम मेरे दास हो। अतः विचार करने पर यही निष्कर्श निकलता है कि राजकीय सत्ता के प्रलोभन से सामाजिक कार्यकर्ता अपने को विलग रखे तथा साथ ही साथ समाज एवं राष्ट्र का संस्कृति एवं धर्म का आकार करने वाली शक्तियों को रोकने के लिये पर्याप्त समष्थि से युक्त और जागरूक संगठन का निर्माण करे क्योंकि ऐसे व्यक्तियों का संगठन ही समाज को स्वस्थ्य एवं सही व्यवस्था दे सकेगा जिसमें सम्पूर्ण समाज समृद्धि का जीवनयापन कर सकेगा। राजकीय सत्ता तो एक बाह्य उपकरण भाव है। जो मनुष्य के अंतरंग को किसी आदर्श के अनुसार नहीं ढाल सकता केवल

---

[10] मा. स. गोलवलकर, विचार नवनीत, पृ0 74--75

प्रशासकीय दिधि विधान मानवमन को सद्‌गुणों की ओर नहीं ढाल सकते उदाहरणार्थ– कोई अधिकार प्राप्त व्यक्ति मद्यपान के विरूद्ध कानून बनाता है और स्वयं मद्यपान करने की उसे लत है तो ऐसा व्यक्ति कानून की प्रवेचना करने में और भी अधिक चतुराई दिखायेगा। जहाँ तक सांस्कृतिक मूल्यों एवं सामाजिक सुदृढ़ता को पुनर्जीवित करने की भूमिका के निर्वाह का प्रश्न है यह अत्यन्त स्पष्ट है कि राजकीय सत्ता आप में पंगु होती है। यदि उसे भविष्यवित छोड़ दिया जाता है तो वह अत्यन्त निकष्टट रूप लेकर उन उच्च आदर्शों को भ्रष्ट कर देती है। इसलिए किसी राष्ट्र की अमरता का रहस्य जिसमें उसके समस्त परम्परागत गुणों की सुरक्षाओं राजकीय सत्ता से मानव कहीं खोजना होगा।

सत्ता पर अंकुश :

सामाजिक जीवन के विभिन्न तत्वों का गम्भीर वियार करते हुए हमारे प्राचीन विधि निर्माताओं ने राज्य सत्ता के कार्यों को इतना सीमित कर दिया था कि वह केवल बाहरी आक्रमणों से तथा ईर्श्या, घृणा एवं परस्पर प्रति द्वन्द्वता आदि के कारण उत्पन्न आन्तरिक कलह से जनता की रक्षा करे उनका मानना था जो राज्य इस सीमाओं को लापता हो वह लोगों का मित्र नहीं हो सकता इस स्थिति में वह लोगों का शत्रु बन जाता है। क्योंकि तब वह लोगों की निरन्तर नौसैनिक क्षमताओं के स्वतन्त्र विकास में बाधक बनता है। साथ ही राज्य कर्ताओं की हजूरी करने में लोगों को खींच कर श्रेशठ जीवन मूल्यों से हटाते हुए वह लोगों को अलग कर देगा। यदि सरकार स्वयं को कल्याणकारी

राज्य कहलाती हुई सम्पूर्ण शक्ति एवं अधिकार के केन्द्रित करने का प्रयत्न करती है तथा शिक्षा चिकित्सा सामाजिक सुधार उत्पादन वितरण जैसे जीवन के अन्य अनेक क्षेत्रों पर एक छत्र अधिकार प्राप्त करना चाहती है। यदि राज्य इस प्रकार मानव के सम्पूर्ण क्रिया कलापों पर आधिपत्य कर लेगा तो मनुष्य कर्म करने की स्वप्रेरणा से रहित होकर एक दास मात्र रह जायेगा। सत्ता राज्यकर्ता को पीडक और अत्याचारी बनाती है।

अतः अधिकार प्राप्त मनुश्य अपने संभावित विरोधियों का हिंसा द्वारा दमन करना चाहते है। इस प्रकार वह समाज की शान्तिपूर्ण उन्नति तथा कल्याण के लिये अपने को अयोग्य बना लेते हैं। इसीलिए हमारे विधि निर्माताओं ने आवश्यक समझा कि सत्ताधारियों पर कठोर प्रतिबन्ध लगाये जाये। प्रशासनिक शक्ति जो केवल साधन है उसे साध्य नहीं बन जाना चाहिए। राज्य तभी तक समाज की भलाई कर सकता है। जब तक वह धर्म का उत्तम जीवन के उच्चतर नियमों का प्रतिश्ठापक रहता है। और स्वयं साध्य रूप नहीं ले लेता इसीलिए उन्होंने वनवासी, आश्रमों में रहने वाले त्यागी विरागी ऋषियों और तत्वदर्शियों के में प्रकट हुई धार्मिक सत्ता के मार्ग दर्शन एवं नियन्त्रण के अधीन अपने इस राज्यकर्ताओं को रखा।

हमारी प्राचीन राष्ट्र व्यवस्था का एक अनोखा पक्ष यह है कि उसमें सम्पत्ति के उत्पादन को राजनीतिक सत्ता से अलग रखा गया था। क्योंकि धन शक्ति का एक रूप है यदि राज्य सत्ता राजनैतिक और आर्थिक शक्तियों को

प्राप्त कर लेती है वो होकर कितना बड़ा विध्वंत कर सकती है इसकी कल्पना आसानी से की जा सकती है।

उदाहरणार्थः—

फ्रांस की राज्य क्रान्ति के पूर्व उन देशों में समाहित हुआ करती थी अनियन्त्रित शासन के अन्तर्गत जनता कार्य करती रहती थी उसकी स्वतन्त्रता कार्य करने की स्वप्रेरणा तथा आनन्द निचोड़ लिये गये थे। परिणामतः उस जुल्म के विरूद्ध हिंसात्मक विद्रोह के रूप में स्वाधीनता समानता एवं बन्धुता का नारा लगाये हुये फ्रांस की राज्य क्रान्ति का विस्फोट हुआ उसी समय वहाँ औद्योगिक क्रान्ति हुई जिसमें अवसर की समानता का घोश करते हुये वृद्धि योग्यता और धन में बड़े चरे लोगों ने उद्योगो पर एकाधिपत्य कर लिया अपरनीति सम्पत्ति को एक किया इस तरह उद्योगपति राजकीय सत्ता के नियन्त्रक हो गये। राजनैतिक व आर्थिक भक्तियों के योग से बने इन नवीन अत्याचारियों के द्वारा एक बार पुनः अनियन्त्रित शासन उत्पन्न हो गया और सामान्य जनता एक भयनीय दैन्य ह्रास की दशा तक पहुंच गयी। इस नयी व्यवस्था को जनतन्त्र का नया और मोहक नाम दिया गया था। ''बनार्डशा के शब्द में कहा जाये तो उदारकृति सम्पन्न सम्राट के अभाव के परिणाम स्परूप ही जनतन्त्र का जन्म हुआ था।

इस असन्तुलित सामाजिक व्यवस्था उसके परिणाम स्परूप उत्पन्न जन अशान्ति से कम्युनिस्ट क्रान्ति के रूप में दूसरा विस्फोट हुआ। रूस और चीन में खूनी क्रान्तियाँ हुई वहाँ भयंकर संकट भोजन, निवसिन दास शिविर आदि

अनेकों प्रकार के अमानवीय कृत्य हुए वे शायद संसार के इतिहास में वेजोड़ है। विदेष जिन्होंने कम्युनिस्ट क्रान्ति के परिणामों का पूर्ण आंकलन कर लिया था और जनतान्त्रिक बने रहे थे। चाहे एक सीमा तक ही ही क्यों न हो राजनैतिक शक्ति को आर्थिक शक्ति से दूर रखकर ही ऐसा कर सके थे। इतने जनतांत्रिक देशो में इन दोनों के मध्य अब तक लाभकारी संतुलन उपलब्ध नहीं हुआ है।

इसलिए दास और खूनी क्रान्ति से बचाने के लिये तथा समाज की स्थायी शान्ति एवं स्वतन्त्रता के लिये हमारे प्राचीन हिन्दू विचार व्यवहार ने आर्थिक शक्ति को राज्य की भादीनता से दूर रखा। सम्पत्ति के उत्पादक को सत्ता से वंचित रखा। दोनों ही शक्तियों को एक दूसरे पर निर्भर एवं एक दूसरे के शोधक के रूप में रखा गया था। पर महत्वपूर्ण बात यह है कि ये दोनों शक्तियों की देखरेख निस्वार्थ व्यक्ति किया करते थे। ऐसे लोगों की एक सतत् परम्परा जो सत्ता एवं धन के सभी प्रलोभनों से ऊपर रहकर भावियात्मिक अधिकार का राजदंड लिये हुए सदैव सर्तक रहते थे और इन दोनों शक्तियों में से किसी के भी किये जाने वाले अन्याय को होने देते थे। यही शक्ति वास्तव में हमारे प्राचीन राश्ट्र के वैभव और ममतरता का वास्तविक प्राण रही है।

राष्ट्र ध्वजः—

हजारों वर्षों पूर्व आज के समान मानव की समाज रचना हुई नहीं थी। वो जंगलों में रहता था उस समय मानव पहाड़ की नैसर्गिक गुफाओं में रहते हुये जंगलों में प्राप्त शिकार फलों तथा विभिन्न प्राकृतिक औषधियों पर अपना जीवन निर्वाह करता था। उस काल में एक लाठी डंडे से खरगोश हिरन जैसे

पशुओं का शिकार करने पर, शिकार प्राप्ति की प्रशंसा वही लाठी ऊँची करते हुये प्रदर्शित होती थी। ऐसी अनेक कल्पनाओं के ध्वज कल्पना का आरम्भ हुआ होगा।

"ध्वज के उदय के सम्बन्ध में बहुत कल्पनायें व किवदंतिया हैं जो आज भी भौतिक प्रगति होने पर वे ध्वज विभिन्न वनवासी जातियों का, टोली, एवं गुट का एकत्व, गौरव पराक्रम था स्वतन्त्र असित्व का प्रतीक आज भी बने हुये हैं। ध्वज झंडे एवं पताकाओं का सम्बन्ध मानवीय धर्म, कर्म और चेतन्यता का प्रतिवानों पर केन्द्रीभूत है।"[11]

हमारे देश में राष्ट्र प्रेम की भावना को जाग्रत करने के लिये विभन्न प्रकार के चिन्ह एवं प्रतीक हैं उनमें राष्ट ध्वज भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है। राष्ट्र ध्वज एक शौर्य, साहस, पराक्रम, बलिदान, जौहर व निस्वार्थ सेवा कर भारतीयों के लिये एक प्रेरक है जो अलगाववाद और विभाजन के खिलाफ है जिसमें हिन्दू धर्म हिन्दू संस्कृति, धर्म निरपेक्षता और शहीदों के बलिदान की कहानी छिपी हुई है।

राष्ट्र ध्वज वास्तव में भारत के लोगों को आपस में जोड़ता है जिसमें पाये जाने वाले विभिन्न रंग समृद्धि शान्ति एवं सम्पन्नता का प्रतीक है। राष्ट्र ध्वज तीनों रंगों में विभक्त है उनमें सबसे ऊपरी रंग केसरिया जो शौर्य एवं पराक्रम का प्रतीक है जिसका सम्बन्ध हरित क्रान्ति है। इसके मध्य में पाये जाने वाले चक्र गतिशीलता का प्रतिनिधित्व करता है जिसके द्वारा भारत की

---

[11] ना. हा. पालकर, भगवाध्वज, पृ0 10

औद्योगिक व्यवस्था का संचयीकरण है जो अशोक की लाट से सम्बन्ध रखती है। चक्र और विभिन्न रंग जिनसे राष्ट्र ध्वज बना है जो आपस में एक दूसरे को आपस में समायोजित किये ही चक्र की प्रत्येक सलाई गत्यात्मकता को प्रदर्शित करती है।

07 अगस्त 1906 को कलकत्ते के पारसी बागान चौक में लहराया गया झंडा लाल, पीले तथा हरे रंग का था। कुछ ही दिनों के पश्चात जर्मनी के स्ट्राटगार्ड नामक शहर में अन्तराष्ट्रीय शोस्लिट कांग्रेस का अधिवेशन हुआ उस अधिवेशन के सरदार सिंह राजा और कमाबाई दोनों ने झंडा फहराया था जो तिरंगा का ही प्रतीक था। उस समय 1917 से 1921 के बीच में रंगों का कोई विभेदीकरण नहीं किया गया था हिन्दू तथा मुसलमान सभी उसका सम्मान करते थे।

2 अप्रैल 1931 में करांची में हुये अधिवेशन में ध्वज का रंग और आकार निश्चित करने के लिये एक समिति नियुक्त की गयी थी। राष्ट्रीय निशान में इस समय रहने वाले रंग किस जातीय दृष्टिकोण से आपत्तिजनक हैं, तथा कांग्रेस को कौन सा रंग स्वीकार्य होंगें इसका विचार समिति को करना था। इस समिति के प्रमुख नेता सरदार बल्लभ भाई पटेल, मौलाना कालाम आजाद, सरदार तारा सिंह, पं0 नेहरू, काका कालेलकर, डा0 पटाभि सीतारमैया और डा0 हाडीकर जैसे महान लोग थे यह समिति सात सदस्यों की थी।

समिति के विचार निम्न प्रकार का था–

"राष्ट्रीय ध्वज एक ही रंग का रहे इस पर हम सब एक मत हैं। सब हिन्दी लोगों का एक साथ उल्लेख करना हो तो सबके लिये सर्वाधिक मान्य केसरी रंग है। अन्य रंगों से यह अधिक स्वतन्त्र स्वरूप का रंग है और इस देश को पूर्व परम्परा से अपना सा लगता है।"[12]

ध्वज समिति का निर्णय कांग्रेस स्वीकार करे या नहीं यह एक प्रश्न था इस विचार से लोकनायक बापू जी अणे तथा अन्य अनेक लोगों से मिलकर उन्होंने अन्य सुधारात्मक मन्तब्य दिये। किन्तु अन्त में 'गांधीवाक्यं प्रमाणम् का' अनुभव आया तथा झंडा समिति से वृत से कुछ अनुकूल बदलाव हुआ प्रथम तिरंगी ध्वज एवं रंगों का ऊपर से नीचे तक का क्रम सफेद हरा और लाल था अब केसरी सफेद और हरा हुआ जो आज भी हमारे देश के लिये अग्रता का सूचक है।

26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान लागू हुआ इस संविधान की रचना एवं दृष्टिकोण में राष्ट्र ध्वज का बहुत बड़ा योगदान था। राष्ट्र ध्वज सभी भारतीयों को लोकतन्त्रात्मक मौलिक अधिकार एवं नीति निर्देशक तत्वों को आपस में जोड़कर उनमें लोकतन्त्रीय उत्तरदायित्वों की पराकाष्ठा को उद्घृत करती है।

सर्वप्रथम पं. नेहरू ने संविधान सभा में 13 दिस0 1946 को विभिन्न प्रकार के प्रस्तावों को प्रस्तुत करते हुये इसका प्रबल समर्थन किया, इस प्रस्ताव की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं।

---

[12] ना. हा. पालकर, भगवाध्वज, पृ0 63

(अ) ''भारतीय गणराज्य की राजनीति सत्ता का स्रोत भारतीय जनता हीन जिसमें राष्ट्रीय एकता का संकल्प भी समाहित है।

(ब) प्रजातन्त्र के मार्ग को अधिक प्रभुता सम्पन्न बनाने के लिये भारत की जनता को अपने राष्ट्रीय ध्वज, संविधान, एवं राष्ट्रगीत का सम्मान करना चाहिए।

(स) सम्पूर्ण भारतीय जनता के सामान्य भ्रातत्द की भावना हो और राष्ट्र की सामूहिक समृद्धि के संरक्षण का सतत् प्रयास।

(द) 42वें संसोधन 1977 द्वारा मूल संविधान में नवीन भाग चतुर्थ अंकों को सम्मिलित कर नागरिकों मूल कर्तव्यों का भी उल्लेख किया है ये कल्लर्य समावाद धर्म निरपेक्षता एवं राष्ट्रीय अखण्डता का संरक्षण करती है।''[13]

संविधान सभा में बहुत से राजनीतिक विचारक, चिन्तक, दार्शनिक एवं वक्ता थे, जिन्होंने भारतीय राष्ट्र ध्वज को एक प्रत्येक भारतीय के लिये आदर्श, यथार्थ एवं अस्तित्व पर केन्द्रीयभूत किया। संघ की राष्ट्र ध्वज की कल्पना को स्वयंसेवकों के सम्मुख रखते हुये वे कहा करते कि किसी भी कार्य की नींव त्याग विमल चारित्रय और निरपेक्ष प्रेम के बिना टिक नहीं सकती। अपना ध्वज सन्यासियों को विभूषित करने वाले वस्त्र का है। सन्यासी अपने व्यक्तिगत जीवन की अभिलाषाएं त्यागकर समस्त समाज के लिये अपना जीवन पवित्र कर अपनी सारी शक्ति और तपस्या समाज की उन्नति के लिये ही लगता है। वह त्याग तपस्या हमें जीवन में लानी है व्यक्ति को समष्टि के

[13] शर्मा, जगदग्नि, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संविधान, पृ0 15

जीवन में विलीन कर व्यक्ति निरपेक्ष निःस्वार्थ सेवाभाव से राष्ट्र पुनर्निर्माण करने का दृढ़ संकल्प करना है– यह पाठ देने वाला यह ध्वज ही है।"[14] इसलिये हमें प्रणम्य है। हमारे ऋषि मुनियों को भी वह इसीकरण प्रणम्य रहा। हमारी सभी प्राचीन संस्कृति और परम्पराओं का यही प्रतीक रहा। अवीचीन काल में भी श्री छत्रपति शिवाजी महाराज ने इसी ध्वज को लेकर राष्ट्र पुनर्निर्माण का प्रयास सफलतापूर्वक किया। इन सारी परम्पराओं को याद दिलाने वाला और सारे समाज को प्रोत्साहित करने वाला यही ध्वज है। इसलिये यही हमारा राष्ट्र ध्वज है। संघ की परम्परा में व्यक्ति पूजा का कोई स्थान नहीं है। कोई भी व्यक्ति कितना भी बड़ा क्यों न हो, वह विनाशी तथा स्खलनशील भी है। अपने प्राचीन इतिहास से भी हमें यही पाठ मिलता है। ऋषि विश्वामित्र बड़े तपस्वी थे। किन्तु ऋषि बनने की वैयक्तिक आंकाक्षा ने उन्हें ऋषि वशिष्ठ से मत्सर करने पर उतारू कर दिया। यहां तक कि उनका विनाश किस प्रकार कर दिया जाये, इसका सोच विचार वे करने लगे। भीष्म का सारा धर्मज्ञान भूलकर 'अर्थस्य पुरूषोदासः' कहने के लिये बाध्य हुये। विश्वामित्र तो विषयासवत ही सारी तपस्या छोड़कर मेनका के साथ रत हो गये। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिसने महा जीवन पतित हो गये दिखायी देते हैं।

संघ ने अपने भगवाध्वज को गुरू माना है। संघ का मानना है कि भगवाध्वज हमारी प्राचीन संस्कृति का प्रतीक है। संघ ने तिरंगे के स्थान पर हमेशा भगवाध्वज को ही सर्वोच्च माना है, संघ के कार्यालयों पर तिरंगा झंडा

---

[14] प्रभाकर बलवन्त दाणी, संघ दर्शन पृ० 64

कभी नहीं फहराया जाता है। संघ जो छह उत्सव विजयदशमी, मकर संक्रमण, वर्ष प्रतिपदा हिन्दू साम्राज्यदिनोत्सव, गुरूपूर्णिमा महोत्सव, रक्षा बन्धन प्रमुख मनाता है। उनमें राष्ट्रीय पर्व (15 अगस्त, 26 जनवरी, 2 अक्टूबर) को कोई स्थान नहीं है। संघ के लिये भगवाध्वज सर्वोच्च है न कि राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा।

राष्ट्रभाषा :

प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र की अपनी एक भाषा होती है। राष्ट्रीय स्तर पर देश के प्रत्येक नागरिक को अवश्य पढ़ाई जाती है, विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम भी यही भाषा हुआ करती है जिसे राष्ट्रभाषा कहा जाता है। राज्य सरकारों एवं केन्द्र सरकार का हर कार्यालय, संस्था और संस्थान अपना सभी प्रकार का कामकाज चलाने के लिये एक भाषा का ही व्यवहारिक स्वरूप दिया जाता है। ऐसा करने से उसे पढ़ने लिखने, उससे बातचीत एवं सभी प्रकार का व्यवहार करने में एक गौरव का, आत्मसम्मान का अनुभव किया जाता है। राष्ट्रीय सरकार की देखा देखी आम राष्ट्रजन भी अपने सभी प्रकार के कार्य व्यवहार दिनचर्या सम्बन्धी व्यवहारिकता और व्यापार उसी भाषा में किया करते हैं। राष्ट्र के समस्त साहित्य, विभिन्न लेख, आलोचना, समालोचना एवं टीका टिप्पणी में उसी राष्ट्रभाषा में लिखी जाती है ऐसी भाषा में स्वतः ही हर प्रकार से सम्बद्ध एवं उन्नत हो जाया करती है।

भारत जब अंग्रेजी साम्राज्य से छुटकारा पाने का प्रयास कर रहा था आज की शासक पार्टी कांग्रेस ने तभी बहुमत से यह निर्णय कर लिया था कि स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी होगी। यही कारण रहा कि 1947 में भारत के

स्वतन्त्र होते ही उत्तर से दक्षिण पूरब से पश्चिम तक लोगों ने बड़े जोर–शोर और तल्लीनता के साथ हिन्दी पढ़ना आवश्यक कर दिया था और धीरे–धीरे बौद्धिक, आध्यात्मिक और आत्मिक विकास हुआ तथा भारत का प्रत्येक नागरिक सरकारी और गैर सरकारी कार्यालयों में काम काज की भाषा हिन्दी बनी।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को विकसित करने के लिये विभिन्न प्रकार की संस्थायें इस कार्य में जुटी जैसे– काशी प्रचारणी सभा वाराणसी, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा (नागपुर) दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार समिति आदि तथा प्रत्येक प्रान्त में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की शाखायें और स्वतन्त्रत असित्व भी इसी उद्देश्य से काम करने लगे कि सभी स्थानों पर अधिक से अधिक राष्ट्रभाषा का प्रचार प्रसार हो। उत्तर दक्षिण, पूरब–पश्चिम, पश्चिम–दक्षिण एवं पूरब–उत्तर सभी जगह के लोग आपस में मिले और राष्ट्रभाषा में ही विभिन्न प्रकार की औपचारिक और अनौपचारिक वार्तालाप करे और भाषण वाली इस तरह से स्वतन्त्र भारत में राष्ट्रभाषा का विकास हुआ।

स्वतन्त्रता के पश्चात सन् 1950 में जब देश का अपना संविधान बनकर लागू हुआ, भारत को गणतन्त्र घोषित किया गया और वायसराय के स्थान पर राष्ट्रपति को सर्वोत्तम सत्ता अधिकारी बनाया गया, तब संविधानिक स्तर पर हिन्दी को स्वतन्त्र भारतीय गणतन्त्र की राष्ट्रभाषा, राज्य भाषा या सम्पर्क भाषा के रूप में घोषित किया गया। परन्तु प्रश्न उठता है कि इतना सब होने करने के उपरांत भी हिन्दी भाषा अपना घोषित पद प्राप्त कर सकी।

राष्ट्रभाषा सम्पन्न और उन्नत साहित्यिक परम्पराओं और विधाओं वाली होते हुये भी राष्ट्रभाषा अपना घोषित पद क्यों प्राप्त नहीं कर सकी प्रश्न स्वाभाविक है ? इसके कई कारण है। मुख्य कारण तो यह है कि जिस दिन संविधान घोषित और लागू हुआ उसी दिन से घोषित राज्य भाषा हिन्दी को लागू कर उसके आगे 15 वर्षों, अर्थात् 1965 तक की सीमा अवधि में बांध दी गयी तब तक तकनीकी शब्दावली आदि की दृष्टि से तैयार कर ली गयी। दूसरे विशेषकर दक्षिण राज्य/केरल कर्नाटक, तमिलनाडु आन्ध्रप्रदेश, पांडिचेरी गोवा दम्लदीप एवं दादर नागर हवेली भी हिन्दु को राष्ट्र ओर राज्यभाषा घोषित करने को तैयार हो जाये तब तक अंग्रेजी ही कामकाज की भाषा बनी रहेगी। यही वह पहली गलती है जिस कारण स्वतन्त्रता प्राप्त किये हुये 55 से अधिक वर्ष बीत जाने के बाद भी राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी जहां की तहां खड़ी नहीं बल्कि उससे कहीं अधिक पिछड़ चुकी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के तत्काल बाद राष्ट्रभाषा पढ़ने पढ़ाने का जो उत्साह था वह घोषणा के बाद दो तीन वर्षों में स्वयं ही समाप्त हो गया। उसके स्थान पर महानगर तो क्या कस्बों, देहातों, गाँव तथा पुरवों में अंग्रेजी का वचर्स्व पढ़ने–पढ़ाने का उत्साह बढ़ने लगा, उसका मुख्य कारण प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का हनन और उसके स्थान पर पाश्चात्य संस्कृति का वचर्स्व, कुकुरमुत्तों की तरह क्रिश्चियन मिशनरीय एवं पब्लिक स्कूल इस बात के प्रत्यक्ष गवाह है कि राष्ट्र और राजभाषा कितनी बुरी तहर आज जनमानस से दूरस्थ होती चली जा रही है।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के लिये बस इतना ही हुआ है कि हिन्दी की अस्वाभाविक लगने वाली तकनीकी शब्दावली नष्ट कर दी गयी है, अंग्रेजी से प्यार करने और दफ्तरों में खाली बैठे या फिर दूसरे–दूसरे काम करते रहने को विवश होते हरने वाले हिन्दी कर्मचारियों (लिपिक तथा प्रशासनिक अधिकारियों) की एक फौज खड़ी कर दी गयी जिसे ठीक से भाषानुवाद, लिपि, व्याकरण, तथा मात्राओं का सही ज्ञान नहीं है इसके अतिरिक्त उन्हें अर्थ का अनर्थ अवसर निकालना आता है और सही ढंग से किसी की भी टीका–टिप्पणी नहीं कर सकते उसका मुख्य कारण राज्यभाषा और राष्ट्रभाषा के प्रति उदासीन।

प्रतिवर्ष राज्य सरकारों द्वारा हिन्दी पखवाड़ा, हिन्दी सप्ताह तथा हिन्दी प्रतियोगिता के नाम से कई प्रकार की रस्में पूरी की जाती हैं तथा हिन्दी में काम करने की कई प्रकार की घोषणायें भी होती हैं। घोषणा पट भी लगाये जाते हैं, पर कोई भी काम राष्ट्रभाषा में नहीं होता यदि होता भी है तो उसमें अंग्रेजी का मिश्रण जिसे आम जनमानस नहीं समझ पाता है। सरकारी विभाग को हिन्दी में लिखे गये पत्र का सही उत्तर नहीं मिलता है यदि मिलता भी है तो अंग्रेजी में। संसद या राज्य की विधान सभाओं में यदि कोई हिन्दी में प्रश्न पूछता है तो उत्तर हिन्दी भाषी प्रान्त का मन्त्री, सांसद या विधायक उत्तर अंग्रेजी में ही देता है या विभिन्न प्रकार की प्रान्तीय और क्षेत्रीय भाषाओं में। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी भाषा के साथ यह सभी हो रहा है। यह अपने में सौतेला व्यवहार किया जा रहा है। संसद में दो–दो बार संकल्प पारित होने के बावजूद भी संघलोक सेवा आयोग, प्रान्तीय सेवा आयोग आदि की परीक्षायें

हिन्दी या स्थानीय भाषाओं में देने का अधिकार नहीं है मांग करने वालों पर डंडे बरसाये जाते हैं या उन्हें जेलों में डाल दिया जाता है इस प्रकार से हिन्दी के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाता है।

हिन्दी भारत के विस्तृत क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा है, जिसे देश के लगभग 35 करोड़ व्यक्ति बोलते हैं। यह सरल तथा सुबोध है और इसकी लिपि भी इतनी बोधगम्य है कि थोड़े अभ्यास से ही समझ में आ जाती है फिर भी एक ऐसा वर्ग है, जो हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार नहीं करता। इनमें अधिकांशतः वे व्यक्ति हैं जो अंग्रेजी के अन्धभक्त हैं या प्रान्तीयता के समर्थक हैं। उनका कहना है कि हिन्दी केवल उत्तर भारत तक ही सीमित है। उनके अनुसार यदि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बना दिया गया है तो अन्य प्रान्तीय भाषाएं महत्वहीन हो जायेंगी। इस वर्ग की धारणा है कि हिन्दी का ज्ञान उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्रदान नहीं कर सकता इस दृष्टि से इनका कहना है कि अंग्रेजी ही विश्व की सम्पर्क भाषा है, अतः यही राष्ट्रभाषा हो सकती है।

राष्ट्र श्रद्धा के प्रतीकों सब भाषा की मानरक्षा समाज और राष्ट्र के लिये अधिक गौरवपूर्ण है किन्तु हुआ कुछ और ही धीरे–धीरे वे सभी प्रनीक और भाषा विस्मृति के अन्धकार में विलीन होते चले गये। जनमानस में उनका अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया।

संघ की स्थापना के पश्चात संघ में नियमित रूप से लाठी की शिक्षा दिनांक 28 मई 1926 से आरम्भ हुई। श्री अण्णा सोहणी ने यह काम बड़ी सफलता और मेहनत के साथ किया। अंग्रेजी की आज्ञाओं सामान्यतः प्रचलित

होते हुये भी उसे स्वीकार न करते हुये उसे स्वभाषा एवं राष्ट्रभाषा में आज्ञायें बनायी इसके बनाने में मराठी, संस्कृत तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी का अधार लिया था। जिस समय घर और बाहर चारों ओर अंग्रेजी भाषा का बोलबाला था उसक समय संघ के कार्यकर्त्ताओं ने संस्कृत और राष्टभाषा का उपयोग किया जो उस समय अपना गौरव समझते थे। संघ की समस्त आज्ञाओं को स्वभाषाओं और राष्ट्रभाषा में तैयार करने में डा0 हेडगेवार का विशेष योगदान रहा।

"डाक्टर जी का स्वाभाव, व्यवहार की मर्यादाओं को लांघकर कभी शेखचिल्ली के समान 'अति' या कल्पना जगत में विचरने का नहीं था। अतः शाखा के कार्यक्रम में 'सावधान' 'दक्ष' 'आरम्भ' आदि आज्ञाओं का प्रयोग करते हुये भी सैनिक शिक्षण के लिये आपद्धर्म के नाते उन्हें अंग्रेजी आज्ञाओं का प्रयोग करने में भी कोई झिझक नहीं हुई। हवा देखकर नौका के पाले को उस दिशा में मोड़ने का कौशल्य उनके पास था किन्तु गन्तव्य का निर्धारण हवा के रूख के आधार पर नहीं किया जा सकता यह भी वे भली–भाँति जानते थे।[15]

संघ ने कार्यक्रमों के अन्त में प्रार्थना शुरू की थी उसमें मराठी तथा हिन्दी का समन्वय था। मराठी पद कहां से लिया गया इसे सम्बन्ध में कई प्रकार के विवाद हैं, परन्तु बताते हैं कि कई प्राथमिक पाठशालाओं में वहाँ प्रार्थनाओं के रूप में वहां गाना गाया जाता है। हिन्दी प्रार्थना आर्य समाज में प्रचलित कुछ रूपान्तरित करके ली गयी थी। यह प्रार्थना धीरे–धीरे प्रशिक्षित तरणों के द्वारा स्वयंसेवकों को भिन्न–भिन्न पथिक बनाकर लाठी और शिक्षा का

---

[15] ना. हा. पालकर, डा0 हेडगेवार चरित्र, पृ0 179

ज्ञान दिया और इस प्रार्थना ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता को हिन्दुत्व से जोड़ा और जिसने हिन्दुओं की कार्य पद्धति के विचारों को स्फूर्तिवान बनाया। समय के परिवर्तन के साथ–साथ संघ की दैनन्दिनी प्रार्थना आज देववाणी संस्कृत में है। जिससे प्रत्येक संघ का कार्यकर्ता हिन्दुत्व के अस्तित्व को बनाये रखने के लिये अपने जीवन में उतारता है और उसे राष्ट्रीयता की संस्कार निर्मिति का महत्वपूर्ण साधन बनाया।

राष्ट्रभाषा विकास और उसका समायोजन करने में संघ का विशिष्ट योगदान है आज संघ द्वारा प्रचारित कई प्रकार के लेख संपादकीय लेख, भेंटवार्ता, अधिवेशन, अभियोग, विचार मन्थन, कार्यविस्तार, सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं का पराभव हस्तलेखन, परिशिष्ट एवं अनुक्रम सूची राष्ट्रभाषा में लिखे जाते हैं और उन्हें समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं तथा मीडिया के माध्यम से आम जनमानस तक पहुंचाया जाता है।

संघ की कल्पना हिन्दुस्तान के सैकड़ों वर्ष के इतिहास में सामिष्टता को प्रदर्शित करती है जिसमें कई भाषाओं के ध्वंसाशेष है और भाषा तथा राष्ट्र के पुनर्निमाण के प्रति प्रयत्न भी समाहित हैं। विध्वंस में भी सृजन का सामर्थ रखने वाले राष्ट्र का चैतन्य जाग उठता है जब आम जनमानस राष्ट्रभाषा और राष्ट्रहित से प्रेम करता है। संघ के द्वितीय सरसंघचालक मा. स. गोलवलकर (गुरूजी) का मानना था कि सम्पूर्ण देश की एक भाषा की समस्या के निराकरण के लिये जब तक संस्कृत स्थान नहीं ले लेती सुविधा हेतु हमें हिन्दी को प्रधानता देनी पड़ेगी। स्वाभाविक रूप में हमें हिन्दी के उस स्वरूप की प्राधान्य

देंगे, जिसका उद्‌गम संस्कृत से है एवं जो विज्ञान तथा शिल्प विषयक परिभाषाओं के ज्ञान के क्षेत्रों में अपनी भावी विकास के लिये संस्कृत से ही पोषण प्राप्त करता है।

इसका यह अर्थ नहीं कि केवल हिन्दी ही राष्ट्रभाषा अथवा प्राचीनतम भाषा है अथवा अन्य सभी भाषाओं से अधिक समृद्ध है। वास्तव में अत्यन्त समृद्ध एवं प्राचीनतम भाषा है। किन्तु हिन्दी हमारे बहुत बड़े जनसमुदाय की बोलने की भाषा बन चुकी है तथा सीखने एवं बोलने में हमारी अन्य सभी भाषाओं की अपेक्षा सरल है। यदि हम काशी अथवा प्रयाग कुम्भ या अन्य किसी मेले के अवसर पर जाते हैं जहां सुदूर–उत्तर, दक्षिण एवं पूर्व पश्चिम से पवित्र गंगा जी में स्नान के लिये एकत्रित होते हैं तो यह विशाल जनसमुदाय केवल हिन्दी में ही अपने भाव प्रकट कर लेता है, चाहे उनकी वह हिन्दी कितनी ही अपरिष्कृत क्यों न हो।[16]

अतएव राष्ट्रीय एवं आत्सम्मान के लिये हमें हिन्दी स्वीकार करना चाहिए तथा 'हिन्दी साम्यवाद' या उत्तर का शासन आदि उद्‌घोषों में हमें नहीं बह जाना चाहिए। वास्तव में बंगाली मराठी तथा गुजराती में अंग्रेजी शासन के होते हुए भी महान प्रगति की है। उनमे ऐसी उत्तम रचनाएं हुई हैं कि संसार के महानतम विद्वानों ने उनकी मुक्तकण्ठ से प्रसंशा की है। कोई भी इस विचार का सहन नहीं करेगा कि केवल एक भाषा रखने के लिये हमारे राष्ट्र की अन्य

---

[16] मा. सा. गोलवलकर, विचार नवनीत पृ0 114

सुन्दर भाषाएं नष्ट कर दी जाये जो विगत अनेक शताब्दियों से हमारे राष्ट्र की आत्मा की इतनी योग्यतापूर्वक अभिव्यक्ति करती आ रही है।

अध्याय- चतुर्थ
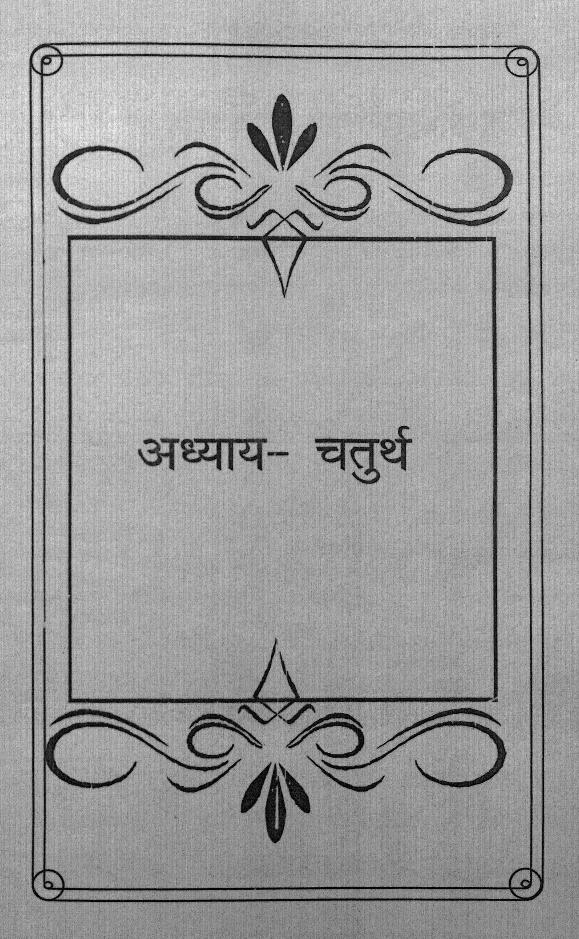
संघ का सिद्धान्त और व्यवहार

उन्नीसवीं शताब्दी में सामाजिक–सांस्कृतिक सुधारों के द्वारा हिन्दू समाज एवं धर्म को सुदृढ़ एवं संगठित करने का प्रयास किया गया था। राजा राममोहन राय का ब्रह्म समाज (1828), स्वामी दयानन्द सरस्वती का आर्य समाज (1875) और स्वामी विवेकानन्द का रामकृष्ण मिशन ऐसे दर्जनों संगठनों में से कुछ थे। मूलतः हिन्दू समाज सुधार की प्रक्रिया से जुड़े रहने के कारण इन संगठनों एवं धर्म सुधारकों ने औपनिवेशिक शासन के दौरान तत्कालीन राजनीतिक परिवेश एवं राष्ट्रीय चेतना को भी प्रभावित किया। हिन्दुओं से सम्बन्धित कोई भी आन्दोलन एकांगी इसलिये नहीं रह सकता है कि आधुनिक राष्ट्र–राज्य से ऐतिहासिक राष्ट्रीय समुदाय का सम्बन्ध सिर्फ नागरिक के रूप में नहीं है, बल्कि भारतीय राष्ट्र जिस सभ्यता एवं संस्कृति पर आधारित है, जिस इहिास की नींव पर खड़ा है और जो सांस्कृतिक एवं वैश्विक चेतना को बौद्धिक रूप से अंगीकार करता है, उन सबके विकास की प्रक्रिया से भी। भारतीय राष्ट्र की अन्य राष्ट्रों से भिन्नता भी इसी रूप में है। यह किसी सभ्यता अथवा सांस्कृतिक चेतना का हिस्सा न होकर अपनी सभ्यता और संस्कृति से एकात्म रूप से जुड़ा हुआ है।

"भारतीय धर्म, समाज एवं संस्कृति का पुर्नजागरण काल हिन्दू पुनर्जागरण काल था क्योंकि धर्म सुधार आन्दोलनों का प्रभाव सबसे अधिक हिन्दुओं पर ही हुआ। अन्य संप्रदायों में धर्म सुधार प्रक्रिया या तो बहुत धीमी थी

था शुरू नही हो पायी थी। तभी तो राजा राममोहन राय को जिन्होंने हिन्दू समाज एवं धर्म को अपने सुधार कार्यक्रमों की प्रयोगशाला बनाया था। तभी उन्हे **भारतीय पुनर्जागरण का पिता** कहा जाता है। इसलिये डा0 हेडगेवार का यह अधिष्ठान का हिंदू संगठन का कार्य राष्ट्रीय कार्य है, राजा राममोहन राय की परंपरा का घोतक है।'[1] डा0 हेडगेवार का स्पष्ट मत था कि हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है। इसमें किसी धर्म एवं सम्प्रदाय को छोड़ने की अवधारणा न होकर सनातन सांस्कृतिक चेतना के आधार पर सकारात्मक रूप से राष्ट्रीयता को परिभाषित करने का बोध होता है। उन्होंने संघ की स्थापना के उद्देश्य को सामने रखते हुये कहा कि स्वप्रेरणा से एवं स्वयंस्फूर्ति से राष्ट्रसेवा का बीड़ा उठाने वाले व्यक्तियों का केवल राष्ट्र कार्यार्थ निर्मित संघ ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है।''[2]

डा0 हेडगेवार ने हिन्दू समाज संस्कृति एवं धर्म को सभ्यता के प्रवाह का अंग माना है। अतः भारत की सभ्यता और राष्ट्र परस्पर एक दूसरे पर निर्भर है। राष्ट्र का उद्‌भव सभ्यता की कोरव से हुआ और सभ्यता का प्रवाह राष्ट्र के संबल से होता रहा है। अतः हिन्दू राष्ट्र चिरंतन काल की ऐतिहासिक चेतना को सांस्कृतिक रूप से प्रतिबिंवित करने वाला एक दर्पण है। डा0 हेडगेवार का मानना था कि ''संघ कार्य तथा उसकी विचारधारा हमारा कोई नया अविष्कार नहीं है। हमारा परम पवित्र हिन्दू धर्म हमारी पुरातन संस्कृति, हमारा स्वयंसिद्ध

---

[1] राकेश सिन्हा, डा0 केशव बलिराम हेडगेवार, पृ0 75
[2] वही पृष्ठ–76

हिन्दू राष्ट्र तथा अनादि काल से चला आया परम पवित्र भगवाध्वज–य सभी बातें संघ ने पूर्ववत् सबके सामने रखी है। उपर्युक्त बातों में नव चैतन्य का संचार करने के लिये परिस्थिति के अनुकूल जो नई कार्यप्रणाली संघ को आवश्यक प्रतीत होगी संघ उसे अंगीकार करेगा।"

डा0 हेडगेवार का बल दो बातों पर था– प्रथमतः हिन्दू समाज की राजनीति एवं सामाजिक स्तरों पर दुर्बल स्थिति का दोष बाह्य कारकों को देना सच्चाई से मुंह फेरना है, तथा द्वितीयतः प्रभुत्व आंतरिक शक्ति और इच्छाशक्ति से स्थापित होती है। इसका निदान है– हिन्दुओं के बीच अनवरत राष्ट्रीयता के भाव से संगठन करना। दौर्बल्य का कारण हिन्दू समाज का विभेदकारी, संकीर्ण भावनाओं से पीड़ित होना था। अतः संगठन का पहला दायित्व राष्ट्रीयता की चेतना के आधार पर हिन्दुओं में उनके ऐतिहासिक समुदाय की भूमिका को जो उनके अवचेतन मन में विद्यमान है, जाग्रत करना है। उनकी दृष्टि में व्यापकता थी और सर्वग्राह्यता भी।

संघ का मूलमंत्र वैचारिक क्रियाशीलता है। डा0 हेडगेवार ने कहा था कि यह ठीक तरह से समझ लो कि संघ न तो व्यायामशाला है, न क्लब है, न मिलिटरी स्कूल ही। संघ है हिन्दुओं का राष्ट्रवादी संगठन जिसे फौलाद से भी अधिक मजबूत होना चाहिये।"[3] डा0 हेडगेवार ने संघ में लिखित सदस्यता अथवा सदस्यता शुल्क जैसी परम्परागत संगठन शैली को लागू नहीं किया।

---

[3] वही पृष्ठ 83

उपस्थिति एवं सदस्यता को स्वैच्छिक बनाया गया। राष्ट्र के प्रति भावनात्मक प्रतिबद्धता एवं ध्येय ही सदस्यों के बीच एकता का आधार है। शाखा व्यायामशाला अथवा शारीरिक प्रशिक्षण केन्द्र न होकर वैचारिक आन्दोलन का नियमित केन्द्र है। स्वयंसेवकों को प्रशिक्षण देने तथा उनकी प्रतिबद्धता को और मजबूत करने के लिये 'संघ शिक्षा वर्ग' की योजना लागू की गयी, जिसे 'अधिकारी प्रशिक्षण शिविर' भी कहा जाता है। ऐसे प्रशिक्षित स्वयंसेवकों के संगठन विस्तार की अपेक्षा रहती है। ओ0 टी0 सी0 Officer Traing Centre के नाम से प्रचलित इस प्रशिक्षण की शुरूआत 1929 से की गयी। प्रशिक्षित स्वयंसेवकों को जो अपना समय संघ कार्य के विस्तार के लिये देते ही ऐसे स्वयंसेवकों को 'प्रचारक' की संज्ञा दी गयी। संगठन की संचरना में 'प्रचारक' ध्रुव की तरह कार्य करता है। प्रचारक अविवाहित रहता है एवं अपना पूरा समय संघ के प्रचार प्रसार में लाता है।

जब संघ का स्वयंसेवक प्रशिक्षण (ओ0 टी0 सी0) में जाता है तो उसे उक्त प्रतिज्ञा लेनी होती है–

प्रतिज्ञा:–

"सर्वशक्तिमान श्री परमेश्वर तथा अपने पूर्वजो को स्मरण कर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ–

कि अपने हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू समाज

को संरक्षण कर हिन्दू राष्ट्र के सर्वांगीण उन्नति करने

के लिये मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का घटक बना हूँ।

संघ कार्य मैं प्रमाणिकता से निस्वार्थभाव, बुद्धि से तथा

तन मन धन पूर्वक करूंगा तथा इस व्रत का मैं आजन्य

पालन कूरूंगा।

भारत माता की जय।"[4]

संघ में संगठन दो समानांतर स्तरों पर काम करता है–औपचारिक एवं अनौपचारिक। औपचारिक स्तर पर संगठन की संरचना होती है, जो मुख्य शिक्षक से सरसंचालक तक लंबी श्रृखला के रूप में होती है। अनौपचारिक स्तर पर औपचारिक पदों से बाहर रहकर संगठन कार्यो में प्रबल भूमिका निभाने वाले स्वयंसेवक होते हैं। इसी औपचारिक अनौपचारिक योजना के कारण ही एक व्यक्ति उच्च्व पद पर कार्य करने के बाद अपने कनिष्ठ व्यक्ति की तुलना में पदहीन होकर लघु दायित्व वाले पद पर रहकर कार्य करता है। अतः अन्य संगठनों की तरह संघ में शक्ति का केन्द्र अपरिभाषित एवं अदृश्य रहता है। संघ का प्रत्येक सदस्य बुनियादी तौर पर स्वयंसेवक होता है।

संघ का सिद्धान्त एकचालकानुवर्ती है। एकचालाकानुवर्ती संघ को परम्परागत पाश्चात्य परम्परा के संगठनों से अलग स्वरूप प्रदान करता है। यह औपचारिक एवं अनौपचारिक संरचनाओं का सम्मिश्रण है। संगठन में व्यक्ति का महत्व उसके द्वारा अर्जित नैतिक शक्ति से होता है। यह सिद्धान्त इस मान्यता

---

[4] मा. गो. बैद्य, सुगम संघ, पृ0 45

पर आधारित है कि संगठन में पारिवारिक परिवेश होता है जो एक कुटुंब के समान होता है।"[5]

इसी सिद्धान्त के तहत नौ प्रमुख (विश्वनाथ केलकर, तात्याजी कालीकर, अप्पाजी जोशी, बापूराव मुठाल, बाबा साहब कोलते, बालाजी हुद्दार, कृष्णराव मोहरीर, मार्तण्डराव जोग एवं देवईकर) कार्यकर्ताओं ने अन्य स्वयंसेवकों से विचार विमर्श करके सरसंघचालक के पद का निर्माण किया। सरसंघचालक के पद को अधिकतम गरिमा प्राप्त है एवं उन्हें **'पथ प्रदर्शक' दार्शनिकमित्र** की भूमिका ये स्वीकार्य किया गया। **सरसंघचालक** परिवार के मुखिया की तरह होता है।

डा0 हेडगेवार ने अपनी भूमिका को संघ के सामने रखकर अपने लोकतांत्रिक चरित्र, व्यवहार एवं आदर्श को संघ के रूप में स्थापित कर दिया। 1933 में उन्होंने निम्न घोषणायें की थीं।

- इस राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जन्मदाता अथवा संस्थापक मैं न होकर आप सब हैं– यह मैं भलीभाँति जानता हूँ।
- आपके द्वारा स्थापित संघ का, आपकी इच्छा के अनुसार आगे भी करता रहूँगा तथा ऐसा करते समय किसी भी प्रकार के संकट अथवा मान–अपमान की कतई चिंता नहीं करूँगा।

---

[5] राकेश सिन्हा, डा0 केशव बलिराम हेडगेवार, पृष्ठ 85

– आपको जब भी प्रतीत हो कि मेरी अयोग्यता के कारण संघ की क्षति हो रही है तो आप मेरे स्थान पर दूसरे योग्य व्यक्ति को प्रतिष्ठित करने के लिये स्वतंत्र है।

– आपकी इच्छा एवं आज्ञा से जितनी सहर्षता के साथ मैंने इस पर कार्य किया है, इतने ही आनन्द से आपके द्वारा चुने हुए नये सरसंघचालक के हाथ सभी अधिकार सूत्र समर्पित करके उसी क्षण से उसके विश्वसत स्वयंसेवक के रूप में कार्य करता रहूँगा।

– मेरे लिये अपने व्यक्तित्व के मायने नहीं है, संघ कार्य का ही वास्तविक अर्थ में महत्व है। अतः संघ के हित में कोई भी कार्य करने में मैं पीछे नहीं रहूँगा।

– संघ की आज्ञा का पालन स्वयंसेवकों द्वारा बिना किसी अगर–मगर के होना अनुशासन एवं कार्य प्रगति के लिये आवश्यक है। 'नाक से भारी नथ' इस स्थिति को संघ कभी उत्पन्न नहीं होने देगा। यही संघ कार्य का रहस्य है।

– अतः प्रत्येक स्वयंसेवक स्वेच्छा से आज्ञापालन करके दूसरे स्वयंसेवकों को ऐसा करने के लिये प्रेरित करे स्वयंसेवको का कर्तव्य है।

डा0 हेडगेवार के क्रिया–कलापों ने एकचालाकानुवर्तीत्व Following One Leader[6] को आदर्श संगठनात्मक सिद्धान्त बना दिया। जिस

---

[6] एकचालानुवर्तीत्व के बारे में एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात संघ के चिन्तक गोविन्दाचार्य ने दिल्ली में लिए गये एक साक्षात्कार में बताया कि गुरू जी गोलवलकर के मरणोपरान्त हुयी पहली सभा में

प्रकार ब्रिटेन में लिखित संविधान की जगह परिपाटियों का महत्व है, वैसे ही संघ संगठनात्मक परम्पराओं एवं परिपाटियों के आधार पर चलता है। सरसंघचालक RSS Chief पद के निर्माण के बाद सरकार्यवाह (महासचिव) के पद का निर्माण हुआ। संघ में दो उच्च स्तरीय संस्थाओं–अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा एवं अखिल भारतीय कार्यकारी मंडल–में नीतियों एवं कार्यक्रमों को निर्धारित करने का काम होता है।

डा0 हेडगेवार ने 1940 में गोलवलकर को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। तब से निवर्तमान सरसंघचालक अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति इसी परम्परा के अनुसार करते हैं। बनसंघ में धन संगठन के स्तर पर ही एकत्र किया जाता है। वर्ष में एक बार स्वयंसेवक 'गुरूपूर्णिमा' के दिन संघ स्थान पर ध्वज को दक्षिणा के रूप में स्वेच्छा से धन अर्पित करते हैं। इस "गुरूदक्षिणा" का नाम दिया गया है। यह परम्परा 1928 से चल रही है।

डा0 हेडगेवार ने संघ एवं राष्ट्र को समानार्थक बनाने का जो उद्देश्य रखा, उसका आधार संगठन के कार्य का एकमेव राष्ट्रीय भाव होना था। तभी वह कहा करते थे कि 'संघ कार्य भी ईश्वरी कार्य है एवं संगठन का काम 'ईश्वरीय' है। शुद्ध एवं पवित्र भाव से बना एवं कार्यरत संगठन ही सांस्कृतिक

नव सरसंघचालक बालासाहब देवरस ने कहा कि एकचालकानुवर्तीत्व शब्द का प्रयोग हेडगवार और गोलवलकर के लिए उचित था। मेरे लिए इस शब्द का प्रयोग उचित नहीं होगा क्योंकि मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ। उसके प्श्चात इस शब्द का प्रयोग बहुत ही सोच समझ कर ही किया जाता है।

राष्ट्रवाद का आधार हो सकता है। संघ व्यक्ति में राष्ट्रीय चेतना एव राष्ट्र में सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न करने का साधन मात्र है।

डा0 हेडगेवार की मृत्यु के पश्चात् 20 जून 1943 को संघ के द्वितीय सरसंघचालक माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर बने। संगठन का विस्तार विशेष तौर से उन्हीं के कार्यकाल में हुआ। गोलवलकर ने **"बंच आफ थॉटस" तथा "वी. आर. अवरनेश हुड़ डिफाइड़"** जैसी पुस्तकों की रचना कर सिद्धान्त, विचार, और आदर्श प्रस्तुत किये– गोलवलकर व्यक्तिगत प्रशंसा और प्रचार–प्रसार से अपने को दूर रखते थे। गोलवलकर ने मृत्यु के पूर्व यह आदेश लिखकर छोड़ा था, "मेरा कोई स्मारक न बनाया जाये, मुझसे जोड़कर कोई दिवस न मनाया जाये। मैंने अपना श्राद्ध भी स्वयं ही कर छोड़ा है इसलिये मेरा श्राद्ध मनाने के विचार को भी मन में न लाया जाये।"[7]

संघ के द्वितीय सरसंघचालक मा. स. गोलवलकर पर संघ को राजनैतिक दृष्टि से कांग्रेस में शामिल होने के लिये दबाव भी डाला गया। सरदार पटेल चाहते थे कि संघ जैसा कट्टर राष्ट्रवादी एवं राष्ट्रभक्त संगठन कांग्रेस में शामिल होकर उनके हाथ मजबूत करे। एक समय तो पटेल समर्थकों ने नेहरू की विदेश यात्रा के समय कांग्रेस कार्यसमिति में प्रस्ताव पारित कर संघ के स्वयंसेवको के लिये कांग्रेस के द्वारा खोल दिये किन्तु नेहरू के वापस लौटते ही उन्हें बन्द कर दिया गया।

---

[7] डा0 भाई महावीर पाञ्चजन्य (तपोमय, तेजोमय.....) पृ0 49

व्यवहार :

संघ ने कार्यकर्ता के आचरण और व्यवहार की शुचिता पर बहुत ध्यान दिया है। संघ का मानना है कि संघ विचारधारा का प्रचार–प्रसार एवं समाज के अन्दर इसकी गहरी पैठ बनाने का माध्यम संघ का स्वयंसेवक है। अतः स्वयंसेवक का आचरण एवं व्यवहार अत्यन्त शुद्ध एवं अपनत्वपूर्ण होना चाहिये। व्यवहार की दृष्टि से स्वयंसेवको को **'चूल्हे'** तक का सम्बन्ध स्थापित करने की प्रेरणा दी जाती है। चूल्हे तक के सम्बन्ध का अर्थयानि परिवार के अंग रूप में कार्य करना। संघ का मानना है कि आचरण की शुद्धता–व्यक्ति के गुणों को प्रभावित करती है।

डा0 हेडगेवार का कहना है कि **"जो बोला वह करके दिखायेंगे"** यह संघ की आकांक्षा है। अपने सिद्धान्त और व्यवहार में हम स्वाभाविक सम्बन्ध मानते हैं। सिद्धान्त और व्यवहार अर्थात् विचार और आचार, वचन और कृति– इन दोनों का सुन्दर समन्वय करने की प्रतिज्ञा संघ ने ली है और उसे निभाने का उत्तरदायित्व संघ के स्वयंसेवको का है। हम जो कुछ बोलते है वह व्यवहार में होना चाहिये। अपने अन्तःकरण में हम यह विश्वास रखे कि संघ का कोई भी सिद्धान्त अव्यवहार्य कभी नहीं होगा।[8]

हेडगेवार का मानना था कि स्वयंसेवक के अच्छे या बुरे व्यवहार पर ही संघ की उन्नति अथवा अवनति अवलम्बित है। स्वयंसेवक की प्रशंसा में संघ का

[8] डा0 हेडगेवार संघ तत्व और व्यवहार पृ0 28

और उसके उत्कर्ष में संघ का उत्कर्ष सन्निहित है। "स्वयंसेवक सदैव अपने अन्तःकरण में संघ–निष्ठा जाग्रत रखकर हम व्यवहार करें तो यह मनोकृति स्वाभाविक रूप से हमारे अन्दर निर्माण होगी अपना तन मन धन सब कुछ संघ का ही है।"[7]

संघ के नेताओं का स्वयंसेवकों से आग्रह रहता है कि हमें ऐसा व्यवहार करना चाहिये कि हमारे प्रति प्रत्येक के हृदय में एक आदर, आत्मीयता, प्रेम श्रद्धा और विश्वास का भाव उत्पन्न हो। प्रत्येक स्वयंसेवक आदर्श बनने का प्रयत्न करे। प्रत्येक स्वयंसेवक इस दृढ़ निश्चय से परिपूर्ण हो कि मैं अतः स्फूर्ति से राष्ट्र की सेवा करूँगा। राष्ट्र की सेवा से मेरा पैर कभी पीछे नहीं हटेगा। डा0 हेडगेवार और गोलवलकर ने संघ के कार्यकर्ताओं के संगठन के प्रति त्याग, समपर्ण और संयमी धैर्यवान बनने की शिक्षा दी थी। संघ का सिद्धान्त है कि संघ की राजनीति से दूर रहेगा। लेकिन वर्तमान में संघ ने अपनी राजनीतिक शाखा भाजपा के माध्यम से संघ का दायरा बढ़ाया है।

संघ के कार्यकर्ता अब न तो संयमी रहे और न धैर्यवान। संघ के द्वारा राजनीति क्षेत्र में भेजे गये कई कार्यकर्ता भाजपा का दामन छोड़ उसकी विरोधी पार्टी बहुजन समाज पार्टी का दामन थाम सत्ता की मलाई खा रहे हैं। इसको इस अंकतालिका के माध्यम से देखा जा सकता है।

संध (भाजपा) से बसपा में जाने वाले प्रमुख कार्यकर्ता

1. राकेशधर त्रिपाठी — मंत्री
2. फागू चौहान — मंत्री
3. दद्दन मिश्रा — मंत्री
4. हरिओम उपाध्याय — मंत्री
5. बादशाह सिंह — मंत्री
6. रंगनाथ मिश्र — मंत्री
7. अनंत कुमार मिश्र — मंत्री
8. रतनलाल अहिरवार— मंत्री
9. पं. रामकुमार तिवारी — विधायक
10. राकेश गोस्वामी — विधायक
11. जमुना निषाद — विधायक
12. महेश चन्द्र त्रिवेदी — विधायक
13. पुरूषोत्तम नरेश द्विवेदी — विधायक

इसी के साथ संघ नेताओं की संघ प्रचारक से आशा रहती है कि प्रचारक का तन मन धन सब कुछ संघ का है संघ का प्रचारक संघ के विस्तार में सब कुछ समर्पण कर देगा लेकिन व्यवहार में ये सब बातें अब बीते जमाने की हो गयी है। कई संघ के प्रचारक संघ छोड़कर अपने परिवार और अपनी

चिन्ता में व्यस्त हो गये है। इसको भी एक अन्य तालिका के माध्यम से देखा जा सकता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से वापस होने वाले प्रचारकों की सूची

1. अरविन्द त्रिपाठी – प्रान्त शारीरिक प्रमुख – अवध प्रान्त

2. सुशील – विभाग प्रचारक – बांदा

3. 4. सर्वदेव – प्रान्त शारीरिक प्रमुख – गोरक्षपान्त

5. विजय कौशल – सह विभाग प्रचारक – देहरादून

6. अतुल कृष्ण भरद्वाज – जिला प्रचारक – मेरठ प्रान्त

7. यतीन्द्र नाथ सरस्वती – जिला प्रचारक –

8. उमाकान्त -- विभाग प्रचारक – गोरक्ष प्रान्त

9. शारदा प्रसाद – विभाग प्रचारक – आजमगढ़

10. आशीष गौतम – जिला प्रचाकर – गोरखपुर

11. राजेश सिंह – धर्म जागरण संगठन मंत्री – हरिद्वार

12. अजीत – जिला प्रचारक – गोरक्ष

13. अरविन्द – जिला प्रचाकर – आजमगढ़

14. समरनाथ – विभाग प्रचारक – गोंडा

15. रामनरेश मिश्र – विभाग प्रचारक – चित्रकूट

16. शशिकान्त – जिला प्रचारक – कन्नौज

17. रामानन्द – जिला प्रचारक – उरई

18. मुकेश – विभाग प्रचारक -- मेरठ प्रान्त

19. धीरेन्द्र पाण्डेय	– जिला प्रचारक	– गोरक्ष प्रान्त
20. दुर्गेश जी	– जिला प्रचारक	– झांसी
21. राधेश्याम चौरसिया	– जिला प्रचारक	– गोरखपुर
22. रामकृष्ण गोस्वामी	– जिला प्रचारक	– महोबा
23. कुलभूषण	– जिला प्रचारक	– बाराबंकी
24. श्रीपाल	– जिला प्रचारक	– बांदा
25. श्याम जी	– जिला प्रचारक	– उरई
26 प्रभात त्रिपाठी –	विभाग प्रचारक	– सीतापुर

इस सम्बन्ध में एक बात और चौकाने वाली है कि जहां संघ राजनीति से दूर रहने की बात करता है वही भाजपा सरकार के बनने पर संघ के लोगों ने अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए एनजीओ बनाकर औने–पौने दामों में कीमती जमीन आवंटित करवायी जिसका विवरण निम्न प्रकार है।

1. "**समर्थ शिक्षा समिति (एमएसएस)** को लालपत नगर में 0७8135 एकड़ भूमि फरवरी, 2000 में आवंटित की गयी।
2. **समर्थ शिक्षा समिति** को मेहरौली–बदरपुर मार्ग पर पुष्प विहार में मार्च, 2001 को आवंटित हुई।
3. **समर्थ शिक्षा समिति** को वसंत विहार में भी अप्रैल 2001 को भी 1,574 एकड़ भूमि आवंटित की गयी। अशोक पाल समिति के अध्यक्ष, जय प्रकाश गुप्ता संस्थापक और के0 सी0 बथला महासचिव है।

4. **विश्व हिन्दू परिषद** को आर. के. पुरम, सेक्टर –6 में 3,753 वर्ग गज भूमि जुलाई 1999 में आवंटित हुई।

5. **वैश्य अग्रवाल एजूकेशन सोसाइटी**– को जुलाई, 2001 में मेहरौली–बदरपुर रोड़ स्थित सेक्टर–6 में 1.98 एकड़ भूमि आवंटित हुई। और राज्यमंत्री विजय गोपाल संस्था के महासचिव तथा श्रीराम कालेज आफ कामर्स के प्राध्यापक सी. बी. गुप्ता अध्यक्ष है। संस्था का स्कूल पीतमपुरा में है।

6. **आग्रोहा विकास ट्रस्ट** के नाम मई, 2002 में 850 वर्ग मीटर जमीन माता सुंदरी मार्ग पर आवटित की गयी। ट्रस्ट के सदस्यों में विजय गोपाल के पिता चरतीलाल गोयल और पत्नी प्रीति गोयल भी शामिल है।

7. **अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद** के प्रोजेक्ट "स्टूडेन्स एक्सपीरियंस इन इंटरस्टेट लिविग' के लिये राउज एवेन्यु क्षेत्र में दिसम्बर 2001 में 1428 वर्ग मीटर भूमि उपलब्ध करायी गयी। डा0 बलवंत गौतम प्रोजेक्ट के प्रदेश अध्यक्ष और जतिन मोहन्ती प्रदेश सचिव है। इस योजना का उद्देश्य उत्तर पूर्वी राज्यों के लोगों को दिल्ली लाकर शिक्षित कर उन्हें मुख्यधारा से जोड़ना है। परिषद का मुख्यालय गुवाहाटी में है और अब एक केन्द्र दिल्ली में स्थापित होगा।

8. **स्वदेशी जागरण फाउंडेशन** को महेराली–बदरपुर रोड पर 1,209.6 वर्ग गज जमीन आवंटित हुई। पूर्व सांसद एवं फाउंडेशन के अध्यक्ष महेश

चन्द्र शर्मा सहित फाउंडैशन के अन्य सदस्य सीताराम भरद्वाज और मुरलीधर राव भी संघ कार्यकर्ता है। यह संस्था बुनियादी तौर पर "स्वदेशी जागरण मंच" का हिस्सा है। मंच के लिये शोध एवं अनुसंधान द्वारा प्रचार सामग्री जुटाना फाउंडैशन का जिम्मा है। इस जमीन पर शोध प्रकोष्ठ बनाया जाएगा।

9. **मुखर्जी आदर्श शिक्षा समिति** के नाम 20 जुलाई 2001 को 1,300.8 वर्ग गज भूमि दक्षिण दिल्ली के व्यावसायिक क्षेत्र सरोजनी नगर में आवंटित की गयी। इस भूमि के लिये समिति 40 साल से कोशिश कर रही थी।

10. **चाइल्ड एजूकेशन सोसाइटी** को वर्ष 1998–99 में द्वारका में 4 एकड़ यानी 19,360 गज भूमि आवंटित की गयी। संस्था के संस्थापक लाला हंसराज थे। उनके पुत्र पूर्व परिवहन मंत्री राजेन्द्र गुप्ता सोसाइटी के महासचिव है। सोसाइटी के तहत बाल भारती विद्यालयों की 6 शाखायें दिल्ली के विभिन्न इलाकों में सक्रिय है।

11. **लघु उद्योग भारती** को 571.2 वर्ग गज भूमि कोटला रोड़ पर आवंटित की गयी। यह आवंटन जुलाई 2000 में हुआ। संस्था की सूची में संघ के सरसंचालक के. एस. सुदर्शन बतौर 'मार्ग दर्शक' है। इसके अध्यक्ष एस. एस. अग्रवाल उपाध्यक्ष सत्यपाल एवं महासचिव विश्राम जामदार है। जो संघ के कार्यकर्ता हैं।

12. **सरस्वती एजूकेशन सोसाइटी** को 960 वर्ग गज भूमि वसंत कुंज इलाके में आवटित की गयी। आर.एस.एस. महामंत्री और समर्थ शिक्षा समिति के मुखिया खजान चन्द्र बधला ही सरस्वती एजूकेशन सोसाइटी के कर्ताधर्ता हैं। सरस्वती बाल मंदिर की कई शाखाएं हरि नगर, नेहरू नगर, राजोरी गार्डन और आर. के. पुरम इलाकों में चल रही हैं।

13. **अखिल भारतीय ग्रामीण सेवा संघ** को रोहिणी में 960 वर्ग मीटर भूमि रोहिणी में आवंटित की गयी। भाजपा कार्यकारिणी सदस्य रमेश चन्द्र शास्त्री सेवा संघ के अध्यक्ष हैं।

14. **संस्कार भारती** को राउज एवेन्यू में फरवरी 2002 में 5712 वर्ग गज जमीन आवंटित की गयी। संस्कार भारती आर. एस. एस. की आनुषंगिक है। शैलेन्द्र नाथ शास्त्री इसके अध्यक्ष और जगदीश पाल महासचिव हैं।

15. **संस्कृति भारती** को राउज एवेन्यू में नवम्बर, 2001 में 1,7136 वर्ग गज जमीन आवंटित की गयी थी। इसके अध्यक्ष, के. सूर्य नारायण एवं सचिव, चामुकृष्ण शास्त्री हैं। ये दोनों ही आर. एस. एस. के कार्यकर्ता हैं।

16. **विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान** को राउज एवेन्यू में 1020 वर्ग गज भूमि अप्रैल, 2002 में आवंटित की गयी। इसके अध्यक्ष, हसमुख भाई दवे और महासचिव, उदय पटवर्धन हैं। ये दोनों ही आर. एस. एस. कार्यकर्ता हैं।

17. **भारतीय मजदूर संघ** को राउज एवेन्यू में 856.8 वर्ग गज जमीन जून, 2001 में आवंटित की गयी।

18. **समर्थ शिक्षा समिति** के नाम पर शिवालिक कालोनी में 5290.1 वर्ग गज भूमि जनवरी, 2002 में आवंटित की गयी।

19. **समर्थ शिक्षा समिति** को झंडेवालान के निकट आराम बाग में भी 1.554 एकड़ यानी 7260 वर्ग गज जमीन आवंटित हुई।

20. **सेवा भारतीय** को भाई और सिंह मार्ग पर 479 वर्ग गज जमीन अप्रैल, 2001 में आवंटित की गयी। इसके अध्यक्ष जय नारायण खंडेलवाल भी आर. एस. एस. कार्यकता हैं। संस्था के मुताबिक दिल्ली की मलिन बस्तियों में वह इस समय लगभग 1,517 परियोजनाओं पर काम कर रहे हैं। इस जमीन पर सेवा भारती का मुख्यालय स्थापित करने की योजना है।

21. **दिल्ली भारत विकास** फाउंडेशन को वर्ष 2001 में योजना विहार में डीडीए की 1,258 वर्ग गज जमीन आवंटित की गयी। भाजपा के पूर्व शहरी विकास मंत्री और राज्यसभा में सांसद एल.एम. सिंधवी फाउंडेशन के संस्थापक हैं।

22. **विश्व जागृति मिशन** को रोहिणी में वर्ष 2000–2001 में डीडीए की 672 वर्ग गज जमीन आवंटित की गयी। सुधांशु महाराज मिशन के संस्थापक और राधेलाल गुप्ता इसके अध्यक्ष हैं।

23. **भारतीय जनता पार्टी** के नाम भी राउज एवेन्यू में 0॰233 एकड़ जमीन अप्रैल, 2001 में आवंटित की गयी। यहां पार्टी का दिल्ली कार्यालय स्थापित करने की योजना है।

24. **विश्व संवाद केन्द्र** को राउज एवेन्यू में 1044 वर्ग मीटर भूमि मार्च, 2001 में आवंटित की गयी। विश्व हिन्दू परिषद के महासचिव आचार्य गिरिराज किशोर इसके प्रभारी हैं। इस जमीन पर विहिप का प्रचार विभाग स्थापित करने की योजना है। यहां विहिप का अपना पुस्तकालय तथा गोष्ठी के लिए सभागार बनाया जाएगा।

25. **अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम** को 19 जुलाई, 2002 को 506 वर्ग मीटर भूमि मेहरौली–बदरपुर रोड पर आवंटित की गयी। आर.एस.एस. कार्यकर्ता संतोष परांजपे आश्रम संचालित कर रहे हैं।

26. **सनातन धर्म सभा** को फरवरी, 2001 में 852 वर्ग गज जमीन सेक्टर–8, आर. के. पुरम में आवंटित की गयी। स्वदेशी जागरण फाउंडेशन के कर्ताधर्ता पी. खांडेकर एवं सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष मनोहर लाल कुमार आर.एस.एस. के सक्रिय कार्यकर्ता हैं। पिछले वर्ष से स्वदेशी जागरण मंच का कार्यालय भी यहां स्थित है।

27. **धर्मयात्रा महासंघ** को राउज एवेन्यू में 5712.2 वर्ग गज भूमि जनवरी, 2002 में आवंटित की गयी। विहिप नेता अशोक सिंघल इसके संस्थापक हैं। भापपा नेता मांगेराम गर्ग महासंघ के अध्यक्ष हैं।

28. **महामना मालवी मिशन** को राउज एवेन्यू में 1180 वर्ग गज भूमि फरवरी, 2002 में आवंटित की गयी। भाजपा नेता वेद प्रकाश गोयल तथा समता पार्टी नेता एवं पूर्व राज्यमंत्री हर किशोर सिंह मिशन के संस्थापक हैं।

29. **टॉय बैंक** के नाम भी एक भूभाग राउज एवेन्यू में आवंटित है। गरीब बच्चों के लिए कार्यरत इस संस्था के संस्थापक और मुख्य संरक्षक भाजपा नेता विय गोयल हैं।

30. **अंतर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद** के नाम राउज एवेन्यू में 487 वर्ग गज जमीन 1 नवम्बर, 2001 को आवंटित की गयी। इसके संस्थापक नौकरशाही धर्मवीर और पूर्व राज्यपाल बालेश्वर अग्रवाल परिषद के महासचिव हैं।

संघ से जुड़ी संस्थाओं को दिल्ली में मिली पचासों एकड़ जमीन को संघ ने स्वयंसेवी संस्थाओं के लिये ज्यादातर भूमि साउथ ऐवन्यू और मेहरौली–बदरपुर रोड़ पर आवंटित की गयी है। साउथ एवेन्यू में बाजार मूल्य 96,000 रूपये और मेहरौली में 50,000 रू0 प्रति वर्ग गज भूमि है, जबकि 1,818 रू0 प्रति वर्ग गज कीमत अदा की गयी। आर. के. पुरम में जमीन की कीमत 100,000 रूपये प्रति गज है, जबकि 88 लाख रूपये प्रति एकड़ के हिसाब से यहां जमीन आवंटित की गयी। इसी तरह वसंत विहार, सरोजनी नगर, लालपत रायनगर, शिवालिक कालोनी आदि में भी बाजार मूल्य से बहुत कम कीमत में जमीनें उपलब्ध करायी गयी।''[9]

---

[9] राष्ट्रीय सहारा, ''सत्ता सुख मिलता रहे, इज्जत भी बने रहे'' 2–11–2002

पूंजीवादी लोकतन्त्र तथा साम्यवाद के प्रति संघ का दृष्टिकोण

पिछली शताब्दी के दौरान पूंजीवाद और समाजवाद नामक दो आर्थिक प्रणालियों पर काफी कुछ बहस होती रही है। किन्तु यह बहस यह मानकर होती रही है कि दुनियाँ में या तो पूंजीवादी प्रणाली को अपनाया जाये या समाजवादी प्रणाली को। इस प्रकार ये दो प्रणालियाँ ही एक दूसरे का विकल्प बनकर प्रस्तुत होती रही है। यही कारण था कि दुनिया के देश लगभग दो खेमों में बट गये एक ओर पूंजीवादी देश थे तो दूसरी ओर समाजवादी देश।

"स्वाधीनता आन्दोलन के समय गांधीजी एवं उनके सहधर्मी कुछ विचारकों ने इस बहस को प्रारम्भ किया था कि आजादी के बाद भारत पूंजीवादी प्रणाली और समाजवादी प्रणाली में से किसी एक को अपनाये अथवा अपनी मूल प्रकृति के आधार पर कोई नया रास्ता खोजे। आजादी के बाद यह बहस फिर पूंजीवादी एवं समाजवादी इन दो प्रणालियों के इर्द–गिर्द ही सिमटकर रह गयी।"[10]

अंग्रेजों के चले जाने के बाद यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि भारत राष्ट्र पुनर्रचना के लिये कौन सी प्रणाली चुनें ? विश्व में मुख्य रूप से दो प्रकार की प्रणालियाँ प्रचलित थी– एक जनतंत्र का सहारा लेकर चल रही पूंजीवादी

---

[10] डा0 बजरंग लाल गुप्ता, श्री गुरूजी का आर्थिक चिन्तन, पृ0 15–16

प्रणाली और दूसरी राज्यशक्ति के सहारे चल रही समाजवादी–साम्यवादी प्रणाली।

पूंजीवादी प्रणाली के विकास की प्रक्रिया और उसमें उत्पन्न दोषों के बारे में गोलवलकर ने कहा– यूरोप के देशों में निरंकुश राजसत्ता की प्रतिक्रिया स्वरूप जनतंत्र का उद्‌भव हुआ। उस समय वहां व्यक्ति दास मात्र था, वह स्वप्रेरणा और स्वतन्त्रता से विहीन तथा ईश्वर के समान समझे जाने वाले राजाओं के हाथ का खिलौना मात्र था। ऐसे समय में व्यक्ति की स्वतन्त्रता का आधार लेकर, स्वतन्त्रता, समानता और बंधुता की घोषणा करते हुये आन्दोलन प्रारम्भ हो गए। उस काल के निरंकुश शासन जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अपना सम्पूर्ण स्वातंत्र खोकर पिसता जा रहा था के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा और उसके विकास का प्रबन्ध करने के लिये ही इन आन्दोलनों की सृष्टि हुई।[11] लगभग उसी समय यंत्र युग का भी आरम्भ हो चुका था। उद्योगों का पनपना आरम्भ हो गया था। विज्ञान एवं तकनीकी ने उद्योगपतियों को अधिकाधिक बड़े यंत्र लगाने में सहायता करना आरम्भ कर दिया। बड़े परिणाम में उत्पादन करने वाली उन मशीनों पर लाखों मजदूर नियुक्त हो गये। "समान अवसर" के घोष के आधार पर अधिक वृद्धि और धन से सम्पन्न व्यक्तियों ने सम्पत्ति के उत्पादन के उन सभी नवीन साधनों पर एकाधिकार कर लिया और वही एक मात्र आर्थिक सर्वाधिपति बन गए। अपनी

[11] डा0 बजरंग लाल गुप्ता, श्री गुरुजी का आर्थिक चिन्तन पृ0 16

प्रचुर धनशक्ति से उन्होंने राजनीतिक तंत्र को भी अपने अधिकार में कर लिया। सामान्य व्यक्ति केवल वोट देने के राजनैतिक अधिकार को प्राप्त करके सूखा का सूखा ही बना रहा। असह्य आर्थिक परिस्थितियों में पिसता हुआ वह वोट के अपने अधिकार को भी उपयोग में लाने के लिये स्वाधीन नहीं था। गोलवलकर का मानना था "व्यक्ति स्वातंत्र्य" की ऊँची कल्पना का अथ रह गया कुछ धीमानों की स्वतंत्रता ताकि वे शेष सामान्य जनता का उपयोग अपनी स्वार्थ–सिद्धि के लिये कर उसे दीन–हीन तथा दास बनाये रखें। उन कारखानों में मजदूरी करने वाले स्त्री–पुरूष और बालकों की भयंकर दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता। वे अब पुरानों के स्थान पर नए अत्याचारियों के पैरों के नीचे दबे हुए कराह रहे थे।[12]

गोलवलकर के अनुसार– आधुनिक पूंजीवादी समाज में जीवन का मुख्य तत्व सुख साधन है। इस प्रणाली को अपनाने वाले देशों में सुख–साधन के दो मुख्य पहलू हैं : विषाक्त प्रतिस्पर्धा और उन्युक्त समाज।[13]

पूंजीवादी शोषण की प्रतिक्रिया स्वरूप कार्ल मार्क्स ने मुक्त बाजार तंत्र से अलग समाजवादी–साम्यवादी व्यवस्था दी। समाजवादी प्रणाली से विकसित होने की पृष्ठीभूमि को स्पष्ट करते हुये गोलवलकर कहते थे कि विज्ञान के बल पर प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की मनोवृत्ति ने उत्पाद के साधनों की क्षमता में काफी अधिक वृद्धि कर दी किन्तु इसके साथ ही धन का कुछ हाथों में

[12] श्री गुरूजी समग्र खण्ड–1 पृ0 21
[13] डा0 बजरंग ला गुप्ता, श्री गुरूजी का आर्थिक चिन्तन, पृ0 17

केन्द्रीकरण, धनी–निर्धन, पूंजीपति श्रमिक आदि वर्गों के बीच भेदों का निर्माण भी करा दिया। इसके परिणाम स्वरूप ईर्ष्या–द्वेष और असहिष्णुता बढ़ गयी और एक दूसरे के सुख में सुखी होने तथा संतोष जैसे गुण लुप्त हो गये। उत्पादन वृद्धि के साथ ही कुछ राष्ट्रों ने साम्राज्य विस्तार का उत्पीड़न शोषण प्रारम्भ कर दिया। इसकी प्रतिक्रिया में से पूंजीवाद पर आधारित अधिसत्ता उत्पन्न करने के प्रयास में ही साम्यवाद की प्रणाली विकसित हुई इस प्रकार पूंजीवाद की क्रूरता के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में कम्यूनिज्य आया।[14]

समाजवाद के बारे में अपने विचारों को गोलवलकर ने इन शब्दों में प्रकट किया है, "कम्यूनिज्य यह मानकर चला कि औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप भयंकर आर्थिक असमानता का निर्माण होना अवश्यंभावी है, जिससे दो वर्गो का निर्भाण होगा– 'पूजीपति और अंकिचन मजदूर 'सर्वहारा'। कम्यूनिज्म में आगे की कल्पना यह की गई कि इन दोनों श्रेणियों में वर्ग संघर्ष प्रारम्भ होगा तथा अंत में श्रमिक वर्ग विजयी होगा। इसके पश्चात जनता के शासन संपत्ति के उत्पादन तथा वितरण के सभी साधनों का नियमन करता हुआ जनता की भौतिक आवश्यकताओं की देखरेख का संपूर्ण भार वहन कर लेगा। इस प्रकार यह भविष्यवाणी की गई कि देश का जितना औद्योगीकरण होगा, उतनी ही अधिक असमानता में वृद्धि होगी और इसलिए तीव्रतर वर्ग संघर्ष तथा उसके परिणाम स्वरूप भ्रमिक शासन का उदय होगा।

[14] श्री गुरूजी समग्र दर्शन खण्ड–3, पृ0 120

विश्व प्रचलित पूंजीवाद और समाजवाद नामक दोनों ही प्रणालियाँ सैद्धान्तिक संभ्रम और व्यवहारिक भटकार का शिकार होती हुई दिखाई देती है। अतः दोनों ही अपने–अपने मूल स्वरूप को भूलकर अपने–अपने सीन से हटकर एक दूसरे की ओर आती जा रही है– ऐसा लगता है मानों दोनो ही भटकाव के भंवर में फंस गयी है।

संघ का नारी आन्दोलन पर विचार

महिला और पुरूष दोनों समाज के समान घटक हैं। स्त्री–पुरूष का भेद मिटाना यह एक मानसिक प्रक्रिया है। अर्थाजन करके कुटुंब पालन करने वाली महिला भी पुरूष की भाँति वर्चस्व से आत्मसम्मान से वंचित रहती है यह दुर्भाग्यपूर्ण वास्तविकता है। बच्चों का पालन–पोषण कौटुम्बिक जिम्मेवारी व्यवहार की परिभाषा विवाह पद्धति, आर्थिक हित सम्बन्ध रिश्तेदारियाँ ऐसी अनेक बातों में भेदकारक अनुभव यह मानसिक प्रक्रिया का ही भाग है। 'स्त्री' को या तो पूजा के स्थान पर माना जाता या एक दम पैरा तले रौदनें की स्थिति में माना जाता है।

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'' नारी की पूजा जहाँ होती है वहाँ देवगण रमते हैं।[15] ऐसा बाताया जाता है किंग 'स्त्रीयचरित्रं पुरूषस्य भाग्यम् देवो न जानाति ऐसा बताया जाता है।

---

[15] नारी जागरण एवं संघ पृ0 4

'स्त्री' का आत्म सम्मान जिस समाज में किया जाता है, वह समाज व्यवस्था स्त्री पुरूष भेद दूर करने को अधिक होती है। भेदविरहित वातावरण उत्पन्न करने का दायित्व स्त्री पुरूष दोनों का है। भारतीय संस्कृति में मातृशक्ति का विचार अतिशय महत्व का है। ममता, स्नेह, संस्कारशीलता, परम प्रियता ऐसी सर्व भावनाओं का समुचित प्रगटीकरण मातृशक्ति के रूप में होता है। 'मातृस्य 'ऐसा यह समाज' यह विचार मन में आते ही एक प्रकार उदात्तता पारिवारिक संम्बन्ध का अनुभव और बंधुभाव का संस्कार में छटाये अंकित हुये बिना नहीं रहती। 'स्त्री देखने का दृष्टिकोण इस संस्कार में से ही विकसित हुआ। इस एक संस्कार से अनेक परिणाम स्वाभाविक ही प्राप्त हुये हैं। 'भोगवाद' की विकृति को इस संस्कार ने रोकने में सफलता पायी 'परस्त्री माता समान' इस संस्कार की शक्ति इस विकृति को दूर करती है, साथ ही विश्व के सम्मुख एक सुदृढ़ संस्कृति का आदर्श प्रस्तुत करती है रक्त का सम्बन्ध न हो तो भी भावात्मक सम्बन्ध उत्पन्न कर समाज के सभी घटकों को एकत्रित गूथकर रखने का महान आशय इस परम्परा में समया हुआ है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीन काल में स्त्रियों को महतवपूर्ण अधिकार प्राप्त थे। "हमारे देश में गार्गी, मैत्रेयी तथा अत्री आदि ऐसी नारियाँ हुई हैं जिनको सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। परन्तु मध्यकाल में नारी की स्थिति अत्यन्त सोचनीय थी। वह घर की चारदीवारी में कैद थी" परिवार का सम्पूर्ण ढांचा आदमी के वर्चस्व और नारी की निर्भरता पर आधारित था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 1950 में स्त्रियों को पुरूषों के समान अधिकार दिये गये। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष, महिला दशक, इंटरनेशनल इयर ऑफ गर्ल चाइल्ड के बाद वर्ष 2001 महिला सशक्तीकरण वर्ष के रूप में मनाया गया जो कि इस बात का द्योतक है कि आजादी के 50–55 वर्ष बीत जाने के बाद भी संविधान द्वारा दिये गये 'समानता के अधिकार' से महिलाएं वंचित हैं। संवैधानिक प्रावधानों और कानूनों के बावजूद महिलाओं के उत्पीड़न की घटनाओं की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों के अनेक रूप हैं जैसे– कन्या भ्रूण हत्या, शिशु कन्या हत्या, परिवार में लड़कियों की शिक्षा और स्वास्थ्य की उपेक्षा, अल्प आयु में विवाह, बलात्कार, बलात वैश्याकरण आदि।

आधुनिक महिला जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों की प्रतियोगी है। फिर भी वह पहले से ज्यादा असुरक्षित है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार भारत की 245 करोड़ महिलाएं निरक्षर हैं। नारी को राजनैतिक क्षेत्रों में भी उतने अधिकार नहीं मिलते हैं जितने कि पुरूषों को और न ही राजनीतिक दल पुरूषों की तुलना में महिलाओं को अधिक वरीयता देते हैं।

भारतीय समाज में नारियों की प्रस्थिति समय के साथ–साथ उतार चढ़ावों से परिपूर्ण रही है। हमारी प्राचीन व्यवस्था में नारियों को उच्च प्रास्थिति प्राप्त थी। उन्हें सुख, वैभव, शान्ति, शक्ति व ज्ञान का प्रतीक माना जाता था।

कहीं नारी की पूजा रणचंडी दुर्गा के रूप में हुई तो कहीं माँ सरस्वती के रूप में।

परन्तु धीरे–धीरे नारियों के स्थान में परिवर्तन होता गया। पुरूषों ने नारियों को दुलर्भ समझकर उनके अधिकार व कार्य सीमा पर हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया इसके परिणाम स्वरूप एक समय ऐसा भी आया जबकि नारियों की समय सीमा घर की चारदीवारी तक सीमित रह गयी। परिवार में कन्या का जन्म अशुभ माना जाने लगा।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में महिलाओं की सहभागिता काफी कम है संघ ने अपनी एक निश्चित कार्य पद्धति विकसित है। इस कार्य पद्धति का मूलभूत घटक संघ की दैनंदिनी शाखा है। रोज एक घंटे की शाखा, शाखा के शारीरिक कार्यक्रम, बौद्धिक कार्यक्रम शाखा में होने वाला स्वयंसेवक का चरित्र गठन और सुसंस्करों की निर्मित यह इस प्रक्रिया का अविभाज्य अंग है। इसी में से लाखों स्वयंसेवकों का निर्माण हुआ है। ऐसी शाखाओं में महिलाओं का समावेश नहीं है। संघ के जो पूर्णकालिक कार्यकर्ता (प्रचारक) निकलते हैं उनमें सभी पुरूष होते और उन्हें आजीवन या जब तक प्रचारक है अविवाहित रहना पड़ता है।

संघ की शाखा के दैनंदिनी कार्यक्रमों में पुरूषों के साथ महिलाए नहीं दिखती परन्तु उनकी सहभागिता संघ के कार्यक्रमों में परोक्ष रूप से रहती हैं। वर्तमान समय में समाज में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को ध्यान में रखते हुये महिलाओं को संघ से जोड़ने के लिये **'राष्ट्रसेविका समिति'** के नाम से एक

अनुषांगिक संगठन बनाया। पुरूष स्वयंसेवकों के प्रशिक्षण शिविरों के समान संघ राष्ट्रसेविका समिति के माध्यम से महिलाओं के प्रशिक्षण शिविरों को प्रारम्भ कर दिया है। संघ के द्वितीय सरसंघचालक गोलवलकर ने इस सम्बन्ध में मानना था कि मानवीय व्यवहार की विकृतियों को दूर रखकर आदर्श उपस्थित करने का दायित्व निभाना हो तो वह उदत्त भावना द्वारा ही सम्भव है।

संघ के तृतीय सरसंघचालक बालासहाब देवरस ने प्रश्न संघ महिलाओं में काम क्यों नहीं करता के उत्तर में कहा था कि इस देश में पुरूषों की संख्या बहुत बड़ी है यहाँ इग्लैण्ड जैसी हालत नहीं है कि दूसरे महायुद्ध में पुरूषों की संख्या इतनी कम हो गई कि जब वे सभी सेना में भर्ती हो गये तो स्त्रियों को कारखाने चलाने पड़े, एम्बुलेंस वाहन चलानी पड़ी, युद्ध में मोर्चों पर भी स्त्रियों को जाना पड़ा उक्त सम्भावना यहाँ बहुत कम है। एक कारण तो यह है, दूसरा कारण ऐसा है कि यहाँ कुछ परम्पराएं ऐसी हैं कि हमने यह सोचा कि पुरूषों और स्त्रियों का काम जहाँ तक सम्भव हो अलग–अलग रहे, तीसरी बात यह है कि स्त्रियों का कार्य बिल्कुल ही नहीं होना चाहिए, हमने ऐसा नहीं सोचा स्त्रियों के लिए एक अलग संगठन है जिसका नाम "**राष्ट्रसेविका समिति**" उसका भी काम ठीक से चलता है लेकिन उतना प्रभावी नहीं है जितना संघ का है।[16] वर्तमान समय में जब महिलायें पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रहीं है। सुनीता विलियम जैसी महिलायें पुरूषों से दो कदम आगे समाज में अपनी

---

[16] मधुकर दत्तात्रैय देवरस, हिन्दू संगठन और सत्तावादी राजनीति पृ0 223

उपयोगिता सिद्ध कर रही हैं। वहीं संघ महिलाओं के सम्बन्ध में अपनी संकीर्ण मानसिकता से बाहर नहीं आना चाहता।

उदारीकरण के प्रति संघ का दृष्टिकोण :

संघ ने शुरूआत में आर्थिक उदारीकरण को लेकर प्रतिशोधात्मक रूख अपनाया। संघ के देश के अन्दर उद्योगपतियों व्यापारियों को छूट की हिमायत करता रहा। इंस्पेक्टर राज्य की समाप्ति के नारे को संघ का सदैव समर्थन रहा। लेकिन वर्तमन में आर्थिक उदारीकरण विदेशी कंपनियों का देश में व्यापार की छूट प्रदान करने के रूप में रूढ़ हो गया है। आर्थिक उदारीकरण की शुरूआत में अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय कंपनियों की कोई हैसियत नहीं थी और न ही उनमें आत्मविश्वास था कि वे वैश्विक प्रतिस्पर्धा में टिक पायेगी इसलिये स्थानीय उद्योगपतियों, व्यापारियों व दुकानदारों की पीड़ा से समवेद होते हुये संघ ने स्वदेशी आन्दोलन का विगुल फूंका, दत्तोपंत ठेगठी जैसे दिग्गज नेताओं ने इस मामले में तत्कालीन प्रधानमंत्री और अपने अन्यन सखा अटल विहारी वाजपेयी को भी नहीं बख्शा। संघ के थिंक टैंक गोविन्दाचार्य को इसी अंतर्द्वन्द्व के पाटों में पिसकर अपने राजनैतिक कैरियर की बलि चढ़ानी पड़ी। लेकिन धीरे–धीरे जब भारतीय कंपनियों का व्यापारिक साम्राज्य दुनियाभर में फैलता चला गया, लक्ष्मी मित्तल कुछ ही दशक पहले लंदन में जमने के बाद इग्लैंण्ड के सबसे बड़े आदमी बने गये।

भारतीय मूल की इन्दिरा नूयी कोल्डड्रिक्क की जानी मानी कंपनी पेप्सी की सीईओ बन गयी। फोर्ब्स की सर्वाधिक पूंजीवालों की सूची में भारतीयों के नाम दर्ज होने लगे तो संघ का स्वदेशी स्वर मंद पड़ गया। आज संघ उदारीकरण की वैश्विक लहरों में बहने लगा है। परमाणु करार के मुद्दे पर मनमोहन सरकार के विश्वासगत की बहस में प्रतिपक्ष के नेता लालकृष्ण आडवाणी ने जिस तरह से नरमी बरती उससे यह स्पष्ट है कि संघ की करार के मुद्दे पर कोई कड़ी बात न कहने की सहमति बन गयी थी। आर्थिक उदारीकरण का एक पहलू यह भी है कि आम जनता ने जीवन स्तर के उत्थान की इसमें अनदेखी की जा रही है। उद्योग जगत को बड़े पैमाने पर बकाया के चलते कल्याणकारी योजनाओं के लिये संसाधन नहीं जुट पा रहे हैं। शिक्षा व स्वास्थ्य में जितना निवेश होना चाहिये उससे काफी कम है। गोविन्दाचार्य ने अपने शोध में बाजपेयी सरकार द्वारा 25 उद्योगपतियों 60 हजार करोड़ की माफी का जिक्र किया था। जाहिर है कि आर्थिक उदारीकरण में गरीबों के हितों की कीमत पर पूंजीपतियों को लाभ दिया जा रहा है। उद्योग जगत की आवश्यकताओं के मुताबिक विकास की प्राथमिकताएं तय होती है। मानवीय सरोकारों को इसमें पूरी तरह भुला दिया जाता है उदारीकरण के इन नकारात्मक परिणामों पर संघ ने अपनी चुप्पी साध रखी है।

''उदारीकरण के बाद जिस तरह पाश्चात्य संस्कृति का वर्चस्व स्थापित हुआ है उसमें परंपराओं के प्रति उसके आग्रहों को तगड़ा झटका लगा है। यही

वजह है कि उसकी प्रिय पार्टियाँ शिवसेना, भाजपा की सरकार जब मुंबई में **माइकल जैक्सन शो** आयोजित कर रही थी तब संघ चुप था और **'वैलनटाइन डे'** मानने वालों की पिटाई कर रहा है।"[17] कुछ– कुछ तालिवान की तर्ज पर संघ का छात्रसंगठन जींस और स्कर्ट की जगह लड़कियों को सलवार कुर्ता पहनने का फरमान जारी कर रहा है।

---

[17] राष्ट्रीय सहारा, "हस्तक्षेप" 11–3–2000

अध्याय- पंचम
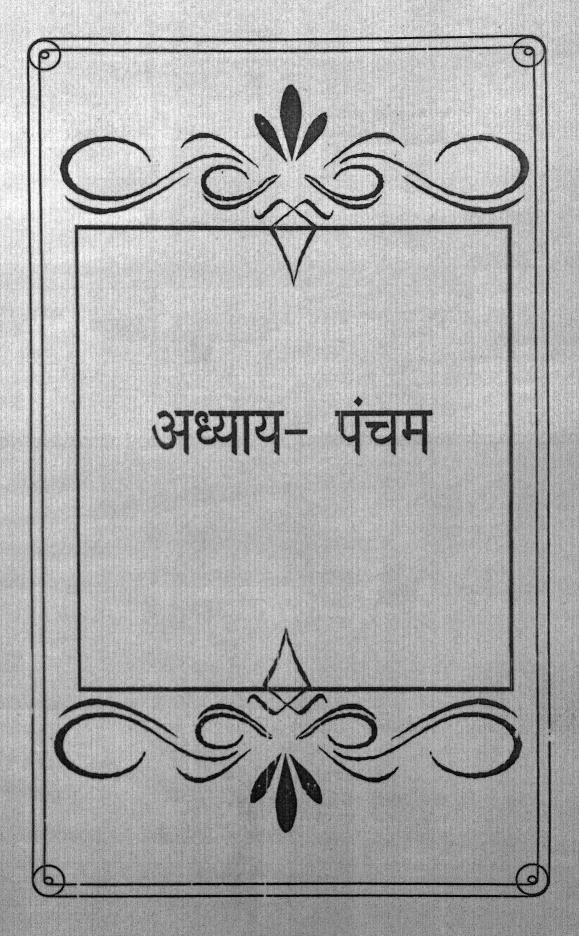
भूमण्डलीयकरण का संघ पर प्रभाव

आजाद भारत के इतिहास में 15 अगस्त, 1947 की तारीख का मतलब सभी को मालूम है, पर 24 जुलाई 1991 के महत्व का एहसास अभी बहुत कम लोगों को हो पाया है। 15 अगस्त एक आधुनिक राष्ट्र के साकार होने की शुरूआत थी। इस सिलसिले के केन्द्र में थी लोकतांत्रिक राजनीति। लेकिन उस साकार राष्ट्र को निराकार करने की तरफ पहला कदम 24 जुलाई को उठाया गया था। आजादी रात के 12 बजे मिली थी, लेकिन उसके तकरीबन 44 साल बाद जो सुबह आयी उसने एक नयी उद्योग नीति की घोषणा की और बने बनाये ढाँचे को एक ही झटके में कुछ अवशेषों में बदल दिया। इसी दिन दोपहर के बाद संसद में नया केन्द्रीय बजट पेश किया गया जिसमें एक ऐसे अर्थतंत्र का आकार--प्रकार बनाना शुरू हुआ जो राजनीति से नियंत्रित होने के बजाय उसे नियंत्रित करने की इच्छा से लैस था। चार दशक से ज्यादा की अवधि में जिस राष्ट्रीय राजनीति सामाजिक संस्कृति की रचना हुई थी, एक पल में उसकी बागडोर ऐसे हाथों में चली गयी जो शुद्ध रूप से भारतीय हाथ नहीं थे। यह भारत के ग्लोबलाइजेशन यानी भूमंडलीयकरण की शुरूआत थी।

"इस परिघटना को कई तरीके से अभिव्यक्त किया गया। किसी ने इसे जगतीकरण की संज्ञा दी तो किसी ने इसे वैश्वीकरण या ग्लोबीकरण कहा।"[1] बांग्ला में इसे विश्वायन कहा गया। मार्क्सवादियों ने इसे पूंजीवादी सर्वव्यापीकरण के रूप में पेश करते हुये साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के दायरे में इसके खिलाफ व्यूह रचना का एलान

[1] अभय कुमार दुबे, भारत का भूमण्डलीयकरण, पृ0 21

किया। गांधीवादियों का नाखुश होना स्वाभाविक था, क्योंकि भूमंण्डलीयकरण गाँव की जगह शहर और नागरिक की जगह उपभोक्ता की सत्ता को अंतिम तौर पर स्थापित करने के आग्रह के साथ सामने आया था। "भूमण्डलीयकरण से सबसे ज्यादा चिंतित राष्ट्रवादी हुये। उनमें से ज्यादातर को लगा कि यह परिघटना तो राष्ट्र ही आधारभूत संरचना को ही सत्ता और प्राधिकार से वंचित कर देगी, इसलिये उन्होंने मार्क्सवादियों के साथ सुर–सुर मिलाकर अपना भूमण्डलीयकरण विरोधी घोषणा पत्र तैयार किया। विरोध करने के साथ–साथ राष्ट्रवादियों ने होशियारी दिखाई कि भूमण्डलीयकरण के साथ सौदेबाजी भी शुरू कर दी। सूचना क्रांति की प्रौद्योगिकी का सहारा लेकर वे जनता को नये तरीकों के साथ नियंत्रित करने के प्रयोजन में लग गये। राष्ट्रवादियों के इस हिस्से का ख्याल था कि वे अपनी संप्रभुता का एक हिस्सा त्याग कर उसके भूमण्डलीयकरण से कहीं ज्यादा हासिल कर सकते हैं।"[2]

"भूमण्डलीयकरण एक बेहद ताकतवर परिघटना है जो सब कुछ बदले दे रही है। वह दोनों तरफ से बदलती है यानी वह हालात को अपने सार्वभौम साँचे में तो ढालती ही है, उसके प्रति विरोधियों की प्रतिक्रिया भी एक खास तरह के परिवर्तन को जन्म देती है जो शुरू में भूण्डलीयकरण के खिलाफ लगता है पर अंतिम विश्लेषण में उसकी संरचनाओं की मदद करता पाया जाता है।"[3] भूमण्डलीयकरण के कारण न सिर्फ सत्ता की राजनीति बदल गयी है, वरन् विपक्ष की राजनीति के पुराने तौर तरीके भी बेकार हो गये हैं, उन्हें लगता है कि पिछली सदी के आखिरी दस सालों में यह शै

---

[2] अभय कुमार दुबे, साकार राष्ट्र : निराकार मात्र। पृ0–22

[3] अभय कुमार दुबे, भारत का भूमण्डलीयकरण, पृ0 27

न जाने कहां से यह टपक पड़ी है। हमारे मिथकों में अगर भूमण्डीयकरण से प्रभावित आज के हालात की कोई मिसाल मिल सकती है तो वह सिर्फ समुद्र मंथन की पुराण गाथा ही है. जिसमें सभी पक्ष जुड़े हुये थे और किसी को ठीक–ठाक नहीं पता था कि सुमेरू पर्वत से बनी उस विराट मथानी से क्या–क्या निकलेगा। लेकिन मंथन में शामिल होने के कारण वे सभी उसके परिणामों का फल भोगने के लिये अभिशप्त थे।

दरअसल, भूमण्डलीयकरण उस सफर का नाम है जो उन्नीसवीं सदी के सातवें दशक में आधुनिकता ने शुरू किया था। आधुनिकता को इंसान के सोच–विचार में तरह–तरह की क्रान्तियां करने का श्रेय दिया जाता है, लेकिन उसकी व्याख्याओं में यह पहलु सबसे कम उभर कर आता है कि वह भूमण्डलीयकरण की वाहक भी है। जब तक भूमण्डलीयकरण का यथार्थ अपने पूरे विस्फोट के साथ प्रकट नहीं हुआ था, विविधता और बहुलता को आधारभूत सिद्धान्त मानने वाले चिंतक किस्म–किस्म की आधुनिकता की वह प्रवृत्ति छिप गयी थी जो सभी सभ्यताओं और संस्कृतियों की समरूपीकरण की तरफ धकेलती है। लेकिन नब्बे के दशक में जैसे ही भूमण्डलीयकरण मुख्यधारा के ऊपर हावी हुआ वैसे ही यह असलियत एक बार फिर निकल कर सामने आ गयी कि यूरोपीय ज्ञानोदय की कोख से जन्में आधुनिकता के सार्वभौम विचार में 'एक विश्वाद' का पहलू एक शक्तिशाली अंतर्धारा के रूप में मौजूद है। चाहे किसी भी रंग के रहे हों, आधुनिकतावादी हमेशा 'ग्लोबल' प्रणाली 'ग्लोबल' नागरिक और 'ग्लोबल' राजनीति रचने की कल्पनाओं से प्रेरित होते रहे हैं। राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, और सांस्कृतिक सीमाएं आधुनिकता के इस आयाम के ऊपर कभी हावी नहीं हो पायी।

1922 के आते–आते भारतीय राजनीति में बहुत कुछ थम चुका था और मंडल और कमंडल की राजनीति की तार्किक परिणित हो चुकी थी। बाबरी मस्जिद के विध्वंस और मंडल कमीशन लागू होने के बाद भारतीय राजनीति एक ऐसे पडाव पर आकर रूक चुकी थी जिन्हें देश की आर्थिक सामाजिक मांगों का जबाव ढूंढना था। यही वह समय था जिन्हें अब नरसिंहराव के नेतृत्व में भारत में नयी आर्थिक नीति को लागू किया गया। इसने भारत में भूमंडलीयकरण की प्रक्रिया को शुरू कर दिया। भूमंडलीयकरण को दूसरे शब्द में वैश्वीकरण कहा जाता है। इसमें मुख्य तीन बातें आती हैं– उदारीकरण, व्यक्तिगत और तीसरी बात एकीकरण इस प्रकार भूमंडलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो विश्व को एक बाजार के रूप में बदलने को उन्मुख है। यह समाजवाद के एकीकरण लाइसेन्स राज को समाप्त कर नियम और कानूनों के उदारीकरण पर बल देता है वहीं पर समाजवादी राष्ट्रीयकरण के स्थान पर व्यक्तिगत को बढ़ावा देते हैं और इन दोनों की सहायता से देश की आर्थिक जीवन एवं अर्थव्यवस्था को दुनिया के अन्य देशों की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण करना चाहता है। यह एकीकरण सिर्फ आर्थिक एकीकरण नहीं है यह सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकीकरण भी है। जो अन्तः राजनीतिक एकीकरण भी मांग करेगा। जहां पर यह अन्तः दुनिया को एक आर्थिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक सूत्रों में बांधना चाहता है और पूंजी प्रतिस्पर्धा पर आधारित एक नये विश्व का निर्माण करना चाहता है।

इस प्रकार देखा जाये तो नये विश्व के निर्माण की प्रक्रिया में भूमण्डलीयकरण पुरानी मान्यताओं, विश्वासों, परम्पराओं संस्कृतियों और यहां तक राष्ट्र की सीमाओं तक

को तोड़ रहा है। देखा जाये तो यह प्रक्रिया द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ही शुरू हो गयी थी। 1960 के दशक में डेनियलवेल ने तो विचारधारा के अन्त की बात उठायी वहीं पर 1980 के दशक के अन्तिम वर्ष में फ्रांसिस फुकोयामा ने तो इतिहास के अन्त की बात कह डाली और यह स्थापित किया कि उदारवादी प्रजातांत्रिक व्यवस्था ही एक मात्र राजनीतिक व्यवस्था के रूप में कायम रहेगी और इतिहासान्त में सारी वैचारिक लडाईयां समाप्त हो जायेगी और पूरी दुनिया उदारवादी पूंजीवादी राजनैतिक व्यवस्था के छत्रछाया में एकत्रित हो जायेगा।

फ्रांसिस फुकोयामा ने यह दावा किया कि 200 साल का इतिहास गवाह है कि किस प्रकार राजतन्त्र की पराजय हुई 20वीं सदी के मध्य में फांसीवाद का पतन हुआ और 90 के दशक में सोवियत विघटन के बाद साम्यवाद समाप्त हो गया।

भूमंडलीयकरण और संस्कृति पर एक साथ विचार करते हुये कई संदेह जन्म लेते हैं, कहां भूमण्डलीयकरण का भौतिक और आर्थिक विश्व जाल और कहां संस्कृति एक अमूर्त संरचना। वैसे संस्कृति सम्बन्धी कई आलोकन–विलोकन दुनिया भर हुये हैं, परन्तु इधर उसके स्वरूप, लक्ष्य, माध्यम, मूल्य प्रणाली को लेकर कई प्रश्न उठाये जा रहे हैं– यहां तक की संस्कृति के होने पर भी शंका प्रकट की जा रही है। ऐसी परिस्थिति में यह प्रश्न सामने है कि क्या अब भी संस्कृति विमर्श प्रासांगिक है ? यह चर्चा यदि **"वसुधैव कुटुम्बकम"** या विश्व कुटुम्बवाद के सन्दर्भ में होती है, तो बात और थी क्योंकि तब तो बात होती वह दो आवधारणात्मक और अमूर्त मूल्यों पर होती लेकिन यही तो चुनौती है खासकर भारत जैसे देश की संस्कृति के सामने जिसकी जड़ें हजारों

साल पुरानी है। कितना काल बीत गया, कितने आक्रमण–संक्रमण हुये कितने आचार–विचारों की सरणियों का आवागमन हुआ, तब कहीं यदि अपनी जिजीविषा के बल पर वह बनी रही तो अवश्य ही उस पर विमर्श प्रासंगिक है। और क्या अपनी समस्त वैज्ञानिक और आर्थिक प्रगति के बाद भी मनुष्य अपने समाज और अपने अंतर्जगत से निरासक्त हो सकता है ? क्या कोई साहित्य, संगीत, चित्र, मूर्ति नृत्य, अभिनय अर्थात सृजनात्मक प्रकृति, सौंदर्यबोध, धर्म–सम्प्रदाय, आचार–विचार, दर्शन, जीवन मूल्य, जीवन व्यापार और सामाजिक, मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध से अर्थात् समग्र जीवन बोध से विरत हो सकता है ? संस्कृति इन्हीं सबकी समन्वित अभिव्यक्ति ही तो है।

"संस्कृति कोई जड़ पदार्थ नहीं है अनवरत् गतिशील चेतना है। स्व्यं भारत ने भी समय के किसी दौर में संस्कृति की जड़ नहीं होने दिया। उसकी गत्यात्मकता बनाये रखी। परन्तु यह समय हड़बड़ी का है। सभ्यताएं विचलित है, संस्कृतियाँ अपनी मौलिक विशेषताएं खो रही हैं, भाषाएं अजब विलोडन से मटमैली हो रही है, जीवन शैली में सामाजिकता का लोप हो रहा है और स्वार्थ क्रेंदित व्यक्तिवाद पनप रहा है। समाज, राजनीति और प्रकृति सब एक तरह के विपवर्यय और ध्वंस से गुजर रहे हैं। संक्षेप में भूगोल और समय का संतुलन बिगड़ गया है। यह भूमण्डलीयकरण का प्रभाव है।"[4]

---

[4] प्रभाकर क्षोत्रिय नवनीत, पृष्ठ 12–13

भूमण्डलीयकरण बाजारवाद है जो सीधे–सीधे दुनिया को न सिर्फ दो भागों में बांटता है वरन् यह भी सुनिश्चित करता है कि गरीब असमर्थ लोग और देश नेस्तनाबूंद हो जाये, ऐसे बाजारवाद में अपनी तमाम संस्कृतिक सम्पन्नता के बावजूद भारत फंस चुका है। यही बात भारत के मौलिक सांस्कृतिक चरित्र पर कुठाराघात है। उदारवाद की जगह स्वार्थवाद, संवेदना और सहकारिता की जगह निष्करूणता, एकांतिकता, सहिष्णुता की जगह गलाकाट प्रतिस्पर्धा।[5]

बाजारवाद या उपभोक्तावाद के चलते प्रकृति से हमारे सम्बन्ध लड़खड़ा गये हैं। प्रकृति हमारे लिये आदर, प्रेम और रक्षा की वस्तु थी। आज वह प्रदूषित की जा रही है, बड़े–बड़े खेतों पर माल, बहुमंजिला इमारतें और उद्योग खड़े किये जा रहे हैं। कारखानों की विषाक्त तरलता नदियों को प्रदूषित कर रही है। भाँति–भाँति की गैसों से वायुमण्डल दूषित हो चुका है। नतीजे में तरह–तरह के रोग जन्म ले रहे है, प्रकृति का सन्तुलन विगड़ गया है। भूमंडलीयकरण में 'सर्वजन सुखाय' का मानवीय सिद्धान्त जीवित रहने की कोई गुंजाइश नहीं है। भूगंण्डलीयकरण में गरीब निरंतर गरीब होता जा रहा है। गरीब से बाजार किसान से उपज और मजदूर से लाभ दूर होता जा रहा है। भूमंडलीयकरण से व्यावसायिक संस्कृति बन रही है, अब्बल तो वह औद्योगिक स्पर्धा में साधारण व्यापारियों, छोटे–मोटे उद्योगों को समाप्त करती है जो गरीब देशों के आर्थिक ढ चे के प्रतिकूल है। यदि इसे देशों की स्पर्धा के संदर्भ में देखे तो यह गरीब

---

[5] वही, पृष्ठ–14

और अमीर देशों से स्पर्धा है जिसमें गरीब देश सम्पन्न देशों के आर्थिक, बौद्धिक और सामरिक उपनिवेश बन गये हैं।

इस प्रकार देखा जाये तो भूमंडलीयकरण की इस प्रक्रिया ने उन तमाम राजनीतिक दलों एवं संगठनों के समक्ष एक चुनौती बनकर उभारा जो अपने को किसी खास धर्म, संस्कृति, सभ्यता एवं विचारधारा को लेकर चलते थे। इस प्रक्रिया ने भारतवर्ष के अन्दर जहां कम्यूनिष्टों को परेशान करके रखा है वही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के समक्ष तो धर्म संकट पैदा कर दिया। विज्ञान की मान्यता है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है, परिवर्तन निरन्तर चलता है और भूमण्डलीयकरण के इस दौर ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को कितना प्रभावित किया।

संघ और भूमण्डलीयकरण :

संघ की स्थापना 1925 को विजयदशमी के दिन नागपुर में हुई थी। संघ की जब स्थापना हुई थी तब पाँच लोगों ने मिलकर मोहिते के बाडा में संघ की शुरूआत की थी। संघ में पहले शारीरिक कार्यक्रमों को अधिक महत्व दिया जाता था। धीरे–धीरे संघ का विकास हुआ और संघ में कई तरह के परिवर्तन देखने को मिलते हैं। 1925 के संघ और आज के संघ में काफी परिवर्तन है। पहले संघ की ड्रेस में खाकी कमीज और फुल नेकर एक सैनिक की तरह वेशभूषा थी। धीरे–धीरे संघ की ड्रेस में खाकी शर्ट जगह सफेद शर्ट और फुल नेकर की जगह हाफ नेकर ले ली। वर्तमान में यह भी मांग कभी–कभी उठने लगी है कि संघ की ड्रेस पुनः बदली जाये हाफ नेकर की जगह फुल नेकर एवं रंग की वाध्यता को समाप्त किया जाय।

1925 के समय जब संघ की स्थापना हुई थी। उस समय संघ संस्थापक डा0 हेडगेवार प्रचार के स्थान पर कार्य पर अधिक जोर दिया करते थे। लेकिन वर्तमान में संघ ने अपने कार्यों को जोर–शोर से प्रचार–प्रसार शुरू किया है। संघ ने अपने कार्यों के प्रचार के लिये संघ में एक प्रवक्ता के पद का सृजन किया एवं एक प्रचार विभाग (विश्व संवाद केन्द्र) नामक एक संगठन खड़ा किया। संघ के प्रचारक आज आधुनिक सुविधाओं से लैस रहते हैं जबकि संघ संस्थापक डा0 हेडगेवार सुख सुविधाओं की जगह त्याग और परिश्रम पर जोर देते थे। यह सब परिवर्तन एवं प्रभाव भूमण्डलीयकरण के प्रभाव की देन है।

भूमण्डलीयकरण ने विचारों और बुद्धिजीवियों के विनमय में अभूतपूर्व बढोत्तरी कर दी है। यह आदान–प्रदान दो स्तरों पर हो रहा है। सेकुलर किस्म के बुद्धिजीवि राष्ट्रों की सीमा के आर–पार अपनी सक्रियता और संचार क्रांति के जरिये बहुत बड़े पैमाने पर समाज और जनता को प्रभावित कर रहे हैं। उनकी गतिविधियाँ परिवर्तनकारी प्रभाव डाल रही है। एक खास तरह का नागरिक समाज बनता दिख रहा था। भूमण्डलीयकरण की प्रक्रिया की शुरूआत के पहले से सक्रिय नये सामाजिक आन्दोलन ने भी इस प्रक्रिया की शुरूआत के पहले से उल्लेखनीय योगदान किया।

संध ने आधुनिक सुख–सुविधाओं एवं सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल अपने संघठन की वृद्धि में किया। भारतीय राजनीति ने भूमण्डलीयकरण के मुख्यतः दो तरह के जबाव दिये है इनमें पहला जवाव कट्टर हिन्दुत्ववादियों का है जिसने स्वदेशी संस्कृतिवादी पैतरा अख्तियार कर रहा है। संघ परिवार जिन दक्षिणपंथी राजनीतिक

ताकतों की नुमाइंदगी करता है, उनके संगठनों का मोर्चा 'स्वदेशी जागरण मंच' इस पहली किस्म का उदाहरण है। भूमण्डलीयकरण का जबाव देने के लिये हिदुत्ववादियों को गाँधी की जरूरत सन्निधि की तरह है, क्योंकि बिना गाँधी के उनकी परियोजनाओं के बैधता नहीं मिल सकती, बावजूद इसके कि संघ की आंतरिक क्षमता अथवा योग्यता गाँधी द्वारा की गयी पूंजीवादी के सांस्कृतिक तर्क की आलोचना के अनुकूल नहीं है।

"संघ विचार के स्तर पर भूण्डलीयकरण या आर्थिक उदारीकरण के मूल कार्यक्रम से बुनियादी मतभेद नहीं रखता। वह भूमण्डलीयकृत बाजार द्वारा प्रचलित किये गये उपभोग के तौर–तरीके के खिलाफ नहीं है, चाहे वह उत्पादक उपभोग का स्तर हो या अनुत्पादक उपभोग का। संघ तो केवल उन उपभोक्ता वस्तुओं की जगह दूसरी जिंसों को रखना चाहता है।"[6] प्रतिस्थापन की राजनीति हो उसकी चालक शक्ति है। वह उत्पादकों और ब्रांडों के स्तर पर वस्तुओं को बदल देने की रणनीति अपना रहा है।

उपभोक्ता वस्तुओं की वैकल्पिक सूचो पर नजर डालते ही यह साफ हो जाता है। कॉलगेट का टूथपेस्ट एक बहुराष्ट्रीय कंपनी का उत्पाद है, इसलिये संघ का जोर इस बात पर रहता है कि उपभोक्ता देशी कम्पनी वज्रदंती नामक टूथपेस्ट खरीदे। निश्चित रूप से इस अभियान में उपभोक्ता के स्तर पर उसकी पसंद बदले कोशिश की जाती है।

---

[6] रामैया नागराज, कट्टर हिन्दू हताश किसान, पृ0 334

भूमण्डलीयकृत उत्पादक एक सार्वभौम किस्म का उपभोक्ता बनाना चाहता है जिसकी रूचियाँ और चयन पूर्व निर्धारित होगी और इसके जबाव में संघ परिवार चाहता है कि स्थानीय स्तर पर खरीदने वाले को चयन की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। यहाँ पर संघ और भूमण्डलीयकृत उत्पादक के बीच की विलक्षण समानता सामने आती है। ग्राहक के लिये चयन की स्वतन्त्रता की मांग आर्थिक उदारीकरण की ताकतों की विचारधारा के अनुकूल है। जाहिर है संघ भूमण्डलीयकरण के 'संविधान' के तहत अपने 'मूलाधिकारों का दावा होकर रहा है।[7]

भूमण्डलीयकरण ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संस्कृतिवाद के थोथेपन को बहुत गहराई तक उजागर कर दिया जिसका प्रभाव संघ के कार्य व्यापार पर देखा जा सकता है। वास्तव में जिस संस्कृति की चर्चा संघ करता था उसका जीवन से यथार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं था। संस्कृति के नाम पर आडम्बर प्रस्तुत किया जाता रहा यही वजह है कि आधुनिक पद्धति में जब स्पष्ट बिन्दुओं को चिन्हित करके सटीक कार्ययोजना बनाने की क्रियायें शुरू हुई तो संघ अबाक जैसी मुद्रा में आ गया आज संघ में सांस्कृतिक प्रश्नों की व्याकुलता के नाम पर नकारात्मकता दृष्टिगोचर होती है। संघ यह स्पष्ट नहीं कर पा रहा कि तथाकथित भारतीय संस्कृति में कौन से ऐसे तत्व हैं जिन्हें इस भूमण्डलीयकरण की वजह से खतरा पैदा हो गया है। संघ राग अलापता है कि आज बच्चे अपनी माँ को मइया कहने की बजाय मम्मी क्यों कर रहे हैं, पिता को पापा या डैड क्यों कह रहे हैं। लेकिन यह कोई समस्या नहीं है। बड़ों के प्रति आदर

---

[7] डोड्डवेलापुरा रामैया नागराज, कट्टर हिन्दू हताश किसान, पृष्ठ 336,

छोटे के प्रति स्नेह मानव संस्कृति का एक तत्व है उसका प्रदर्शन मइया पिता कहकर भी हो सकता है, मॉम और डैड कहकर के भी चरण स्पर्श करके भी बड़ों का आदर किया जा सकता है और हैलो टाटा वॉय–वॉय करके भी।

संस्कृति का मुख्य उपादान है समाज और व्यक्ति को सभ्य बनाना जिसकी लाक्षणिकता, उदारता, दयाशीलता करूणा जैसे गुणों के विकास में प्रकट होती है मध्य युग में प्रजा के बीच अत्यन्त प्रिय और आदर्श राजा भी अपराधियों को आँख फोड़ने जैसे दण्ड की व्यवस्था करते थे। लेकिन आज का शासन कितने भी क्रूर कितने भी अदम्य अपराधी के लिये ऐसी बर्बर पाश्विक दण्ड प्रणाली का विधान नहीं कर सकते। तात्पर्य यह कि सभ्यता के प्रतिमानों पर आधुनिक व्यवस्था इस उदाहरण की वजह से निश्चित तौर पर पुरानी व्यवस्था से उन्नति प्रतीत होती है। पर संघ जिस पुराण पंथिता की बात करता है उसमें शिक्षा, सम्पत्ति, पद से सुनियोजित ढंग वचित रखे गये। शूद्र समुदाय के प्रति करूणा न दिखाकर उनके प्रति तिरष्कार दर्शाया गया है। यह सभ्यता की निशानी तो नहीं कही जा सकती और इसका अर्थ यह भी है इसे संस्कृति के रूप में प्रस्तुत करना खतरनाक सिद्ध हो सकता है। संस्कृति के सार भौम प्रतिमान गढ़े जा चुके हैं और उनकी कसौटी पर वर्ण व्यवस्था के प्रावधान विश्व समुदाय में हमें लज्जित करने का कारण बन सकते हैं। संघ इस तत्व को संज्ञान में नहीं लेना चाहता कि आज हम स्वयं भू श्रेष्ठता का दंभ–भरकर नहीं जी सकते हमें विश्व समुदाय को सम्बोधित मानकर अपने क्रियाकलापों का औचित्य उसके समक्ष सिद्ध करना है। इस तत्व को उपेक्षाकर हठधर्मिता दिखाने का कोई लाभ नहीं है सिवाय इसके कि इस

मूर्खता के चलते हम कुछ समय बाद स्वयं का अस्तित्व के संकट से घिरा अनुभव करने लगेंगे।

बाजारवाद की सबसे बड़ी बुराई यह है कि इसमें अपरिग्रह, संयम जैसी परम्परागत मूल्य प्रणाली को ध्वस्त कर दिया है और उपभोगवाद को बढावा दिया है। इससे अकेला हिन्दू या भारतीय समुदाय भी अपने को विचलित अनुभव नहीं कर रहा। विश्व के सभी समुदाय इसके खतरे को अनुभव कर रहे है। यह सचमुच एक सांस्कृतिक संकट है लेकिन दूसरी ओर यह भी सत्य है कि भारतीय संस्कृति ने अर्थ के स्थान पर अध्यात्म को महत्व दिया है। यह दावा उसके कार्य व्यवहार को कसौटी पर खरा नहीं उतरता हिन्दू संस्कृति में सर्वाधिक भव्यता और उत्साह के साथ लक्ष्मीपूजा से जुड़ा दीपावली का त्योहार मनाया जाता है। जबकि ज्ञान की अधिष्ठात्री सरस्वती के पूजन के लिये किसी उत्सव का प्रावधान नहीं है। इससे यह बात उभरकर आती है कि हिन्दू समुदाय धन और वैभव के लिये कितना ललायित रहा है। यही वजह है कि संघ अपने बौद्धिकों में आधुनिक भोगवाद के खिलाफ कितना भी दहाड़े लेकिन बाजारवाद को लेकर सशक्त प्रतिरोध में वह सक्षम नहीं है। इस मामले में उसे इस्लामिक समाज की ओर देखने की आवश्यकता है जिसके कट्टरवाद की परिणति बहुत कुछ बाजारवाद के खिलाफ उग्र प्रतिक्रिया की देन है। इस्लाम के इतिहास में यजीदवाद के खिलाफ हजरत अली का जेहाद उपभोग की संस्कृति के विरूद्ध शुरू से ही उसकी क्रियाशीलता को दर्शाता है। इस कारण आज के समय संस्कृति को बचाने के संघर्ष यह मोर्चा अत्यन्त प्रासंगिक है फिर भी हिन्दु समाज के लक्ष्मी पूजा के

माइन्डसेट की वजह से उसका लाभ नहीं उठा पा रहा है भूमण्डलीयकरण हर सन्दर्भ में अभिशाप ही नहीं है वरदान भी है। लक्ष्मी मित्तल की ब्रिटेन में सबसे ज्यादा पूंजी वाले व्यक्ति के रूप में स्थापित होने की गाथा बताती है कि ग्लोवलाइजेशन भारतीयों के लिये वरदान का भी काम किया है।

भारतीय संस्कृति के तमाम उपादान इसके चलते पुनर्जीवन का अवसर पा सके बाबा रामदेव की योग पद्धति का डंका आज सारी दुनिया में गूंजने लगा है यह इसका उदाहरण है लेकिन संघ की इसमें भी कोई भूमिका नहीं है। परम्परागत भारतीय चिकित्सा पद्धति दिनचर्या आहार पद्धति में ऐसी विशेषताएं हैं जिनसे भूमण्डलीयकरण का अवसर इस संस्कृति का वचर्स्व सारी दुनिया में स्थापित करने का निमित्ति बन सकता है लेकिन दुर्भाग्य यह है कि संघ के लोग स्वदेशी के नाम पर गुणवक्ता विहीन उत्पादों को भावुकता के भ्रमजाल में लोगो को उलझाकर उनके बीच खपाने की इच्छा रखते हैं जो स्वीकार्य नहीं हो सकता अगर कोलगेट के मुकाबले डावर नहीं चल पा रहा तो उसकी यही वजह है। यहां तक कि भारतीय अध्यात्म को भी पश्चिम से कोई खतरा नहीं है। उल्टे आज भी पश्चिम को खतरा भारतीय अध्यात्म से ही है। अगर ऐसा न होता तो रजनीश को धीमा जहर देकर हत्या कराने का उद्योग सी. आई. ए. को न करना पड़ता। यह सत्य भले हो आधिकारिक रूप से कभी स्वीकार्य नहीं किया जाये लेकिन आचार्य रजनीश की मौत के पीछे उक्त जनश्रुति पूरी तरह वास्तविक है इसकी गवाही परिस्थितिजन साक्ष्य देते हैं। रजनीश ने भारतीय अध्यात्म को वास्तविक प्रश्नों के समाधान से जोड़ा फलस्वरूप वे इतने कारगर हुये कि अमेरिका में वहां का

धार्मिक दर्शन भारतीय दर्शन के आगे बौना हो गया। संस्कृति की लड़ाई को सफलतापूर्वक लड़ने का मूलमंत्र नहीं है। जबकि संघ इससे दूर है। भूमण्डलीयकरण अच्छा है या बुरा है इसका कोई मतलब नहीं है यह भौतिक परिवर्तन का अनिवार्य परिणाम ही इसको स्वीकार्य करते हुये इसमें अपने लिये अनुकूलताएं खोजने की रणनीति बुनना ही वास्तविक कार्य व्यापार है। इसे संघ ने समझ नहीं पाया है।

अध्याय- षष्ठम्

संघ की संस्कृति की राजनीति का भारतीय राजनीति पर प्रभाव

राष्ट्रीय स्वयं सेवक एक वैचारिक संगठन है जिसके उददेश्य बहुत ही ठोस और निश्चित है। उसके अनेक ध्येय घोषित रूप से अघोषित है। राजनीतिक आदर्शवाद से प्रेरित होने के नाते सिद्धान्ततः उसके आदर्श बहुत ही बड़े हैं जो आज के भूमंडलीकरण के युग में काल्पनिक और परस्पर विरोधाभाषी भी प्रतीत होते है। संघ भारत के इतिहास, परम्परा और सभ्यता को लेकर बहुत ही संवेदनशील है और उन काल्पनिक प्रतीकों के लिए ज्ञान विज्ञान और तर्क वितर्क को एक तरफ कर सकता है।

संघ भारत की संस्कृति को विश्व की प्राचीनतम संस्कृति ही नहीं मानता बल्कि उसे आज भी जीवंत और मानवता के विकास में सहायक मानता है। उसका मानना है कि प्राचीनतम संस्कृति होने के कारण भारत का इतिहास मानवता के हर पग से जुड़ा हुआ है। विश्व के इतिहास का कोई भी प्रमुख पृष्ठ ऐसा नहीं है जो भारतीय संस्कृति से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित न रहा हो। मेसोपोटामिया मिस्र, रोम, यूनान तथा और तो और 'इन्का' और 'एजटेक' सरीखी लुप्त संस्कृतियाँ भी भारतीय संस्कृति से प्रभादित रही हैं तथा इनके प्रमाण भी है। यह एक पृथक बात है कि विश्व के सभी इतिहासकारों से उसे मान्यता न मिली हो, पर जो भी इतिहासकार भारतीय संस्कृति के प्रभाव को खोजने मैक्सिको या दक्षिणी अमेरिका के सुदूर क्षेत्रों में गये हैं वे वहाँ की लुप्त

संस्कृतियों पर भारतीयता की छाप को जानने और उसे सिद्ध करने का भी प्रयास किया है।

प्राचीन अमेरिका और भारतीय सभ्यता, कला एवं संस्कृति की समानताओं के संदर्भ में डा0 दामोदर सिंह ने अपने ग्रन्थ **'भारतीय संस्कृति और विश्व संपर्क'** में बहुत विस्तार से लिखा है। अपनी इस विश्व व्यापकता के उपरान्त भी वर्तमान में भारतीय संस्कृति अनेक कारणों से दुर्दशाग्रस्त है। इसका प्रमुख कारण है हम भारतीयों द्वारा ही अपनी संस्कृति के मूल तत्वों की उपेक्षा अनेक स्तरों पर प्रमादवश हुई है ओर अनेक बार विदेशी आक्रमणकारियों के दबाव व प्रभाव में आकर। उनका मानना है कि राष्ट्रीय अज्ञान व दिभ्रम की यह स्थिति आज हर स्तर पर है और सर्वाधिक उस वर्ग में है जो राजनीति से जुड़ा हुआ है। राजनीति से जुड़ा यह वर्ग भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्वों से न केवल अनभिज्ञ है, वरन् वह भारत के सांस्कृतिक व्यक्तित्व को पश्चिमी विचारकों की दृष्टि से ही देखना चाहता है। अधिकांश वर्तमान राजनीतिज्ञों व विचारकों की दृष्टि में भारतीय संस्कृति में ऐसा कुछ भी नहीं हो जो मानवता के प्रगति में सहायक हो और विश्व में अग्रणी बन सके। धारणा अब यह है कि यदि भारत को विश्व का नेतृत्व करना है और स्वयं को समृद्ध बनाना है तो उसे पश्चिमी मान्यताओं का अनुकरण करना ही होगा।[1]

---

[1] नरेन्द्र मोहन 'भारतीय संस्कृति' पृष्ठ 358

आर. एस. एस. व उनके चिन्तकों का यह मानना है कि भारतीय संस्कृति के संदर्भ में सर्वाधिक विभ्रम अंग्रेज इतिहासकारों व विचारकों ने फैलाया। ऐसा इसलिये किया गया जिससे भारतीय जनमानस हमेशा हमेशा के लिए अंग्रेजियत की दासता स्वीकार कर ले तथा भारत पर अंग्रेजी सत्ता का प्रभुत्व बना रह सके। भारतीय एकता और अखंडता को आज सबसे बड़ा खतरा उस अंग्रेजियत से है जिसका एक मात्र लक्ष्य भारतीय संस्कृति को लांछित करना और भारत को मानसिक स्तर पर विभाजित रखना रहा। अंग्रेजों ने भारत को पहले आर्य और द्रविड़ों में विभाजित किया, फिर उनका प्रचार रहा कि भारत में अनेक संस्कृतियाँ हैं और भारत न तो एक सांस्कृतिक इकाई है और न राजनीतिक इकाई।

संघ का आगे मानना है कि ''उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही भारत की राजनीति अंग्रेजों के दुष्प्रचार से प्रभावित होने लगी थी और शताब्दी के अंत तक तो यह दुष्प्रचार अपने पूरे रंग में आ गया।''[2] परिणाम यह हुआ कि भारत की राजनीतिक व सांस्कृतिक एकता के पक्षधर अंग्रेजी सत्ता के दबाव के कारण दुर्बल होते चले गये और स्थिति यह आ गई कि महर्षि दयानन्द स्वामी विवेकानन्द जैसे प्रसिद्ध समाज सुधारक भी भारत को मूर्च्छा से पूरी तरह न जगा सके। इस मूर्च्छा में ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ और इसके अधिकांश नेता भी अंग्रेजी सत्ता और ईसाई पादरियों द्वारा प्रस्थापित

[2] नरेन्द्र मोहन ''भारतीय संस्कृति'' पृ0 349

अवधारणाओं को सत्य अथवा लगभग सत्य मानकर स्वीकार करते रहे। बीसवीं शताब्दी में भारतीय राजनीति का प्रवेश भी अर्धमूच्छित स्थिति में ही हुआ। यद्यपि रानडे, लोकमान्य तिलक, मदन मोहन मालवीय, महर्षि आरविंद और महात्मा गाँधी सरीखे नेताओं ने अंग्रेजो की कुटिलता की कड़ी से कड़ी भर्त्सना की, पर कुल मिलाकर भारतीय राजनीति का मन संशयग्रस्त ही रहा और रह रहकर यह विचार ज्वार–भाटे की तरह उठता और गिरता रहा कि भारत की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति है भी या नहीं ?"[3]

संघ के चिन्तक भारतीय समाज को एक समाज Homogeneous मानते हैं न कि अनेक Hetrogeneous. वे भारत की मिलीजुली संस्कृति Composite Culture को कभी भी स्वीकार नहीं करते। जबकि सुभाष चन्द्र बोस और मौलाना अबुल कलाम आजाद सरीखे व्यक्ति भी यही मानते रहे कि भारत में अनेक संस्कृतियाँ रही हैं और इस राष्ट्र की अपनी कोई संस्कृति नहीं है। कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से सुभाषचन्द्र बोस ने हरिपुरा में जो भाषण दिया था, उसमें उन्होंने ही प्रतिपादित किया कि भारत में अनेक संस्कृतियाँ है। संघ सुभाष चन्द्र बोस को एक हीरो के रूप में स्वीकार करता है पर उनके विचारों को मान्यता नहीं देता है।

संघ का आगे मानना है कि सांस्कृतिक स्तर पर अंग्रेजी सत्ता ने जानबूझकर अथवा अनजाने में जो भी विभ्रम फैलाया, उससे अंततः भारतीय

---

[3] नरेन्द्र मोहन "भारतीय संस्कृति" पृ0 349

राजनीति बहुत अधिक प्रभावित होती रही और उसकी काली छाया स्वतंत्र भारत के संविधान पर भी पड़ गयी। अंग्रेजी सत्ता की इस कुटिलता की चर्चा भारत के भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री डा0 मुरली मनोहर जोशी ने अपने ग्रन्थ 'विकल्प' में बड़ी स्पष्ट रूप से की है। उनका मत है कि–"भारत बहुरंगी विविधता, विस्तृत भूगोल एवं अति प्राचीन इतिहास से उत्पन्न देश और काल के व्याप का प्रतिफल है; पर अंग्रजों ने बड़ी चालाकी से इस विविधता को पृथकता और विभेद में रूपांतरित करने का कौशल दिखाया। भाषा, क्षेत्र, पंथ संप्रदाय एवं जाति के आधार पर देश में बहुराष्ट्रवाद को प्रचारित करने का षडयंत्र रचा गया। भारतीय जीवन मूल्यों, श्रद्धा–केन्द्रों एवं मनन बिन्दुओं के प्रति आस्था खंडित करने का प्रयास किया गया। आर्य–द्रविड़, उत्तर–दक्षिण, हिंदू–मुसलमान को आपस में लड़ाये रखने एवं राज्य करते रहने की नीति को योजनापूर्वक चलाया गया।"[4] उन दिनों यह भी स्थापित किया गया कि भारत कभी भी एक राष्ट्र था ही नहीं, वह तो अंग्रेजों ने आकर इसे राजनीतिक एकता प्रदान की। प्राचीन भारत की साहित्यक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों को पश्चिम का उचिछष्ट सिद्ध करने के प्रयत्न किये गये और समूचे भारतीय जीवन को आत्मगौरव शून्य एवं आत्मविस्मृत बनाने की दुरभि संधि रची गयी। एक राष्ट्र के नाते हमारे पहचान के जितने भी तत्व हो सकते थे, अंग्रेज उन्हें पूर्णतः नष्ट करने या विकृत करने के प्रयत्न निरंतर करता रहा। अंततः उसकी इन कुचेष्टाओं की शक्तियाँ राष्ट्रीयं एकता के लिये प्रबल चुनौती के रूप में उभर

---

[4] डा0 मुरली मनोहर जोशी, विकल्प

कर खड़ी हो गई। इसके साथ–साथ अर्थलोलुप ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने भारतीय सामाजिक–आर्थिक संस्थाओं को भी नष्ट भ्रष्ट कर दिया। उन्होंने न केवल देश का आर्थिक शोषण किया, अपितु भारत की सारी अर्थव्यवस्था में विषमता के भयानक विषाणुओं का प्रवेश भी करा दिया। बेरोजगारी और दरिद्रता जैसी भयानक समस्याएं इसी में उपजीं। राष्ट्रीय एकात्मता को दुर्बल बनाने में आर्थिक विषमता का योगदान कम न्हीं हुआ करता। भूख और दरिद्र एकात्मता को नहीं, शरीर को बचाये रखने के लिये एक रोटी के सवाल को महत्वपूर्ण मानने लगता है।

संघ ने भारतीय संविधान को कभी भी मन से स्वीकार नहीं किया और उसे सर्वदा शंका की दृष्टि से देखता रहा है। उनका मत है कि भारत के सविधान निर्माताओं ने भारत का निर्माण उस मौलिक इकाई से किया जिसका नाम है 'राज्य'। और यही भूल हो गयी। इस संविधान के अनुसार 'राज्य' की अपनी एक पृथक सत्ता है, उसका अपना एक स्थायी अस्तित्व है तथा किन्हीं कारणों से विभिन्न 'राज्यों' ने मिलकर एक संघ बना लिया है, जिसका नाम है 'भारत'। जब हर राज्य की अपनी स्वायत्तता और अस्मिता है तब फिर उसकी अपनी एक पृथक पहचान व संस्कृति भी होगी ही। संविधान निर्माताओं की लगभग यही दृष्टि रही जो उस अंग्रेजियत प्रधान चिंतन की देन थी जिसके बीज लार्ड मैकाले ने बोए थे। यह बिडंबना है कि एक ओर तो यूनानी व इस्लामी आक्रमणकारियों ने सम्पूर्ण भारत को एक राष्ट्र माना और उस पर

विजय प्राप्त करने के लिये अभियान चलाया पर अंग्रेजों ने इस स्थिति को अपनी कुटिलता से बदल दिया। अंग्रेजों ने प्रारम्भ में तो सम्पूर्ण भारत को एक राष्ट्रीय इकाई के रूप में अवश्य देखा, पर पूर्णरूपेण सत्तारूढ़ होते ही उसे अनेक खंड़ों व राज्यों में बाँटकर यह प्रचार किया कि विश्व का यह भू-भाग एक राष्ट्र न होकर एक उपमहाद्वीप है तथा यहाँ अनेक राज्य और संस्कृतियाँ हैं, उनका अपना--अपना पृथक अस्तित्व है और उन्हें इस अस्तित्व की रक्षा का अधिकार है। अंग्रेजों द्वारा प्रतिपादित व पोषित इस घातक व विभाजक अवधारणा को भारत के संविधान निर्माताओं ने स्वीकार किया और इसलिये संविधान के प्रथम अनुच्छेद में यह लिखा गया कि–'भारत–अर्थात् इंडिया–राज्यों का संघ होगा। दूसरे अनुच्छेद में कहा गया–'राज्य और उसके राज्य क्षेत्र होंगे।'''[5]

डा0 मुरली मनोहर जोशी ने अपनी पुस्तक विकल्प में लिखा कि''संसार का सबसे पुराना राष्ट्र इतिहास के थपेड़ों से राज्य में रूपान्तरित हो गया। हाँ, हम हजारों साल से एक राष्ट्र चले आ रह है, वेदों के समय में भी एक राष्ट्र थे, रामायण में भी और महाभारत में भी हमारा राष्ट्रीय रूप जगजाहिर है। हम पुराणों में भी राष्ट्र है। और अशोक के समय में भी राष्ट्र ही थे। शंकराचार्य के समय में भी भारत राष्ट्र ही था। जब सेल्यूकस ने भारत पर आक्रमण किया था तब पटना से चंद्रगुप्त चला था झेलम के पार तक अपने राष्ट्र की रक्षा के लिये,

---

[5] नरेन्द्र मोहन, 'भारतीय संस्कृति' पृ0 365

राज्य को बचाने नहीं और खारबेल ने कहा था कि हमारी लड़ाई मगध से तो हो सकती है, उससे हमारे आपसी मतभेद हैं, यूनानियों की मदद लेना तो राष्ट्रघात होगा, उन जीवन–मूल्यों पर चोट करना होगा जिन्हें कलिंग और मगध दोनों ही पूजते हैं। इस देश में राज्य अनेक थे, पर राष्ट्र एक था। 1857 का युद्ध राष्ट्रीय संग्राम था; बहुतेरे राजे–रजवाड़े मिलकर लड़े थे फिरंगी से अपने जीवन मूल्यों की रक्षा के लिये। लेकिन आज भले ही हम एक राज्य बन जाने का अभिमान करते हों, पर राष्ट्र के नाते प्रतिदिन टूट रहे है विखर रहे हैं। हमने जब अपना संविधान रचा तब अपने ही हाथों स्वयं राज्य बना लिया इसलिए कहना पड़ता है कि 26 जनवरी 1950 को भारत हारा और मैकाले जीता। भारतीय दृष्टि में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है और राज्य प्रशासनिक। पाश्चात्य दृष्टि इस अंतर को नहीं पहचान पाती, वहाँ है नेशन स्टेट। किसी जाति का एक राष्ट्र से मात्र राज्य बन जाना उसका अवमूल्यन है। यही हमने किया। भारत एक राष्ट्र के नाते हार गया। 26 जनवरी 1950 को उसी दिन भारत के संवैधानिक शरीर में मैकाले का प्रेत घुस बैठा।

संघ ने जर्मन आदर्शवादी दार्शनिक और फासिवादी विचारधारा के पिता हीगल के **जीवन की विश्वात्मा धारणा** को स्वीकार किया और उसका मानना है कि 'बसुधैव कुटुंबकम्' की धारणा का प्रचार करने वाला भारत अंगेजों और तथाकथित सेकुलरवादियों के दुष्प्रचार का शिकार होकर स्वयं ही अपने मूल्य छोड़ बैठा और सांस्कृतिक रूप से विखर गया। यह सांस्कृतिक विखराव आज

भी राजनीति में हर स्तर पर दिखायी दे रहा है। आज संघ हीगल के उस महान और काल्पनिक आदर्शवाद को नहीं बचा पाया और सामाजिक–सांस्कृतिक–आर्थिक परिस्थितियों ने उसके विचारों पर करारा प्रहार किया है।

विगत वर्षों से देखा जा रहा है कि संघ अब कमजोर पड़ा है पिछले दस वर्षों में संघ का जितना राजनीतिक प्रयोग भाजपाईयों ने किया उसका परिणाम है कि संघ का जादू कम पड़ा है। उ0 प्र0 में संघ की भूमिका **'पंच परमेश्वर'** की तरह हो गयी है और जब तत्कालीन नगर विकास मंत्री लालजी टंडन और लखनऊ के तत्कालीन मेयर डा0 एस0 सी0 राय आपस में झगड़ा करते तो अदालत केशव भवन में ही लगती।[6] जिलों–जिलों में संघ की शाखायें व कामकाज बढ़ाने के लिये तैनात संघ के जिला प्रचारक, तहसील प्रचारकों ने तो अपना चेहरा व चरित्र ही बदल डाला। वे जिलों में भाजपाईयों की पंचायतें करने लगे। उनके दरबार लगाते तथा यह तय करते कि तत्कालीन भाजपा सरकार का कोई मंत्री उनकी अनुमति के बिना दौरा करेगा या नहीं। राजधानी व सचिवालय उन्हें प्रिय लगने लगे। इससे उनके गाँव के दौरे प्रभावित हुये। भाजपा के सत्ता में आने के बाद संघ के नेता चमचमाती कारों में चलने लगे। कार का ए0 सी0 यदि काम नहीं करता तो उन्हें एतराज लगा। सत्ता का नशा उनके सर चढ़ गया और संस्कृति और सभ्यता का आदर्श उन्हें जरा भी

---

6 हिन्दुस्तान 7/10/2000

प्रभावित नहीं करता। यह अलग बात है कि संघ नेता बार–बार यह दावा करते है कि संघ समाजसेवी संगठन है राजनैतिक नहीं।

देखा जाये तो स्वाधीनता के पूर्व कांग्रेस राष्ट्रीय राजनीति की मुख्यधारा रही जिसमें सांस्कृतिक मुद्दे स्वतः समाहित थे। संघ के संस्थापक नेता भी लंबे समय तक कांग्रेस की छत्रछाया में काम करते हैं। वीर सावरकर द्वारा हिन्दू महासभा के गठन के बाद सांस्कृतिक मुद्दों पर उग्र राजनीति की झलक पहली बार कौंधी जिससे कांग्रेस को कुछ असुविधा हुई लेकिन सांस्कृतिक मुद्दों पर स्वतन्त्र राजनीति का माहौल आजादी के कई वर्षों तक नहीं बन पाया। 1948 में महात्मा गाँधी की हत्या होने पर कांग्रेस सरकार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबन्ध लगाया लेकिन इस कदम से उसके हिन्दू जानाधार पर कोई फर्क नहीं पड़ा। महात्मा गाँधी की छवि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय नेता होने के साथ एक सनातनी हिन्दू के रूप में भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से बहुत भारी थी। पाकिस्तान को मुआवजा दिलाकर उन्होंने जो उदारता दिखायी उसे संघ ने बर्दास्त नहीं किया। पर संघ के इस प्रचार से महात्मा गाँधी के प्रति धर्मनिष्ठ हिन्दू जनता की श्रद्धा में कोई अन्तर नहीं आया। गाँधी को उनके पहनावे भजनों पर आधारित राजनीति संदेशों की शैली व संयमित सादगी के जीवन पर बल देने की उनकी प्रतिबद्धता की वजह से संप्रेषियता कुछ इस तरह की थी कि लोगों में स्वतः स्फूर्त ढंग से उनके लिये महात्मा का संबोधन निकल पड़ा था।

देश की आजादी के बाद गाँधीवादी सरदार पटेल ने सोमनाथ मंदिर का जोर्णोद्धार कर हिन्दूवाद के पर्याय रूप में गाँधीवाद को ओर अधिक मजबूती प्रदान की जवाहर लाल नेहरू की आधुनिक विचारधारा के बावजूद कांग्रेस सरकार ने आचरण में धर्मनिरपेक्षता से परे हटकर सदैव सरकारी आयोजनों में हिन्दू कर्मकाण्डों को वैधता प्रदान की गयी। कांग्रेस के लंबे शासन काल में हर उद्घाटन शिलान्यास में वैदिक रीति–रिवाजों को प्रमुखता प्रदान की गयी। इसी का नतीजा था कि कांग्रेस के प्रति अरूचि होते हुये भी 1984 तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को मजबूरी में कई बार कांग्रेस को चुनावी पैतरणी पार कराने में सहयोग देना पड़ा। लेकिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के राजनैतिक प्रकरण के बाद इसके उपरान्त रामजन्म भूमि आन्दोलन ने राजनीति की इस नयी विचारधारा की पहचान को और सशक्त करने का काम किया और कांग्रेस अंतर्विरोध में उलझती चली गयी। 1989 में केन्द्र व कई राज्यों में उसकी सरकार का तंबू उखडा तो यह 1977 के सत्ता परिवर्तन से अलग तरह की परिघटना थी। जनता दल को सरकार ने अपनी जो छवि बनायी खासतौर से रामजन्म भूमि आन्दोलन को लेकर मुलायम सिंह के आक्रामक अभियान में एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी जिससे बहुसंख्यक हिन्दू समाज में यह विश्वास घर कर गया कि अगर अभी सजग नहीं हुये तो सत्ता ऐसी ताकतों के कब्जे में चली जायेगी जो हिन्दू संस्कृति के मान मरदन की इच्छुक है। कांग्रेस से अलग हटकर नया मंच तैयार करने की यह आकांक्षा राजीव गांधी की दुखद हत्या के

बाद हिन्दू जनमानस में और प्रबल हुई। हालांकि अप्रत्क्ष रूप से प्रधानमंत्री बने नरसिंहराव सरकार के क्रिया कलापों से हिन्दुओं के इस उद्देलन में कुछ ठहराव आ गया तो भी दूरगामी दृष्टि से नये मंच को ताकतवर बनाने की सुगबुगाहट जारी रही और इस उथल–पुथल में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गयी।

जब भाजपा ने केन्द्र में सत्ता संभाली उस समय संघ का भाजपा में हस्तक्षेप काफी हद तक बढ़ गया। "जब किसी भाजपाई को जुकाम हुआ तो वह दवा की तलाश में संघ के दवाखाने में जाता था। हर भाजपाई को यह विश्वास था कि संघ के दरवाजे में हर मर्ज का इलाज है। किसी को भाजपा में शामिल करना है तो संघ से बात कर लो। यदि भाजपा के नेताओं में या भाजपा के अन्दर कोई विवाद है तो संघ की शरण में जाओ। कोई महत्वपूर्ण निर्णय लेना है तो संघ मुख्यालय जाकर कुछ घंटे गुफ्तगू जरूरी होती थी। टिकट पर दावा करने के पूर्व भाजपाई अब भी कहते हैं कि चलो मन्दिर हो आये, चुनाव तैयारी करनी है तो फिर संघ के नेताओं के निर्देश की प्रतीक्षा होती थी। पार्टी के सामने जब अभूतपूर्व संकट आ गया तो आम भाजपा कार्यकर्ता से लेकर मीडिया तक में यह चर्चा चलती थी कि संघ हस्तक्षेप करेगा।"[7]

[7] हिन्दुस्तान 7/10/2000 पंच के यहां बढ़ रहे प्रपंच

ांघ का राजनीति से सम्बन्ध सामूहिक तथा व्यक्तिगत राजनीति :

"संघ की स्थापना के पूर्व संघ संस्थापक डाक्टर हेडगेवार 'राष्ट्रीय मंडल' नामक संस्था जिसमें मध्य प्रान्त के महारथी डा० बा० शि० मुंजे, श्री नीलकण्डराव, नारायण राव, ओगले, विश्नाथराव केलकर, डा० रांजये आदि लोग शामिल थे। इन सबका सहयोग डा० हेडगेवार भी करते थे। इस संस्था का कांग्रेस के ऊपर इतना प्रभाव था कि जो बात यह मण्डल निश्चित करता था कांग्रेस उसे ही स्वीकार करके चलती थी। यद्यपि डा० हेडगेवार राष्ट्रीय मंडल के साथ काम कर रहे थे फिर भी वे उसकी सदस्यता स्वीकार नहीं की थी। डा० मुंजे के प्रेम के कारण प्रारम्भ में हेडगेवार ने मण्डल द्वारा आयोजित सभा बैठकों आदि में भाग लिया। अन्त में डाक्टर हेडगेवार ने राष्ट्रीय मंडल के साथ काम कर रहे थे फिर भी वे उसकी सदस्यता स्वीकार नहीं की थी। अन्त में डाक्टर हेडगेवार ने राष्ट्रीय मंडल के कुछ लोगों के सहयोग से "नागपुर **नेशनल यूनियन**" नाम से एक नयी राजनैतिक संस्था स्थापित की। इसमें श्री बोबडे, श्री विश्वनाथ राव केलकर, श्री बलबन्त राम मण्डलेकर, श्री चोरघड़े, आदि मित्र साथ आ गये थें।"[8]

26 दिसम्बर 1920 को कांग्रेस का अधिवेशन जो नागपुर में हुआ था उसमें डा० हेडगेवार, डा० परांजये ने अधिवेशन की व्यवस्था में अथक परिश्रम किया था। 1922 में डाक्टर हेडगेवार को प्रान्तीय कांग्रेस के लिया चुना गया

---

[8] राकेश सिन्हा, डा० केशव बलिराम हेडगेवार, पृ० 32

तथा वे उसके सहमंत्री बनाये गये। इस पद पर काम करते हुये उन्हें पग–पग पर अनुशासन की कमी खटकती थी। उसे दूर करने के लिये उन्होंने कांग्रेस के अन्दर ही एक संघटन खड़ा करने का प्रयत्न किया। किन्तु इस कार्य में उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली।[9]

नागपुर अधिवेशन के उपरान्त कांग्रेस में दिन–प्रतिदिन गाँधी जी का प्रभाव बढ़ता गया तथा उसके सूत्र उनके असहयोग–आन्दोलन की आन्तरिक स्थिति देखकर काफी चिन्तित थे तथा नया रास्ता खोजने का प्रयास कर रहे थे। किन्तु यह नया रास्ता मिलने तक उन्होंने अपने सहयोगियों को यही सूचना दे रखी थी कि स्थान–स्थान पर कांग्रेस के सूत्र अपने ही हाथों में रखे जायें। जब राजा लक्ष्मणराव भोंसले ने हिन्दूमहासभा की घोषणा की तो महासभा में मंत्री का दायित्व डा0 हेडगेवार को सौंपा गया।

कांग्रेस के बढ़ते मुस्लिम प्रेम के कारण डा0 हेडगेवार ने हिन्दू हितों की रक्षा के लिये एक अलग संगठन बनाने का विचार किया। डाक्टर हेडगेवार के मन में संघ की कल्पना निश्चित हो चुकी थी। अब उसे विचार से व्यवहार जगत में लाना था। इसका सूत्रपात उन्होंने विजयदशमी के शुभ मुहूर्त पर करने का तय किया। 1925 को विजयदशमी के दिन संघ की स्थापना हुई। डा0 हेडगेवार ने संघ को राजनीति से दूर रखा। उन्होंने अपना पूरा समय संघ के विस्तार में लगाया। डा0 हेडगेवार की मृत्यु के पश्चात संघ की कमान माधवराव

---

[9] न. हा. पालकर, डा0 हेडगेवार चरित्र पृ0 136

सदाशिवराव गोलवलकर उपाख्य **"गुरूजी"** के हाथों में आ गयी। जहां हेडगेवार ने संघ स्थापना के बाद भी हिन्दू महासभा से सम्बन्ध बनाये रखे थे वहीं गोलवलकर ने संघ को हिन्दू महासभा से अलग रखा।

देश आजाद होने के पश्चात संघ पर गाँधी हत्या का आरोप लगाया गया और संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। संघ पर लगे प्रतिबन्ध को हटाने के सवाल पर सरदार पटेल ने गुरूजी से कहा था कि संघ के लोग कांग्रेस में शामिल हो जाये और उसके माध्यम से देश–सेवा करे।[10] तब संघ की ओर से असमर्थता व्यक्त की गयी थी। राजनीति के बारे में गोलवरकर का मानना था कि संघ राजनीति से परे है। इसका मतलब यह नहीं है कि राजनीति से उसे कुछ लेना देना नहीं है। राजनीति समाज जीवन का अंग है, अंगी समाज है। समाज के सभी अंग ठीक, सुदृढ़, निर्दोष और परस्पर सामंजस्य से चलने वाले हो, यही संघ की अभिलाषा है। अतः राजनीति को सही रास्ते पर चलना चाहिए, संघ की यह अपेक्षा है।

"डा0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी नेहरू मन्त्रिमंडल से इस्तीफा देकर गोलवलकर से मिले और उनसे कहा कि मैं **भारतीय जनसंघ** नाम से एक राजनीति दल प्रारम्भ कर रहा हूँ, क्योंकि मुझे लगता है कि आज हिन्दुस्तान में जितने राजनीतिक दल हैं, उनका यहां की धरती से, संस्कृति से कोई सरोकार नहीं है। इसलिये मैं ऐसा राजनीतिक दल आरम्भ करना चाहता हूँ जिसकी

---

[10] डा0 भाई महावीर (प्राञ्जन्य) अप्रैल 2003, पृ0 50

प्रेरणा भारत भूमि हो, विदेशी न हो और जो भारतीय संस्कृति और मर्यादा के आधार पर देश की राजनीति का संचालन करे। डा0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी चाहते थे कि संघ भारतीय जनसंघ का समर्थन करेगा।"[11] तब गोलवलकर ने कहा था कि "भारतीय जनसंघ एक राजनीतिक संगठन है और संघ का उद्देश्य समाज के युवाओं में अनुशासन और चरित्र निर्माण करना तथा हिन्दुत्व को शक्तिशाली बनाना। इसलिये संघ किसी राजनीतिक संगठन से नहीं जुड़ेगा। जनसंघ के बारे में गोलवलकर ने कहा था कि मैं स्वयंसेवकों से इतना आग्रह कर सकता हूँ कि जो राजनीति में रूचि रखते हैं वे जनसंघ को सहयोग दें। बाद में गोलवलकर ने प्रमुख संघ कार्यकर्ताओं को राजनीति क्षेत्र में कार्य करने के लिये भेजा इनमें नानाजी देशमुख (उ0 प्र0), कर्नाटक में जगन्नाथ राव जोशी, पंजाब में डा0 भाई महावीर, राजस्थान में सुन्दर सिंह भंडारी, मध्यप्रदेश में कुशाभाऊ ठाकरे, केरल में पी0 परमेश्वरन जैसे प्रमुख संघ कार्यकर्ता संगठनमंत्री के रूप में भारतीय जनसंघ में गये।"[12] पर बाद में राजनीतिक क्षेत्र में गये संघ कार्यकर्ता पथ विचलित होने लगे तब गोलवलकर ने टिप्पणी की थी कि "राजनीति के गंदे नाले को शुद्ध करने की दृष्टि से हमने कुछ अपने बन्धुओं को राजनीति में भेजा था। किन्तु दुःख की बात यह है कि अपने वे बन्धु उस गंदे नाले को साफ करने के स्थान पर उसी नाले में स्नान करने लगे।"[13] आगे

---

[11] डा0 भाई महावीर, (पांञ्जन्य) अप्रैल, 2003 पृ0 50
[12] लालकृष्ण आडवाणी, (पाञ्जन्य), 06-04-2003
[13] रामफल बंसल, पाञ्चजन्य अप्रैल 2003 पृ0 57

चलकर जनसंघ का विलय जनता पार्टी में हो गया। जनता पार्टी केन्द्र की सत्ता पर काबिज हो गयी लेकिन जनसंघ के कार्यकर्ताओं का संघ के प्रति अधिक लगाव होने के कारण जनता पार्टी का दोहरी नागरिकता के सवाल पर विखराव हो गया। और फिर 1980 में **भारतीय जनता पार्टी** के नाम से नया राजनीतिक दल बना जिसको संघ का आर्शीवाद प्राप्त था।

संघ के तृतीय सरसंघचालक बालासाहब देवरस ने भी स्वीकार्य किया था कि संघ बिल्कुल गैर राजनीतिक नहीं रह सकता। "गैर राजनीतिक रहने से उनका मतलब था कि सत्ता और चुनाव की राजनीति से परे रहना। लेकिन राजनीति अगर जीवन के सभी अंगो को स्पर्श करती है तो फिर गैर राजनीतिक रहना बड़ा मुश्किल है।"[14]

वर्तमान समय में संघ और भाजपा के संघ के बीच जो झीना पर्दा था वो भी उठ गया है। "अब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ खुलकर राजनीति में आ गया है। 2004 के लोकसभा चुनाव में संघ के पदाधिकारी भाजपा का खुलकर सहयोग किया। संघ के शीर्ष पदाधिकारियों को अब न तो भाजपा की बैठकों में सम्मिलित होकर प्रत्याशियों की चयन प्रक्रिया में हिस्सेदारी से परहेज है और न भाजपा के लिये वोट मांगने में। अलवत्ता मीडिया से उनका परहेज बिल्कुल पहले जैसा बरकरार है। अभी तक संघ सार्वजनिक तौर पर राजनीति से नाता जाहिर नहीं होने देता था। उसकी तरफ से यह भी दावा होता था कि राजनीति

---

[14] बाला सहाव देवरस हिन्दू संगठन और सत्तावादी राजनीति पृ0 213

का काम भाजपा का है। जहां तक संघ का सवाल है तो वह सांस्कृतिक संगठन है। उसका काम राजनीति, नहीं, हिन्दुत्व की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर भारत को हिन्दू राष्ट्र बनाना है।

संघ पहले भी जनसंघ और भाजपा की मजबूती के लिये चिंता किया करता था। चुनाव के दौरान **जागरूक मतदाता मंच** बनाकर संघ के स्वयंसेवक भाजपा के पक्ष में माहौल तैयार करते थे। संघ के शीर्ष पदाधिकारी भाजपा और संघ परिवार के बीच समन्वय व संवाद कायम रखने का भी काम किया करते थे। पर यह सब काम वे परदे के पीछे करते थे। लेकिन ये सब बातें अब गुजरे जमाने की हो चुकी हैं।

संघ के प्रदेश से लेकर राष्ट्रीय पदाधिकारियों तक को अब राजनीति से परहेज नहीं रहा। इसका उदाहरण 2004 के लोकसभा चुनाव की तैयारी के सम्बन्ध में 5 मार्च को संघ के सरकार्यवाह मोहन भागवत और मदन दास देवी ने प्रधानमंत्री अटल विहारी वाजपेयी से चुनावी विचार–विमर्श किया। 31 मार्च को ही लखनऊ में संघ के प्रमुख पदाधिकारी ने लोकसभा चुनाव में भाजपा की स्थिति की समीक्षा की तथा संभावित दावेदारों के नाम पर भी विचार किया। अब संघ के पदाधिकारियों को दिल्ली से लेकर लखनऊ तक भाजपा नेताओं के यहां बैठकें करने में न कोई संकोच है और न हिचक, अब तो वे विशुद्ध भाजपाई आयोजनों में शामिल होने लगे हैं।[15]

---

[15] अखिलेश वाजपेयी "अमर उजाला" 07/03/2004

वर्तमान समय में संघ का राजनीति मे हस्तक्षेप इतना बढ़ गया है कि जिसकी कल्पना डा0 हेडगेवार और गुरूजी ने कभी सोची भी नहीं होगी आज संघ और भाजपा के लिये उक्त पंक्तियाँ सटीक बैठती हैं–

नारी बीच साड़ी है, साड़ी बीच नारी है
नारी है कि साड़ी है, साड़ी है कि नारी है।

जो सम्बन्ध नारी और साड़ी के बीच में है वही सम्बन्ध संघ और भाजपा के बीच में है।

अध्याय- सप्तम्
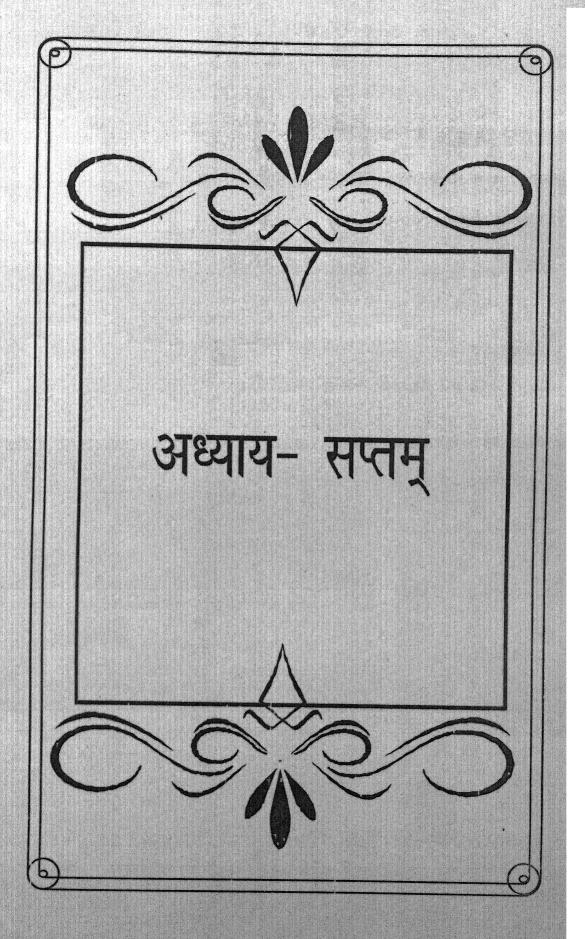
उपसंहार

1925 में अपने जन्म के पश्च त से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शक्ति में निरन्तर वृद्धि हुई है। इसके बावजूद आजादी के बाद से सभी सरकारें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ विरोधी रही है, वे कौन–कौन से कारण है जो तमाम विरोध के बावजूद आर. एस. एस. को पल्लवित और पुष्पित करते है। यहां तक कि 1995 के बाद भारतीय राजनोति में आर. एस. एस. अपने राजनीतिक संगठन भाजपा के माध्यम से केन्द्र सरकार में सत्तारूढ़ होने के साथ साथ अनेक प्रान्तों में सत्ता में आयी। तमाम राजनीतिक उतार चढ़ाव के बावजूद भी भाजपा राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तरांचल, हिंमाचल प्रदेश, कर्नाटक इत्यादि में इनकी सरकार है और बिहार औरं पॅजाब में सत्ता में प्रमुख सहयोगी दल के रूप में है। इससे यह साबित होता है कि आर. एस. एस. की मौजूदगी तब तक रहेगी जब तक निम्नलिखित कारण भारतीय राजनीति में विद्यमान रहेगें।

इण्डिया बनाम भारत, शहर बनाम गाँव, सम्पन्नता बनाम विपन्नता, सवर्ण बनाम अवर्ण अमीर बनाम गरीब क्षेत्रीय सम्पन्नता बनाम क्षेत्रीय विपन्नता असमानता अनन्त अनादिकाल से जकड़ी हुई वर्णवादी व्यवस्था, अवैज्ञानिक विचार एवं अन्धविश्वासों का निरन्तर प्रचार–प्रसार आरक्षण से उत्पन्न असन्तोष और नौजवानों में असुरक्षा का प्रबल बोध सवर्ण जाति के नवयुवकों में आमदनी के स्रोतों का सिकुड़ना और विकराल बनी बेरोजगारी इत्यादि समस्याओं का जबतक तर्कसंगत समाधान नहीं प्रस्तुत किया जाता तब तक

आर. एस. एस. जैसे भाववादी संगठन के लिए जमीन बनी रहेगी। वास्तविक राजनीति के प्रतिपादन के लिए भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। जब तक जातीय और साम्प्रदायिक बन्धन ढीले नहीं होंगे और इनमें गतिशीलता शुरू नहीं होगी तब तक आम आदमी की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में बदलाव नहीं आयेगा।

यथार्थ में देखा जाए तो धर्मनिरपेक्षतावादी चिन्तक विरोध के लिये विरोध कर रहे हैं। जबकि ये लोग स्वयं उपरांक्त प्रश्नों से कटे हुए हैं। ये स्वयं जाति, सम्प्रदाय, भाषा आदि के खेमों में बॅटे हुये हैं। कम्युनिष्ट अपनी बंगाली और मलयाली पहचान से मुक्त नहीं होना चाहता। शरद पवार के नेतृत्व में राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी मराठी राष्ट्रवाद से मुक्त नहीं होना चाहती वहीं पर लालू प्रसाद यादव या मुलायम सिंह यादव अपनी जाति से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। कांग्रेस स्वयं ब्राह्मणवाद, जातिवाद, परिवारवाद के बन्धनों से मुक्त नहीं हो पा रही है। यह बात स्पष्ट करती है कि उन मूल सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक प्रश्नों को बिना हल किये हुये, जो आर. एस. एस. को खाद पानी और अनुकूल वातावरण दे रहा है, आर. एस. एस. का विरोध बेमानी सिद्ध होगा।

जो सांस्कृतिक प्रश्न हैं वे मानव प्रवृत्ति की मौलिक धारणाओं की उपज होते हैं। विश्व का कोई समाज ऐसा नहीं है जो इन प्रश्नों को तमाम आधुनिकता के बावजूद दरकिनार कर पाया हो। लोकतंत्र के जनक ब्रिटेन में राजशाही को आज तक क्यों मान्यता बरकरार है इसका कोई तार्किक औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। अमेरिका में सवा दो सौ वर्ष से अधिक

की लोकतांत्रिक व्यवस्था के बावजूद हिलेरी क्लिंटन जैसी शख्सियत भी महिला होने के कारण राष्टपति पद तक की उम्मीदवारी तक में भी पिछड़ जाती है। क्या इसका कोई विवेक सम्मत कारण बताया जा सकता है। फ्रांस के नस्ली दंगें उसकी आधुनिक सोच की पोल खोल कर रख देते हैं। आरएसएस की प्रासंगिकता, उसके दूरगामी अस्तित्व व भारतीय राजनीति पर उसके प्रभाव का मूल्यांकन करना है तो उक्त मुददों के इर्द गिर्द रह कर ही अपनी पड़ताल करनी होगी।

इसी के साथ भूमंडलीयकरण के दौर में पारम्परिक विश्वासों के साथ व्यवसायिक बाध्यताएँ कैसे काम कर रहीं हैं यह देखना दिलचस्प होगा। कुछ ही दशक में दुनिया के लौह सम्राट(Steel King) बने और इंग्लैंड के सर्वाधिक सम्पन्न उद्योगपति में शुमार हुए लक्ष्मी मिततल क्या कोई कम आस्थावान व्यक्ति हैं। बताया जाता है कि वे अपनी दिनचर्या की शुरूआत ईष्टदेव की लम्बी आराधना के साथ करते हैं। लेकिन उनके विश्वासों के मुताबिक दिशाशूल होने के बावजूद उन्हें कोई उस जगह जाने से नहीं रोक सकता जहाँ पर किसी बन्द पड़ी स्वील फैक्टी का टेन्डर हो रहा हो। भूमंडलीकरण ने व्यवसायिक जगत में सारी दुनिया में भारतीयों को अपना परचम लहराने का जो अवसर प्रदान किया है उससे सोच के स्तर पर उनमें कई गतिरोध तोड़े हैं और इसके चलते भारतीय थोथी भावुकता से उबर कर व्यवहारिक तकाजों के अनुरूप फैसला करने की कार्य पद्धति में अपने को ढालने के योग्य बना रहे हैं।

अंग्रेजी के प्रश्न पर आरएसएस का व्यवहार स्वयं में इसका उदाहरण है। संघ से मार्गदर्शन लेने वाली भाजपा की राज्य सरकारों ने प्राथमिक स्तर तक पर अँग्रेजी को अनिवार्य कर दिया जबकि उससे यह उम्मीद की जाती थी कि सांस्कृतिक प्रतिबद्धता में भाषा का सीन अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है जिसकी वजह से आरएसएस हिन्दी का वर्चस्व सीपित करने के लिए पूरी जान लगा देगी। चूँकि आरएसएस वैश्य जजमानियों की कृपा पर चलने वाला संगठन है जिसकी वजह से यथार्थ से उसका परिचय किसी और सांस्कृतिक संगठन से अधिक है। इस कारण उसने भाषायी हठधर्मिता दिखाने की कोई गलती नहीं की ।

दोहरी शिक्षा प्रणाली के खिलाफ आन्दोलन छेड़ने वाले समाजवादी थे, कम्युनिष्ट भी वैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली की वकालत करते है लेकिन ये शास्त्रिय कवायद तक सीमित रहे जबकि आरएसएस ने विद्याभारती समूह के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में जो वैकल्पिक प्रयास किये वे इस कारण असरदार माने गये कि मेरिट में इनके द्वारा संचालित स्कूलों के बच्चों ने अच्छा सीन पाया जिसके चलते कम्युनिष्ट परिवारों तक ने अपने बच्चों का प्रवेश इन विद्यालयों में कराया।

देखा जाये तो 80 साल में संघ आलोचनाओं के कितने ही समुद्र पार कर इतना शक्तिशाली हो चुका है कि उसकी संतान भारतीय जनता पार्टी केन्द्र की सत्ता पर अपना कब्जा जमाया। आलोचनाओं से न उसका आत्म विश्वास डिगा, न ही लक्ष्य भटका और तीन बार पाबंदी के बावजूद भी न उसके पैतरे बदले और न ही। अल्पसंख्यों के प्रति आये अपने

बदलाव के बावजूद भी यदा कदा उनके प्रति उसका आक्रमक अंदाज छुपाये नहीं छुपता।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आनुषांगिक सांगठनों से उत्पन्न संगठनों ने संसार भर में हिन्दुत्व की प्रतिनिधि प्रवक्ता बन कर बैठ गयीं हैं और उसके आलोचक कागजी घोड़ों पर बैठकर बयानों की तलवार ही ताने रह गए। लम्बे समय तक संघ आलोचनाओं की आँधी से बचने के लिये अकेले और चुपचाप विचारधारा का खम्भा पकड़े रहता था। परन्तु कोयंबटूर बम विस्फोट का आरोप लगाने वाले कांग्रेस के पूर्व अध्यक्ष सीताराम केसरी को अदालत में खीचकर और पचहत्तरवें साल में पहली बार प्रवक्ता की नियुक्ति का मतलब साफ हो गया कि संघ आलोचकों से सिर्फ अंताक्षरी खेलकर सन्तुष्ट रहने के लिए तैयार नहीं था।

लम्बे समय तक संघ के विरोध और समर्थन की सीमाएं बहुत साफ थी। संघ का समर्थन मतलब ज्यादातर लोगों की दृष्टि में घृणित साम्प्रदायिक सोच का शिकार होना था। परन्तु विरोध की दीवारें दरकने लगी। इन दीवारों को संघ की जगह उसकी राजनीतिक संतान पहले जनसंघ और फिर भारतीय जनता पार्टी ने दरकाया। चाहे 1967 की संविद सरकारे हो, जिनमें भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी तक शामिल थी या 1977 की जनता पार्टी की सरकार। यह विचित्र है कि जिस सरकार को 1979 में दोहरी सदस्यता के नाम पर गिराया गया हो, उसी दोहरी सदस्यता की दहाड़ लगाने वाले जार्ज फर्नांडीस से लेकर ज्यादातर समाजवादी राष्ट्रीय

जनतांत्रिक गठबन्धन के सिरहने खड़े पंखा तो भाजपा को कर रहे है, परन्तु उसकी हवा सीधे संघ को बिस्तर का सुख दे रही है।

यह विचित्र बात है कि संघ ने पहले जनसंघ और अब भाजपा से अपने सीधे सम्बन्धों को कभी ईमानदारी से स्वीकार नही किया। जबकि जनसंघ की स्थापना का बीज गांधी जी की हत्या के बाद संघ पर लगे प्रतिबन्ध काल में रोपा गया। संघ ने एक तरफ अपने संविधान में खुद को शुद्ध सांस्कृतिक संगठन बताया। दूसरी ओर प्रतिबन्ध की राजनीति से मुकाबले के लिये जनसंघ की स्थापना कर डाली। अपने स्वयंसेवकों को वह जनसंघ और अब भाजपा में भेजकर राजनीति पर परोक्ष लगाम भी रखता है। खुद पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी, पूर्व गृहमंत्री लालकृष्ण अण्डवानी संघ के प्रचारक रह चुके है। जब घोड़ा ज्यादा मजबूत हो जाए तो लगाम भी उतनी कारगर नही रहती। वाजपेयी के मामले में भी यही सिद्ध हुआ। है।

संघ के ऊपर मात्र प्रतिबन्ध लगाने संघ कमजोर नहीं हुआ है बल्कि न्यूटन का सिद्धान्त यथा प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, संघ के ऊपर चरितार्थ होता है और क्रमशः संघ अत्यधिक शक्तिशाली बन कर ही उभरा है। इसी के साथ मात्र कानूनी माध्यम से भी इससे नहीं लड़ा जा सकता। संघ के प्रति छूआछूत की भावना को त्यागना होगा और उसको समझने के लिए उसकी संस्कृति की राजनीति के निहितार्थों, अन्तर्द्वन्दों और गहन वैचारिक विमर्श को समझना होगा। उसके साथ खुलकर संवाद करना होगा। उसके अन्तस को समझना होगा। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो भारतीय

राजनीति की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ पर खुले मन से विचार करना होगा। इन तमाम अन्तर्विरोधों के बीच समानता के प्रश्नों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। वर्णवादी व्यवस्था से उत्पन्न सामाजिक खाई पर विचार करना होगा। इसी के साथ आर्थिक सम्पन्नता और विवशता दोनो पर ईमानदारी से विचार करना होगा।

कानून के माध्यम से लड़ने का परिणाम संघ परिवार को बलवान बनाने में ही सामने आयेगा क्योंकि संघ समाज के बीच खड़ा है, उसके कार्यकताओं का बल उतना ही बढ़ेगा, जितना उनका दमन किया जायेगा। मात्र कानून बनाकर और उस पर प्रतिबद्ध लगाकर संघ को न तो समझा जा सकता और न ही उसका उचित जवाब ही दिया जा सकता है। भूमंडलीकरण के दौर में जहाँ विश्व एकीकृत हो रहा है, जहाँ विश्वग्राम की कल्पना की जा रही है, जहाँ राष्ट्रीयता के बन्धन ढ़ीले पड़ रहे हैं उसका संघ पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। आज संघ स्वयं महिलाओं के बारे में अपने विचारों का मूल्यांकन करना चाह रहा है। यह अलग बात है कि अभी भी वह संघ को महिलाओं के लिए खोलने के लिए तैयार नहीं है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है पर परिवर्तन के चक्र को तेजी से आगे बढ़ाने के लिए धर्म निरपेक्षतावादी दलों, अन्य तार्किक और वैज्ञानिक सोच के लोगों को **संघ की संस्कृति की राजनीति** को ही नहीं वरन् इस प्रकार के अन्य दलों जैसे अकाली दल, मुस्लिम लीग व अन्य क्षेत्रीय पहचान पर राजनीति करने वालों लोगों और दलों को समझना होगा और उनको सर्वमान्य वैकल्पिक वैचारिक व्यवस्था के लिए तैयार करना होगा।
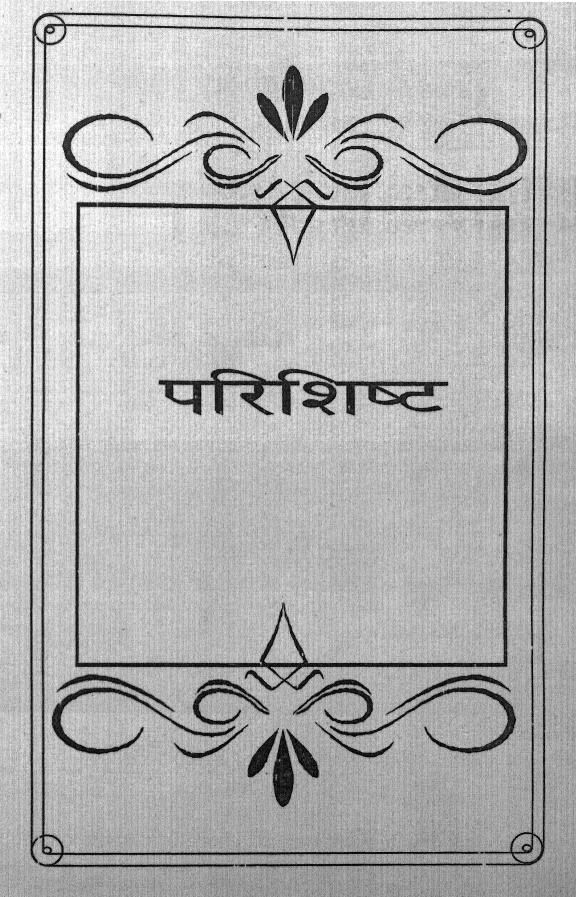
परिशिष्ट

परिशिष्ट

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संविधान :

प्रस्तावना :

यतः देश की विगठित अवस्था में,

(क) हिन्दुओं में से सम्प्रदाय, मत, जाति तथा पंथ के भेदों तथा राजनीति, अर्थनीति, भाषा एवं प्रान्त सम्बन्धी विभिन्नताओं से उत्पन्न प्रवृत्तियों को दूर करने

(ख) उनको अपने अतीत की महानता का ज्ञान कराने,

(ग) उनमें सेवा, त्याग एवं समाज के प्रति निःस्वार्थ भक्ति का भाव निर्माण करने,

(घ) इस प्रकार हिंदू-समाज में संगठित एवं अनुशासित समष्टि-जीवन का भाव संचार करने तथा,

(ङ) हिन्दू-समाज का उसके धर्म और संस्कृति के आधार पर सर्वांगीण पुनरूज्जीवन करने के लिये एक संगठन का निर्माण करना आवश्यक समझा गया।

और यतः स्व. डा. केशव बलीराम हेडगेवार ने सम्वत् 1982 विक्रम (सन् 1925 ई.) की विजयादशमी के दिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नाम से विख्यात संगठन का शुभारम्भ किया था।

और यतः स्व. डा. हेडगेवार ने सम्वत् ने सम्वत् 1997 (सन् 1940 ई.) में श्री माधव सदाशिव गोलवरकर को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया।

और यतः संघ का अभी तक लिखित विधान नहीं था।

और यतः आज की परिवर्तित परिस्थिति में यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि संघ का विधान एवं संघ के उद्देश्यों और मन्तव्यों तथा इसकी कार्यपद्धति को िपिबद्ध किया जाय।

अतः राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपना निम्नलिखित विधान अग्ङीकृत करता है।

अधिकरण 1 :

नाम :

इस संगठन का नाम ***राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ*** है।

अधिकरण 2

प्रधान कार्यालय :

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रधान कार्यालय नागपुर में है।

अधिकरण 3 :

उद्देश्य और मन्तव्य :

राष्ट्रीय संघ का उद्देश्य और मन्तव्य हिन्दु–समाज के विभिन्न उपांगों को संगठित कर समरस बनाना तथा हिन्दु–समाज को उसके धर्म और संस्कृति के आधार पर शक्तिशाली तथा चैतन्यपूर्ण करना है, जिससे वह भारतवर्ष की सर्वांगीण उन्नति कर सके।

अधिकरण 4 :

नीति :

(क) समाज के सुव्यवस्थित विकास में संघ विश्वास रखता है तथा अपने आदर्शों की सिद्धि हेतु शान्तिमय एवं न्यायोचित साधनों का उपयोग करता है।

(ख) हिन्दु–समाज की सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप सभी उपासना के प्रति समादरता के मूलभूत सिद्धान्तों में संघ की शाश्वत श्रद्धा है।

(ग) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ राजनीति से अलिप्त है और सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में ही कार्यरत है। तथापि स्वयंसेवक को इस बात की स्वतंत्रता है कि वे व्यक्तिशः ऐसे किसी भी राजनैतिक क्षेत्र में अथवा अन्य कार्य करने वाले दलों, संस्थाओं तथा समूहों जिनकी राष्ट्र–बाह्य निष्ठा है और जो कि अपनी ध्येयपूर्ति के लिये हिंसाचार, विघटनकारी तथा गुप्त कार्यपद्धति अपनाते हैं, या जो अन्य उपासना पद्धतियों, पंथों तथा जातियों के प्रति द्वेश–भाव या घृणा फेलाने का प्रयास करते हैं या जिनका लक्ष्य ऐसा द्वेशभाव या घृणा फेलाने का है, के अतिरिक्त अन्य किसी भी राजनैतिक दल, संस्था अथवा समूह के सदस्य हो सकते हैं, उपर्युक्त अवांछनीय तत्वों तथा कार्यपद्धतियों के प्रति निष्ठ रखने वाले व्यक्तियों को संघ में स्थान नहीं होगा।

अधिकरण 5 :

ध्वज :

राज्यध्वज के प्रति निष्ठा तथा आदर व्यक्त करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य मानते हुए, संघ हिन्दु–संस्कृति के परम्परागत प्रतीक भगवा ध्वज

को अपना ध्वज मानता है और उसको अपने गुरू के रूप में स्वीकार करता है।

अधिकरण 6 :

स्वयसेवक :

1) क) 18 वर्ष या उससे अधिक आयु का कोई भी हिन्दु पुरूष, जो संघ के उद्देश्यों और मन्तव्यों को मान्य करता है और उसके अनुशासन का सामान्यतया पालन करता है तथा शाखा की गतिविधियों में भाग लेता है, स्वयंसेवक समझा जाएगा।

(ख) जो स्वयंसेवक संघ के उद्देश्यों तथा मन्तव्यों को क्रियान्वित करने की प्रतिज्ञा करता है तथा नियमित रूप से किसी शाखा में जाता है अथवा समुचित रूप से किसी भी निर्दिष्ट कार्य को करता हे, कार्यशील स्वयंसेवक समझा जाएगा।

(ग) कोई भी स्वयंसेवक, त्यागपत्र देने अथवा संघ या शाखा विरोधी कार्य करने के कारण निष्कासित किये जाने पर स्वयंसेवक नहीं रहेगा।

2) बाल स्वयंसेवक– 18 वर्ष से कम आयु का हिन्दु बालक, बाल स्वयंसेवक के नाते शाखा के कार्य[मों में भाग ले सकेगा।

अधिकरण 7 :

शाखा :

(क) संघ के उद्देश्यों तथा मन्तव्यों का प्रचार करने की इच्छा से नियमपूर्वक एकत्र आने वाले स्वयंसेवकों का केन्द्र बनेगा। प्रत्येक केन्द्र स्वयंपूर्ण इकाई होगा तथा वह निधि प्राप्त करेगा तथा उसका

विनियोग करेगा। ऐसे केन्द्र को यहां शाखा नाम से सम्बोधित किया जायेगा।

(ख) ऐसी प्रत्येक शाखा संघ की प्राथमिक इकाई होगी तथा वह अपने कार्य संचालन तथा आर्थिक व्यवहारों में स्वायत्त होगी।

(ग) शाखा अपने कार्यकारी मंडल के निर्देश पर कार्य करेगी।

अधिकरण 8 :

कार्यक्रम :

इसके पूर्व यहाँ वर्णित उद्देश्यों एवं मन्तव्यों की पूर्ति के लिए शाखाएँ निम्नलिखित सभी कार्यक्रमों या उनमें से किसी भी कार्यक्रम का संचालन कर सकती हैं।

- स्वयंसेवक तथा अन्य लोगों की बौद्धिक एवं नैतिक शिक्षा के लिये एवं उनमें राष्ट्र तथा हिन्दु–धर्म व संस्कृति के आदर्शों के प्रति अनुराग निर्माण करने के लिये समय--समय पर चर्चाओं तथा व्याख्यानों का आयोजन करना।
- जन–साधारण के कल्याण तथा लाभ के लिये चिकित्सा सुविधा, साक्षरता प्रसार तथा समाज के निर्धन अंगों के जीवन स्तर में सुधार तथा बाढ़ तथा अकाल पीड़ितों का निःशुल्क प्रदर्शन सहित सर्वसाधारण की भलाई के अन्य कार्यों का विस्तार आदि का संचालन करना।
- अनुशासनबद्ध तथा सूत्रबद्ध समाज–जीवन के विकास के उद्देश्य से खेल तथा व्यायाम द्वारा स्वयंसेवकों तथा अन्य लोगों की शारीरिक तथा मानसिक क्षमता का विकास करना।

- स्वयंसेवकों में से प्रशिक्षक तथा कार्यकर्ता प्राप्त करने के लिये समय–समय पर शिक्षावर्गों का आयोजन करना।
- समाज की सेवा में अपना जीवन समर्पित करने के लिये स्वयंसेवकों तथा अन्य लोगों में उदात सांस्कृतिक मूल्यों, सेवाभाव तथा त्याग के संस्कार का बीजारोपण करने हेतु सांस्कृतिक महत्व के उत्सवों का आयोजन करना।
- संघ के उद्देश्यों एवं मन्तव्यों तथा संघ कार्य के प्रसार व समाज का मार्गदर्शन करने के उद्देश्य से योग्य साधनों तथा संस्थाओं का उपयोग करना।
- समान्यतः संघ के उद्देश्यों का प्रसार तथा पूर्ति करने के लिये प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से आवश्यक तथा पोषक सभी कार्य शाखाएँ अपना सकती हैं।
- प्रन्तु अर्थ प्राप्ति के लिये ये कार्य नहीं किये जायेंगे।

अधिकरण 10 :

निधि :

भगवाध्वज के सम्मुख स्वेच्छा से निष्ठापूर्वक जो कुछ समर्पित किया जायेगा केवल वही शाखा की निधि मानी जायेगी। वह निधि शाखा की होगी तथा उसकी व्यवस्था तथा विनियोग उसी के द्वारा संघ के उद्देश्यों एवं मन्तव्यों के प्रसार हेतु उसके द्वारा बनाये गये नियमानुसार संघकार्य की वृद्धि के लिये होगा।

(क) बैंक खाता :

शाखा अपने नाम से बैंक खाता खोलने व संचालन करने को अधिकृत है।

(ख) दान :

शाखा अपनी सम्पूर्ण गुरूदक्षिणा की राशि को अथवा कुछ अंश को किसी अन्य शाखा अथवा–संविधान अधिकरण 3 में उल्लिखित उद्देश्य और मन्तव्य या अधिकरण 8 में वर्णित कार्यक्रम के अनुकूल पंजीकृत अथवा अपंजीकृत संगठनों को दान कर सकती है।

अधिकरण 10 :

निर्वाचन :

(क) निर्वाचन प्रति तीन वर्ष के पश्चात होंगे।

(ख) निर्वाचन की तिथि, स्थान और पद्धति संबंधित कार्यकारी मण्डल द्वारा अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल के परामर्शनुसार निश्चित होगी।

अधिकरण 11 :

मतदाताओं, प्रत्याशियों एवं नियोज्यों की योग्यतायें

(क) मतदाता :

निर्वाचन के उन स्वयंसेवकों का मताधिकार प्राप्त होगा जो निर्वाचन सूची बनने की तिथि से एक वर्ष पूर्व से कार्यशील स्वयंसेवक होंगे।

(ख) **प्रत्याशी एवं नियोज्य :**

(1) वे स्वयंसेवक जो किसी भी राजनैतिक दल के पदाधिकारी हैं, जब तक वे उस पद पर अधिष्ठित हैं, संघ में किसी पद के लिये प्रत्याशी अथवा नियोज्य नहीं हो सकेंगे।

(2) किसी अखिल भारतीय पद के लिये प्रत्याशी नियोज्य निरन्तर छः वर्ष का कार्यशील स्वयंसेवक होगा।

(3) संघचालक पद के लिये प्रत्याशी अथवा नियोज्य कम से कम एक वर्ष की अवधि के कार्यशील स्वयंसेवक होंगे।

अधिकरण 11 :

सरसंघचालक :

संघ के संस्थापक स्वर्गीय डॉ. केशव बलीराम हेडगेवार इसके आद्य सरसंघचालक थे। तत्कालीन केन्द्रीय कार्यकारी मण्डल के परामर्श से उन्होंने श्री माधव सदाशिव गोलवलकर को सरसंघचालक मनोनीत किया, जो सन् 1973 तक सरसंघचालक थे। उन्होंने अपने पश्चात् श्री मधुकर दत्तात्रेय देवरस को मनोनीत किया और उपरोक्त पद्धति से श्री राजेन्द्र सिंह और अब श्री कुप्. सी. सुदर्शन को सरसंघचालक नियुक्त किया गया। सरसंघचालक, जब कभी आवश्यकता हो, अपने ज्येष्ठ सहकारियों से परामर्श कर अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करेंगे।

सरसंघचालक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दृष्टा एवं पथप्रदर्शक हैं। किसी भी समय स्वयंसेवकों, कार्यकारी मण्डलों तथा अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा के संयुक्त अथवा विलग अधिवेशनों में उपस्थित रहना, अभिभाषण करना अथवा ऐसे अधिवेशन बुलाना उनके इच्छाधीन हैं।

अधिकरण 13 :

सरकार्यवाह :

(क) अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा के (अधिकरण 15 (क)) के अनुसार निर्वाचित सदस्य सरकार्यवाह का निर्वाचन करेंगे।

(ख) सरकार्यवाह सरसंघचालक के परामर्श से कार्य करेंगे।

(ग) सरकार्यवाह अ. भा. कार्यकारी मण्डल के परामर्श से विद्यमान प्रान्त या प्रान्तों के कुछ हिस्सों को अलग अथवा मिलाकर एक या अधिक नये प्रान्त बना सकते हैं। तथा, सरकार्यवाह अ. भा. कार्यकारी मण्डल से परामर्श कर दो या अधिक प्रान्तों को मिलाकर नये क्षेत्र की रचना भी कर सकते हैं,

(घ) इस संविधान के नियमों के अनुसार क्षेत्र संघचालक से परामर्श कर, क्षेत्र संघचालक या प्रन्त संघचालक की तथा क्षेत्रीय कार्यकारी मण्डल या प्रान्तीय कार्यकारी मण्डल की अस्थायी रूप से नियुक्ति कर सकते हैं।

विधिवत् निर्वाचन के पश्चात् क्षेत्र संघचालक या प्रान्त संघचालक संविधान के प्रावधानों के अनुसार अपने अपने कार्यकारी मण्डल की रचना करेंगे।

(ङ) सरकार्यवाह विशिष्ठ कार्य के लिये अ. भा. कार्यकारी मण्डल के अतिरिक्त पदाधिकारी नियुक्त कर सकते हैं।

(च) सरकार्यवाह की मृत्यु, असमर्थता या त्यागपत्र की स्थिति में, अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल अन्य किसी व्यक्ति को उनका दायित्व

संभालने का कार्य नये सरकार्यवाह का विधिवत निर्वाचन होने तक सौंप सकता है।

अधिकरण 14 :

अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल :

(क) सरकार्यवाह अधोलिखित पदाधिकारियों सहित अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल का निर्माण करेंगे तथा उसके अध्यक्ष होंगे।

(1) सहकार्यवाह, एक या अधिक।

(2) अखिल भारतीय शारीरिक शिक्षण प्रमुख।
(शारीरिक शिक्षा सम्बन्धी मार्गदर्शक)

(3) अखिल भारतीय बौद्धिक शिक्षण प्रमुख।
(बौद्धिक तथा नैतिक शिक्षा सम्बन्धी मार्गदर्शक)

(4) अखिल भारतीय प्रचारक प्रमुख।
(प्रचारकों का मार्गदर्शन और प्रशिक्षण का प्रभारी)

(5) अखिल भारतीय व्यवस्था प्रमुख।
(सर्वसाधारण व्यवस्था का मार्गदर्शक)

(6) अखिल भारतीय सेवा प्रमुख।
(सामाजिक सेवाकार्यों का मार्गदर्शक)

(7) अखिल भारतीय प्रचार प्रमुख।
(प्रचार व्यवस्था का मार्गदर्शक)

(8) अखिल भारतीय सम्पर्क प्रमुख।
(जनता के साथ सम्पर्क का मार्गदर्शक)

तथा अधिक से अधिक पांच सदस्य

(ख) अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल के निम्न कार्य होंगे :

(1) अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल, अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा द्वारा निर्धारित नीति और कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने हेतु देशभर की समस्त शाखाओं के बीच समन्वय का माध्यम है।

(2) अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल अपने कार्य के नियमन तथा संघकार्य के सर्वसाधारण संचालन के लिये संविधान के अनुसार नियम तथा अधिनियम बनायेगा।

अधिकरण 15 :

अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा :

(क) अधिकरण 16 क (1) तथा (2) के अनुसार प्रान्त से निर्वाचित सदस्य अपनी संख्या का बीसवाँ भाग अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा के लिये शाखाओं की ओर से प्रतिनिधि निर्वाचित करेंगे।

(ख) अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा की रचना निम्नवत् होगी।

(1) शाखाओं के उपरिनिर्दिष्ट (क) धारा के अनुसार निर्वाचित सदस्यों के प्रतिनिधि।

(2) क्षेत्रों और प्रान्तों के संघचालक, कार्यवाह और प्रचारक।

(3) अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल के सदस्य।

(ग) अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा के सभापति सरकार्यवाह होंगे।

(घ) अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य होगा।

(ङ) अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा संघकार्य का समालोचन तथा उसकी नीति और कार्यक्रम निर्धारित करेगी।

(च) सरकार्यवाह, अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन में विशिष्ट श्रेणी के कार्यकर्ताओं को निमंत्रित कर सकते हैं। इन विशेष निमंत्रितों को मतदान का अधिकार नहीं रहेगा।

अधिकरण 16 :

प्रतिनिधि एवं संघचालक :

(क) (1) शाखा के 50 या 50 से अधिक मताधिकार प्राप्त स्वयंसेवक, अपने में से प्रति 50 स्वयंसेवकों के लिये एक, शाखा का प्रतिनिधि के नाते चुनाव करेंगे।

(2) जिन शाखाओं में मताधिकार प्राप्त स्वयंसेवकों की संख्या 50 से कम होगी, ऐसे स्वयंसेवक एकत्र आकर प्रतिनिधियों का चुनाव करेंगे।

(ख) अधिकरण 15 (क) के अनुसार, अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा के लिये निर्वाचित उस क्षेत्र के प्रतिनिधि सम्बन्धित क्षेत्र संघचालक का निर्वाचन करेंगे।

(ग) जिला, विभाग तथा प्रान्त में, अधिकरण 16 (क) के अनुसार निर्वाचित प्रतिनिधि क्रमशः जिला संघचालक, विभाग तथा प्रान्त संघचालक का निर्वाचन करेंगे।

(घ) जिला संघचालक, प्रान्त संघचालक तथा प्रान्त प्रचारक के परामर्शानुसार जिले की विभिन्न शाखाओं तथा शाखासमूहों के संघचालकों की नियुक्ति करेंगे।

(ङ) जिला संघचालक, संघचालक के लिये योग्य व्यक्ति उपलब्ध न होने पर, कार्यवाह की नियुक्ति करेंगे।

(च) क्षेत्र, प्रान्त, विभाग या जिला संघचालक की मृत्यु, असमर्थता या त्यागपत्र की स्थिति में उस इकाई के संघचालक का निर्वाचन होने तक, वह दायित्व संभालने के लिये वरिष्ठ इकाई का कार्यकारी मण्डल, उनका उत्तराधिकारी नियुक्त करेगा।

अधिकरण 17 :

प्रचारक :

(क) (1) अपना संपूर्ण समय लगाकर कार्य करने वाले कार्यकर्ता प्रचारक होंगे। वे उन निष्ठावान् एवं चरित्रवान् कार्यकर्ताओं में से चुने जायेंगे, जिनका ध्येय संघ के मार्ग से समाज की सेवा करना है और जो स्वेच्छा से अपने आपको संघ कार्य के लिये अर्पित करते हैं।

(2) वे अवैतनिक रहेंगे। उनके निर्वाह की व्यवस्था शाखाओं द्वारा होगी।

(ख) प्रचारकों की नियुक्ति :

(1) सरकार्यवाह, अखिल भारतीय प्रचारक प्रमुख की संस्तुति पर और क्षेत्र संघचालक और प्रान्त संघचालक से परामर्श कर क्रमशः क्षेत्र और प्रान्त प्रचारक की नियुक्ति करेंगे।

(2) प्रान्त संघचालक, प्रान्त प्रचारक के परामर्शानुसार अपनी परिसीमा की शाखाओं के एकसूत्रीकरण और सहायता हेतु प्रान्त में विभिन्न इकाईयों के लिये प्रचारकों की नियुक्ति करेंगे।

अधिकरण 16 :

कार्यकारी मण्डल :

(क) धारा 16 (ख) के अनुसार निर्वाचित क्षेत्र के संघचालक, अथवा धारा 16 (ग) के अनुसार निर्वाचित प्रान्त, विभाग या जिला के संघचालक, अथवा धारा 16 (घ) के अनुसार जिला के अन्तर्गत शाखा समूहों के संघचालक, क्रमशः अपनी इकाई के कार्यकारी मण्डल का गठन करेंगे। तथा वे स्वयं उसके सभापति होंगे। कार्यकारी मण्डल के पदाधिकारी निम्नानुसार होंगे।

1) कार्यवाह

2) प्रचारक (अधिकरण 17 (ख) (1) और (2) के अनुसार नियुक्त)

3) शारीरिक शिक्षण प्रमुख

4) बौद्धिक शिक्षण प्रमुख

5) व्यवस्था प्रमुख

6) सेवा प्रमुख

7) प्रचार प्रमुख

8) सम्पर्क प्रमुख

(ख) अधिकरण 16 (ग) के अनुसार शाखाओं के नियुक्त संघचालक, कार्यकारी मण्डल का गठन करेंगे, जिसके वे सभापति होंगे। तथा वे उसके निम्नानुसार पदाधिकारी मनोनीत करेंगे।

(1) कार्यवाह

(2) शारीरिक शिक्षण प्रमुख

(3) बौद्धिक शिक्षण प्रमुख

(4) प्रचारक प्रमुख

(5) व्यवस्था प्रमुख

(6) सेवा प्रमुख

(7) निधि प्रमुख

सूचना— यदि उपर्युक्त पदों में से किसी एक या अनेक पदों के लिए योग्य व्यक्ति उपलब्ध नहीं होते हैं तो योग्य व्यक्ति उपलब्ध होने तक वे पद रिक्त रखे जायेंगे।

(ग) प्रत्येक कार्यकारी मण्डल, यदि उनकी परिसीमा में अन्य कार्यकारी मण्डल हों तो उनमें से अधिक से अधिक पाँच अतिरिक्त सदस्यों का समावेश कर सकता है।

(घ) अपनी अपनी परिसीमा में प्रत्येक कार्यकारी मण्डल को कार्यवाही का अधिकार होगा। वे अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा द्वारा निर्धारित नीति और कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिये, निकटतम वरिष्ठ कार्यकारी मण्डल के मार्गदर्शन में कार्य करेंगे।

(ङ) शाखा के कार्यकारी मण्डल को अपने क्षेत्र के किसी भी स्वयंसेवक के विरुद्ध अनुशासन भंग करने पर अथवा शाखा या संघ के हितों और सम्मान को धक्का पहुँचाने वाले कार्य करने पर अनुशासन की कार्यवाही करने का अधिकार है। इस प्रकार की कार्यवाही की निकटतम वरिष्ठ कार्यकारी मण्डल द्वारा पुष्टि आवश्यक है।

अधिकरण 19 :

गणपूरक :

विविध कार्यकारी मण्डलों के लिये उनकी संख्या का आधा तथा अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा के लिये उनकी संख्या का पाँचवा भाग गणपूरक होगा।

अधिकरण 20 :

अविकसित प्रान्त :

अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल ऐसे प्रांतों को जिनमें यथेष्ट कार्यवृद्धि नहीं हुई है, अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा में जिस प्रकार वह उचित समझे, प्रतिनिधित्व प्रदान कर सकता है।

अधिकरण 21 :

संविधान की व्याख्या और संशोधन :

(क) संविधान और उसके अधिकरणों की, अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल द्वारा की गयी व्याख्या प्रमाण मानी जायेगी।

(ख) संविधान में संशोधन का प्रस्ताव, जो संघ के उद्देश्यों तथा मन्तव्य के विपरीत नहीं है, अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल द्वारा स्वतः विशेष रूप से आमंत्रित अधिवेशन के सामने, या किसी भी प्रान्तीय कार्यकारी मण्डल द्वारा, या किसी भी कार्यकारी मण्डल द्वारा किन्तु अपने प्रान्तीय कार्यकारी मण्डल के अनुमोदन के साथ, या अ. भा. प्रतिनिधि सभा के किन्हीं पच्चीस सदस्यों द्वारा अ. भा. कार्यकारी मण्डल सम्यक् विचारकर ऐसे संशोधन का प्रस्ताव अ. भा. प्रतिनिधि सभा के

सामने रखेगा। और अ. भा. प्रतिनिधि सभा के उपस्थित सदस्यों में से दो तिहाई सदस्य उसके लिये अनुकूल होंगे, तो वह संशोधन स्वीकृत समझा जायेगा।

(The English Version of The Constitution of the Rashtriya Swayam Sevak Sangh Adopted on 1 August 1949)

Preamble :

Whereas in the disintegrated conditions of the country it was cnsidered necessary to have an organisation.

(a) to eradicate the fissiparous tendencies arising from diversities of sect, faith, caste and creed and from political, economic, linguistic and provincial differences amongst Hindus;

(b) to make them realise the greatness of their past;

(c) to inculcate in them a spirit of service, sacrifice and selfless devotion to the Hindu Samaj as a whole;

(d) to build up an organised and well-disciplined corporate life; and

(e) to bring about an all-round regeneration of the Hindu Samaj;

AND WHEREAS the organisation known as "THE RASHTRIYA SWAYAMSEVAK SANGH" was started on the Vijaya Dashmi Day in the year 1982 Vikram Samvat (1925 AD) by the late Dr. Keshav Baliram Hedgewar.

AND WHEREAS Sri Madhav Sadashiv Golwalkar was nominated by the said Dr. Hedgewar to succeed him in the year 1997 Vikram Samvat (1940 AD).

AND WHEREAS the Sangh had till now no written constitution;

AND WHEREAS in the present changed conditions, it is deemed expedient to reduce to writing the constitution as also the aims and objects of the Sangh and its method of work;

THE RASHTRIYA SWAYAMSEVAK SANGH hereby adopts the following Constitution :

THE RULES AND REGULATIONS

Name :

Article 1 : The name of the organisation is "THE RASHTRIYA SWAYAMSEVAK SANGH"

Head Office :

Article 2 : The Head Office of the Sangh is at Nagpur.

Aims and Objects :

Article 3 : The aims and objects of the Sangh are to weld together the diverse groups within the Hindu Samaj and to revitalise and rejuvenate the same on the basis of its Dharma and Sanskriti, that is may achieve an all-sided development of the Bharatwarsha.

Policy :

Article 4 : (a) The Sangh believes in orderly evolution of the society and adheres to peaceful and legitimate means for the realisation of its ideals.

(b) In consonance with the cultural heritage of the Hindu Samaj, the Sangh has abiding faith in the fundamental principle of tolerance towards all faiths. The Sangh as such, has no politics and is devoted to purely cultural work. The individual swayamsevaks, however, may join nay political party, except such parties which believe in or resort to violent and secret methods to achieve their ends; persons owing allegiance to such parties or believing in such methods shall have no place in the Sangh.

Flag :

Article 5 : While recognising the duty of every citizen to be loyal to and to respect the state flag, the Sangh has as its flag, the Bhagwa Dhwaj—the age-old symbol of Hindu culture.

Swayamsevakas :

Article 6 : (1) (a) Any male Hindu of 18 years or more, who subscirbes to the Rules and Regulations of the Sangh and takes its pledge, set out in Appendix A, may be registered as Swayamsevak.

(b) A Swayamsevak shall be deemed to be an Active Swayamsevak, if he attends a Sangh shakha regularly or performs specific Sangh work duly assigned to him.

(c) A Swayamsevak shall cease to be a Swayamsevak, if he resigns his membership or is expelled for misconduct or indiscipline or any act prejudicial to the interests of the Sangh.

(2) Bal Swayamsevakas : Any male Hindu below the age of 18 may be admitted and allowed to participate in the Sangh programmes. They will be classified according to their ages and given suitable training in accordance with the Rules framed for the purpose.

A list of the Bal Swayamsevakas will be maintained in the units to which they are admitted.

Register of Swayamsevakas :

Article 7 : (a) Each Village, town, city and the provincial centre having a Shakha shall constitute a primary unit of the Sangh.

(b) Every Shakha shall maintain a register of all its Swayamsevakas-active or otherwise.

Article 8 : (a) For organisational gurposes, the country shall be divided into provinces.

(b) Every province may be further sub-divided according to their order of subordination as indicated below.

PROVINCE (Prant)

Divisions (Vibhag) Provincial centres (Prantiya Kendras)

Districts (Jila) Cities (Nagar) (Place with a population of 1,00,000 and over)

Tehsil

Towns (Shakhas) places Having a population of 5,000 and over)

Mandal (Group of villages) (Gram) Villages (place below 5,000 population)

Elections :

Article (9) : (a) Elections shall be held after every three years.

(b) The date, method and venue of election shall be determined by the Kendriya Karyakari Mandal.

Qualification for Voters ans Candidates for Selection and Appointment

Article 10 : (a) Voters : Every active Swayamsevak of at least one year's standing immediately prior to the date of preparation of the Electoral lists for the elections, shall be entitled to vote in the elections.

(b) Candidates : (1) He (i.e., a Swayamsevak) who is an office-bearer of a political party, shall not be eligible as a candidate for election or as an appointee to any post so long as he is much an office-bearer.

(2) A candidate for election or an appointee to any Akhil Bharatheeya Post, shall be.

(a) An active Swayamsevak of at least six years continuous standing; and

(b) Shall work full time without any remuneration.

(3) An appointee to a provincial post shall be an Active Swayamsevak of at least three years continuous standing.

(4) A candidate or appointee for Sanghachalakship shall be an Active Swayamsevak of at least one year's standing.

Order of Authorities and Bodies :

Article 11 : There shall be the following authorities and bodies constituted as provided in the Article shown against their names :-

1. Sarsanghachalak Article 12

2. Sarkaryavaha

Article 13

3. Kendriya Karyakari Mandal

Article 14

4. Akhil Bharatiya Prathinidhi Sabha Article 15

5. Prant, Vibhag, Jila, etc. Sanghachalaks Article 16

6. Pracharaks Article 17

7. Prantiya, Vibhag, Jila, etc, Karyakari Mandals Article 18

8. Prantiya Pratinidhi Sabha Article 19

Sarsanghachalak :

Article 12 : Late Dr. Keshav Baliram Hedgewar, the founder of the Sangh, was the Adya (First) Sarsanghachalak. Sri Madhav Sadashiv Golwalkar was nominated Sarsanghachalak by him in consultation with the then Kendriya Karyakari Mandal. He is the

Sarsanghachalak since then. The Sarsanghachalak will nominate his successor, as and when the necessity arises, with the consent of the then Kendriya Karyakari Mandal.

The Sarsanghachalak is the guide and philosopher of the Rashtriya Swayamsevak Sangh. He may attend, summon or address any assembly of the Swayamsevaks, Pratinidhi and Karyakari Mandals severally or jointly.

Sarkaryavaha :

Article 13 : (a) The elected members of the Akhil Bharatiya Prathinidhi Sabha (vide article 15) shall elect the Sarkaryavaha.

Kendriya Karyakari Mandal :

Article 14 : (a) The Sarkaryavaha shall form the Kendriya Karyakari Mandal. The Mandal shall consist of the following office-bears :

(1) Sarkaryavaha (he will preside).

(2) One or mor Sah-Sarkaryavahas.

(3) Akhil Bharatiya Bauddhik Shiksham Pramukh.

(4) Akhil Bharatiya Bauddhik Shiksham Pramukh.

(5) Akhil Bharatiya Pracher Pramukh.

(6) Akhil Bharatiya Nidhi Pramukh.

(b) The Kendriya Karyakari Mandal shall have in addition not less than five members who shall be chosen from among the Karyakari Mandals of the provinces.

(c) Functions : The following will be the functions of the Kendriya Karyakari Mandal :

(1) The KKM is the highest executive authority of the Sangh and as such will carry into effect the policy and programme laid down

by the ABP Sabha. The KKM shall supervise the working of the units.

(2) The KKM shall control the finances of the Sangh. It may take from the several provincial units such amounts of money, as may from time to time be required for the general advancement of the Sangh work. The KKM may finance such of the units as have insufficient funds of their own.

(3) The KKM shall appoint one or more auditors to audit the accounts of the Sangh annually.

(4) The Kendriya Karyakari Mandal may shift the Head Office to or establish one or more sub-Head Office at places wherever it may deem proper.

(5) The KKM in consultation with the Prantiya Karyakari Mandals concerned, may redistribute the provinces.

(6) The KKM shall be the highest authority for taking such discriplinary action against any Swayamsevak as may be necessary.

(7) The KKM will frame rules and buy-laws, in consonance with the constitution, for the purpose of uniformity in rules and procedure and for the proper functioning of the Sangh.

(8) Akhil Bharatiya Pratinidhi Sabha :

Article 15 : (a) The elected member of a Prantiya Pratinidhi Sabha shall elect from amongst themselves one-eighth of their number as representatives of the Province on the Akhil Bharatiya Pratinidhi Sabha.

(b) Akhil Bharatiya Pratinidhi Sabha shall consist of :

(1) Representatives of the delegates.

(2) Sanghachalaks and pracharaks of divisions, Province and Provincial centres.

(3) Members of the Kendriya Karyakari Mandal.

(c) The Sarkaryavaha shall preside over the ABPS.

(d) The ABPS shall meet at least once a year.

(e) The ABPS shall review the work and lay down the policy and programmes of the Sangh.

Sanghachalaks :

Article 16 : (a) Every province, provincial centre, division, district, tehsil, city, town may have a Sanghachalak.

(b) The Prant Sanghachalak shall be elected by delegates elected as per Article 19(a).

(c) The Sanghachalaks for the constituent units in the province shall be annually appointed by the Prant Sanghachalak in consultation with the Prant Pracharak.

(d) In case a suitable person is not available for the office of Sanghachalak, The Prant Sanghachalak may appoint a Karyavaha. The Karyavaha so appointed shall perform the duties of a Sanghachalak.

(e) In case of death, departure, prolonged illness or resignation of the Prant Sanghachalak the Kendriya Karyakari Mandal shall appoint a person to discharge the duties of the Prant Sanghachalak.

Pracharaks :

Article 17 : (a) (i) Pracharaks shall be full-time workers selected from amongst most devoted workers of high integrity, whose mission

is to serve the society through the Sangh and who, of their own free will, dedicate themselves to the cause.

(ii) They will receive no remuneration.

(b) Appointment of Pracharaks.

(i) The Akhil Bharatiya Pracharak Pramukh will appoint Prant Pracharakas with the Sanghhachalaks concerned.

(ii) The Prant Pracharak will appoint Pracharaks for different units in the province in consultation with the Prant Sanghachalak.

(c) The ultimate authority for the appointment, transfer or discontinuance of the services of the Pracharakas shall vest in the Sarkaryavaha.

Prantiya and Subordinate Karyakari Mandals :

Article 18 : (a) Sanghachalak of a province, provincial centre, division, district, tehsil, city or town will form a Karyakari Mandal consisting of the following occice-bearers.

(1) The Sanghchalak (he will preside).

(2) Pracharak [Appointed under Article 17(b)].

(3) Karyavaha.

(4) Baudhik Shikshan Pramukh.

(5) Sharirik Shikshan Pramukh.

(6) Nidhi Pramukh.

(b) Each Karyakari Mandal shall also have in addition not less than three members chosen from amongst the Karyakari Mandals of the subordinate units, if any.

(c) Karyakari Mandals will be the highest executive authorities in their respective units, responsible to the immediately superior Karyakari Mandal for implementing the policy and carrying out

the programme laid down by the ABP Sabha. They shall supervise the Sangh work in their respective units and control the finance.

(d) Karyakari Mandals will have the power to take disciplinary action against any individual Swayamsevak for breach of discipline or behaviour prejudical to the interests and honour of the Sangh. Such an action is subject to confirmation by the Karyakari Mandal of the superior units.

(e) The PKM with sanction of the KKM, May change the provincial centre.

(f) The Prantiya Karyakari Mandal may, if necessary, reconstitute the various units in the province.

(g) The Prantiya Karyakari Mandal may frame rules in consonance with the constitution, and the rules framed by the Kendriya Karyakari Mandal for the proper functioning of the Sangh in their province.

(h) For Mandals and places with a population of less than 5,000 a Karyavaha will be appointed by the Sanghachalak of the superior unit. He will be responsible for the Sangh work in his unit.

Prantiya Pratinidhi Sabha :

Article 19 : (a) Districts, cities and the Provincial Centre will send for every fifty Swayamsevakas entitled to vote, one such Swayamsevak as Delegate to the Prantiya Pratinidhi Sabha.

(b) The Prantiya Pratinidhi Sabha consists of :

(i) the elected delegates,

(ii) Sanghachalak and Pracharaks of Divisions, Districts, Cities and of the Provincial Centre.

(iii) Members of the Prantiya Karyakari Mandal.

(c) The Prant Sanghachalak will preside over the Prantiya Pratinidhi Sabha.

(d) The Prantiya Pratinidhi Sabha shall meet at least once a year.

(e) The Prantiya Pratinidhi Sabha shall review the work in the province and make such recommendations to the PKM as it may deem fit.

Programmes :

Article 20 : The existing branches of the Sangh will continue to the provisions of the constitution.

New branches may be opened.

Physical training will be given by means of exercises and games organised at a convenient hour every day.

Occasional talks and lectures will be arranged for imparting intellectual training and inculcating love ideals of Hindu Dharma and culture.

Periodical classes for Swayamsevakas to be trained as instructors and workers will be arranged.

Festivals of cultural importance will be celebrated and as members of the public may be invited on such occasions.

Agencies and institutions may be established to disseminate knowledge of the ideals and activities of the Sangh and to educate the people generally.

In general, the Sangh may do all such things and carry on any other work capable of being undertaken in connection with and

calculated, directly or indirectly, to promote and achieve any of the objects mentioned in Article 3.

Meetings, Conferences, Rallies and Training Classes :

Article 21 : (a) All Karyakari Mandals will meet as often as necessary, but at least once in the period shown below against each.

KKM	:	Four months
PKM	:	Four months
VKM	:	Three months
JKM	:	Three months
Teh. KM	:	Two months
Other KMs	:	One month

(b) The workers or Swayamsevakas of any unit or of two or more co-ordinate units may have combined programmes and meet together in conferences, rallies or training classes with the previous permission of the proper authorities of the superior unit.

(c) The KKM may arrange Akhil Bharatiya Conferences and rallies of workers and Swayamsevakas.

The KKM shall organise training classes called Adhikari Shiksham Varga at different places in the country to impart training in the Sangh work. Swayamsevakas thus trained in the presented three years' course will be Qualified Instructors.

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का अखिल भारतीय कार्यकारी मण्डल

सरसंघचालक

सरकार्यवाह

सहसरकार्यवाह

शारीरिक शिक्षण प्रमुख

बौद्धिक शिक्षण प्रमुख

सेवा प्रमुख

व्यवस्था प्रमुख

सम्पर्क प्रमुख

प्रचार प्रमुख

प्रचारक प्रमुख्ज्ञ

धर्म जागरण प्रमुख

अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा

क्षेत्रीय कार्यकारी मण्डल

क्षेत्र संघचालक

क्षेत्र कार्यवाह

क्षेत्र प्रचारक

क्षेत्र प्रचारक प्रमुख

क्षेत्र व्यवस्था प्रमुख

क्षेत्र शारीरिक शिक्षण प्रमुख

क्षेत्र सेवा प्रमुख

क्षेत्र धर्म जागरण प्रमुख

क्षेत्रीय कार्यकारिणी सदस्य

प्रान्तीय कार्यकारी मण्डल

प्रान्त संघचालक

प्रान्त कार्यवाह

प्रान्त प्रचारक

प्रान्त शारीरिक शिक्षण प्रमुख

प्रान्त बौद्धिक प्रमुख

प्रान्त व्यवस्था प्रमुख

प्रान्त प्रचार प्रमुख

प्रान्त धर्मजागरण प्रमुख

प्रान्त कार्यालय प्रमुख

प्रान्तीय सदस्य

विभाग कार्यकारी मण्डल

विभाग संघचालक

विभाग कार्यवाह

विभाग प्रचारक

विभाग कार्यकारिणी

जिला कार्यकारी मण्डल

जिला संघचालक

जिला कार्यवाह

जिला प्रचारक

जिला कार्यकारिणी

नगर कार्यकारी मण्डल

नगर संघचालक

नगर कार्यवाह

नगर प्रचारक

नगर कार्यकारिणी

मण्डल कमेटी

मण्डल कार्यवाह

मण्डल कार्यकारिणी

शाखा

कार्यवाह

मुख्य शिक्षक

गण शिक्षक

गटनायक

राष्ट्रीय स्वयंसेवक के अधिल भारतीय कार्यकारी मण्डल के पदाधिकारियों के नाम

सरसंघचालक	—	कुप्प0 सी0 सुदर्शन
सरकार्यवाह	—	मोहनराव भागवत
सह सरकार्यवाह	—	1. मदनदास
		2. सुरेश सदाशिव जोशी
		3. सुरेश सोनी
शारीरिक शिक्षण प्रमुख	—	लक्ष्मण राव पार्डीकर
बौद्धिक शिक्षण प्रमुख	—	मधुभाई कुलकर्णी
सेवा प्रमुख	—	प्रेम चन्द्र गोयल
व्यवस्था प्रमुख	—	संकलचन्द्र वगरेचा
सपर्क प्रमुख	—	हस्तीमल
प्रचार प्रमुख	—	डा0 मनमोहन वैद्य
प्रचार प्रमुख	—	सुरेशराव केतकर
धर्म जागरण प्रमुख	—	मुकुंदराव पणशीकर

अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा में – क्षेत्रीय कार्यकारिणी, प्रान्त संघचालक, प्रान्त कार्यवाह, प्रान्त प्रचारक, विभाग प्रचारक, और प्रत्येक जिले से चुने हुये प्रतिनिधि शामिल रहते हैं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से वापस होने वाले प्रचारकों की सूची

1. अरविन्द त्रिपाठी – प्रान्त शारीरिक प्रमुख – अवध प्रान्त
2. सुशील – विभाग प्रचारक – बांदा
3. प्रभात त्रिपाठी – विभाग प्रचारक – सीतापुर
4. सर्वदेव – प्रान्त शारीरिक प्रमुख – गोरक्षपान्त
5. विजय कौशल – सह विभाग प्रचारक – देहरादून
6. अतुल कृष्ण भरद्वाज – जिला प्रचारक – मेरठ प्रान्त
7. यतीन्द्र नाथ सरस्वती – जिला प्रचारक –
8. उमाकान्त – विभाग प्रचारक – गोरक्ष प्रान्त
9. शारदा प्रसाद – विभाग प्रचारक – आजमगढ़
10. आशीष गौतम – जिला प्रचाकर – गोरखपुर
11. राजेश सिंह – धर्म जागरण संगठन मंत्री – हरिद्वार
12. अजीत – जिला प्रचारक – गोरक्ष
13. अरविन्द – जिला प्रचाकर – आजमगढ़
14. समरनाथ – विभाग प्रचारक – गोंडा
15. रामनरेश मिश्र – विभाग प्रचारक – चित्रकूट
16. शशिकान्त – जिला प्रचारक – कन्नौज
17. रामानन्द – जिला प्रचारक – उरई
18. मुकेश – विभाग प्रचारक – मेरठ प्रान्त
19. धीरेन्द्र पाण्डेय – जिला प्रचारक – गोरक्ष प्रान्त
20. दुर्गेश जी – जिला प्रचारक – झांसी
21. राधेश्याम चौरसिया – जिला प्रचारक – गोरखपुर
22. रामकृष्ण गोस्वामी – जिला प्रचारक – महोबा
23. कुलभूषण – जिला प्रचारक – बाराबंकी
24. श्रीपाल – जिला प्रचारक – बांदा
25. श्याम जी – जिला प्रचारक – उरई

संध (भाजपा) से बसपा में जाने वाले प्रमुख कार्यकर्ता

1. राकेशधर त्रिपाठी — मंत्री
2. फागू चौहान — मंत्री
3. दद्दन मिश्रा — मंत्री
4. हरिओम उपाध्याय — मंत्री
5. बादशाह सिंह — मंत्री
6. रंगनाथ मिश्र — मंत्री
7. अनंत कुमार मिश्र — मंत्री
8. रतनलाल अहिरवार — मंत्री
9. पं. रामकुमार तिवारी — विधायक
10. राकेश गोस्वामी — विधायक
11. जमुना निषाद — विधायक
12. महेश चन्द्र त्रिवेदी — विधायक
13. पुरूषोत्तम नरेश द्विवेदी — विधायक

संघ द्वारा भाजपा सरकार में अपने अनुषांगिक संगठनों को दिल्ली में आवंटित करायी गयी भूमि

1. **समर्थ शिक्षा समिति (एमएसएस)** को लालपत नगर में 0ण्8135 एकड़ भूमि फरवरी, 2000 में आवंटित की गयी।

2. **समर्थ शिक्षा समिति** को मेहरौली–बदरपुर मार्ग पर पुष्प विहार में मार्च, 2001 को आवंटित हुई।

3. **समर्थ शिक्षा समिति** को वसंत विहार में भी अप्रैल 2001 को भी 1,574 एकड़ भूमि आवंटित की गयी। अशोक पाल समिति के अध्यक्ष, जय प्रकाश गुप्ता संस्थापक और के0 सी0 बथला महासचिव है।

4. **विश्व हिन्दू परिषद** को आर. के. पुरम, सेक्टर –6 में 3,753 वर्ग गज भूमि जुलाई 1999 में आवंटित हुई।

5. **वैश्य अग्रवाल एजूकेशन सोसाइटी**– को जुलाई, 2001 में मेहरौली–बदरपुर रोड़ स्थित सेक्टर–6 में 1.98 एकड़ भूमि आवंटित हुई। और राज्यमंत्री विजय गोपाल संस्था के महासचिव तथा श्रीराम कालेज आफ कामर्स के प्राध्यापक सी. बी. गुप्ता अध्यक्ष है। संस्था का स्कूल पीतमपुरा में है।

6. **आग्रोहा विकास ट्रस्ट** के नाम मई, 2002 में 850 वर्ग मीटर जमीन माता सुंदरी मार्ग पर आवटित की गयी। ट्रस्ट के सदस्यों में विजय गोपाल के पिता चरतीलाल गोयल और पत्नी प्रीति गोयल भी शामिल है।

7. **अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद** के प्रोजेक्ट "स्टूडेन्स एक्सपीरियंस इन इंटरस्टेट लिविग' के लिये राउज एवेन्यु क्षेत्र में दिसम्बर 2001 में 1428 वर्ग मीटर भूमि उपलब्ध करायी गयी। डा0 बलवंत गौतम प्रोजेक्ट के प्रदेश अध्यक्ष और जतिन मोहन्ती प्रदेश सचिव है। इस योजना का उद्देश्य उत्तर पूर्वी राज्यों के लोगों को दिल्ली लाकर शिक्षित कर उन्हें मुख्यधारा से जोड़ना है। परिषद का मुख्यालय गुवाहाटी में है और अब एक केन्द्र दिल्ली में स्थापित होगा।

8. **स्वदेशी जागरण फाउंडेशन** को महेराली–बदरपुर रोड पर 1,209.6 वर्ग गज जमीन आवंटित हुई। पूर्व सांसद एवं फाउंडेशन के अध्यक्ष महेश चन्द्र शर्मा सहित फाउंडैशन के अन्य सदस्य सीताराम भरद्वाज और मुरलीधर राव भी संघ कार्यकर्ता है। यह संस्था बुनियादी तौर पर "स्वदेशी जागरण मंच" का हिस्सा है। मंच के लिये शोध एवं अनुसंधान द्वारा प्रचार सामग्री जुटाना फाउंडैशन का जिम्मा है। इस जमीन पर शोध प्रकोष्ठ बनाया जाएगा।

9. **मुखर्जी आदर्श शिक्षा समिति** के नाम 20 जुलाई 2001 को 1,300.8 वर्ग गज भूमि दक्षिण दिल्ली के व्यावसायिक क्षेत्र सरोजनी नगर में आवंटित की गयी। इस भूमि के लिये समिति 40 साल से कोशिश कर रही थी।

10. **चाइल्ड एजूकेशन सोसाइटी** को वर्ष 1998–99 में द्वारका में 4 एकड़ यानी 19,360 गज भूमि आवंटित की गयी। संस्था के संस्थापक लाला हंसराज थे। उनके पुत्र पूर्व परिवहन मंत्री राजेन्द्र गुप्ता सोसाइटी के

महासचिव है। सोसाइटी के तहत बाल भारती विद्यालयों की 6 शाखायें दिल्ली के विभिन्न इलाकों में सक्रिय है।

11. **लघु उद्योग भारती** को 571.2 वर्ग गज भूमि कोटला रोड़ पर आवंटित की गयी। यह आवंटन जुलाई 2000 में हुआ। संस्था की सूची में संघ के सरसंचालक के. एस. सुदर्शन बतौर 'मार्ग दर्शक' है। इसके अध्यक्ष एस. एस. अग्रवाल उपाध्यक्ष सत्यपाल एवं महासचिव विश्राम जामदार है। जो संघ के कार्यकर्ता हैं

12. **सरस्वती एजूकेशन सोसाइटी** को 960 वर्ग गज भूमि वसंत कुंज इलाके में आवटित की गयी। आर.एस.एस. महामंत्री और समर्थ शिक्षा समिति के मुखिया खजान चन्द्र बधला ही सरस्वती एजूकेशन सोसाइटी के कर्ताधर्ता हैं। सरस्वती बाल मंदिर की कई शाखाएं हरि नगर, नेहरू नगर, राजौरी गार्डन और आर. के. पुरम इलाकों में चल रही हैं।

13. **अखिल भारतीय ग्रामीण सेवा संघ** को रोहिणी में 960 वर्ग मीटर भूमि रोहिणी में आवंटित की गयी। भाजपा कार्यकारिणी सदस्य रमेश चन्द्र शास्त्री सेवा संघ के अध्यक्ष हैं।

14. **संस्कार भारती** को राउज एवेन्यू में फरवरी 2002 में 5712 वर्ग गज जमीन आवंटित की गयी। संस्कार भारती आर. एस. एस. की आनुषंगिक है। शैलेन्द्र नाथ शास्त्री इसके अध्यक्ष और जगदीश पाल महासचिव हैं।

15. **संस्कृति भारती** को राउज एवेन्यू में नवम्बर, 2001 में 1,7136 वर्ग गज जमीन आवंटित की गयी थी। इसके अध्यक्ष, के. सूर्य नारायण एवं सचिव, चामुकृष्ण शास्त्री हैं। ये दोनों ही आर. एस. एस. के कार्यकर्ता हैं।

16. **विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान** को राउज एवेन्यू में 1020 वर्ग गज भूमि अप्रैल, 2002 में आवंटित की गयी। इसके अध्यक्ष, हसमुख भाई दवे और महासचिव, उदय पटवर्धन हैं। ये दोनों ही आर. एस. एस. कार्यकर्ता हैं।

17. **भारतीय मजदूर संघ** को राउज एवेन्यू में 856.8 वर्ग गज जमीन जून, 2001 में आवंटित की गयी।

18. **समर्थ शिक्षा समिति** के नाम पर शिवालिक कालोनी में 5290.1 वर्ग गज भूमि जनवरी, 2002 में आवंटित की गयी।

19. **समर्थ शिक्षा समिति** को झंडेवालान के निकट आराम बाग में भी 1. 554 एकड़ यानी 7260 वर्ग गज जमीन आवंटित हुई।

20. **सेवा भारतीय** को भाई और सिंह मार्ग पर 479 वर्ग गज जमीन अप्रैल, 2001 में आवंटित की गयी। इसके अध्यक्ष जय नारायण खंडेलवाल भी आर. एस. एस. कार्यकता हैं। संस्था के मुताबिक दिल्ली की मलिन बस्तियों में वह इस समय लगभग 1,517 परियोजनाओं पर काम कर रहे हैं। इस जमीन पर सेवा भारती का मुख्यालय स्थापित करने की योजना है।

21. **दिल्ली भारत विकास** फाउंडेशन को वर्ष 2001 में योजना विहार में डीडीए की 1,258 वर्ग गज जमीन आवंटित की गयी। भाजपा के पूर्व शहरी विकास मंत्री और राज्यसभा में सांसद एल.एम. सिंधवी फाउंडेशन के संस्थापक हैं।

22. **विश्व जागृति मिशन** को रोहिणी में वर्ष 2000–2001 में डीडीए की 672 वर्ग गज जमीन आवंटित की गयी। सुधांशु महाराज मिशन के संस्थापक और राधेलाल गुप्ता इसके अध्यक्ष हैं।

23. **भारतीय जनता पार्टी** के नाम भी राउज एवेन्यू में 0॰233 एकड़ जमीन अप्रैल, 2001 में आवंटित की गयी। यहां पार्टी का दिल्ली कार्यालय स्थापित करने की योजना है।

24. **विश्व संवाद केन्द्र** को राउज एवेन्यू में 1044 वर्ग मीटर भूमि मार्च, 2001 में आवंटित की गयी। विश्व हिन्दू परिषद के महासचिव आचार्य गिरिराज किशोर इसके प्रभारी हैं। इस जमीन पर विहिप का प्रचार विभाग स्थापित करने की योजना है। यहां विहिप का अपना पुस्तकालय तथा गोष्ठी के लिए सभागार बनाया जाएगा।

25. **अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम** को 19 जुलाई, 2002 को 506 वर्ग मीटर भूमि मेहरौली–बदरपुर रोड पर आवंटित की गयी। आर.एस.एस. कार्यकर्ता संतोष परांजपे आश्रम संचालित कर रहे हैं।

26. **सनातन धर्म सभा** को फरवरी, 2001 में 852 वर्ग गज जमीन सेक्टर–8, आर. के. पुरम में आवंटित की गयी। स्वदेशी जागरण फाउंडेशन के कर्ताधर्ता पी. खांडेकर एवं सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा

के अध्यक्ष मनोहर लाल कुमार आर.एस.एस. के सक्रिय कार्यकर्ता हैं। पिछले वर्ष से स्वदेशी जागरण मंच का कार्यालय भी यहा स्थित है।

27. **धर्मयात्रा महासंघ** को राउज एवेन्यू में 5712.2 वर्ग गज भूमि जनवरी, 2002 में आवंटित की गयी। विहिप नेता अशोक सिंघल इसके संस्थापक हैं। भापपा नेता मांगेराम गर्ग महासंघ के अध्यक्ष हैं।

28. **महामना मालवी मिशन** को राउज एवेन्यू में 1180 वर्ग गज भूमि फरवरी, 2002 में आवंटित की गयी। भाजपा नेता वेद प्रकाश गोयल तथा समता पार्टी नेता एवं पूर्व राज्यमंत्री हर किशोर सिंह मिशन के संस्थापक हैं।

29. **टॉय बैंक** के नाम भी एक भूभाग राउज एवेन्यू में आवंटित है। गरीब बच्चों के लिए कार्यरत इस संस्था के संस्थापक और मुख्य संरक्षक भाजपा नेता विय गोयल हैं।

30. **अंतर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद** के नाम राउज एवेन्यू में 487 वर्ग गज जमीन 1 नवम्बर, 2001 को आवंटित की गयी। इसके संस्थापक नौकरशाही धर्मवीर और पूर्व राज्यपाल बालेश्वर अग्रवाल परिषद के महासचिव हैं।

संघ से भाजपा में जाने वाले प्रमुख नेता

1. भैरव सिंह शेखावत — पूर्व उपराष्ट्रपति
2. अटल विहारी वाजपेयी — पूर्व प्रधानमंत्री
3. लालकृष्ण आडवाणी — पूर्व उपप्रधानमंत्री, गृहमंत्री
4. नरेन्द्र मोदी -- मुख्यमंत्री गुजरात
5. शिवराज सिंह चौहान — मुख्यमंत्री
6. रामप्रकाश गुप्ता — पूर्व मुख्यमंत्री
7. कल्याण सिंह — पूर्व मुख्यमंत्री
8. कैलाश मिश्र — पूर्व मुख्यमंत्री
9. सुन्दर लाल पटवा — पूर्व मुख्यमंत्री
10. बीरेन्द्र सखलेचा — पूर्व मुख्यमंत्री
11. भगत सिंह कोश्यारी — पूर्व मुख्यमंत्री
12. गोविन्दाचार्य -- पूर्व पार्टी महासचिव
13. कुशाभाऊ ठाकरे -- पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष
14. जनाकृष्ण मूर्ति -- पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष
15. श्रीराम चौहान — पूर्व केन्द्रीय मंत्री
16. सुन्दर सिंह भण्डारी — पूर्व राज्यपाल
17. कलराज मिश्र — सांसद
18. विनय कटियार -- सांसद
19. नानाजी देशमुख — पूर्व सांसद
20. ओमप्रकाश कोहली — राष्ट्रीय कार्यसमिति सदस्य
21. प्यारे लाल खण्डेवाल — पूर्व उपाध्यक्ष
22. जगदीश माथुर — पूर्व महामंत्री
23. बाल आप्टे — पूर्व उपाध्यक्ष
24. संजय जोशी — पूर्व संगठन महामंत्री
25. रामलाल — संगठन मंत्री
26. नागेन्द्र — संगठन मंत्री

संघ के आनुसांगिक संगठन

1. राष्ट्र सेविका समिति
2. अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद
3. वनवासी कल्याण आश्रम
4. भारतीय मजदूर संघ
5. विद्याभारती
6. विवेकानन्द केन्द्र
7. भारत विकास परिषद
8. विश्व हिन्दू परिषद
9. अखिल भारतीय साहित्य परिषद
10. दीन दयाल शोध संस्थान
11. भारतीय इतिहास संकलन योजना
12. भारतीय किसान संघ
13. भारतीय शिक्षण मण्डल
14. संस्कार भारती
15. संस्कृत भारती
16. राष्ट्रीय सिख संगत
17. स्वदेशी जागरण मंच
18. अखिल भारतीय अधिवक्ता परिषद
19. सेवा भारतीय
20. हिन्दू जागरण मंच
21. प्रज्ञा भारती
23. लघु उद्योग भारती
24. पूर्व सैनिक सेवा परिषद
25. सहकार भारती
26. अखिल भारतीय ग्राहक पंचायत
27. विश्व विभाग
28. सामाजिक समरसता संघ

विभिन्न विद्वानों एवं चिन्तकों से लिए गए साक्षात्कार

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में दिनांक 04–08–07 को

प्रो0 तुलसीराम का साक्षात्कार

प्र0 1. आर. एस. एस. के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

उ0. आर. एस. एस. को समझने के लिए आर. एस. एस. की स्थापना के समय को समझना होगा। आर. एस. एस. के संस्थापक डा0 हेडगेवार पर जर्मन के हिटलर और मुसोलिन का प्रभाव था। हिटलर अपने आपको आर्य (श्रेष्ठ) मानता था। डा0 हेडगेवार उससे प्रभावित थे। हिटलर यहूदियों को को विरोधी मानता था और आर. एस. एस. मुसलमानों को विरोधी मानती है।

प्र0 2. धर्मनिरपेक्षता को आप किस रूप में देखते हैं ?

उ0. राजनीति में धर्म के इस्तेमाल का विरोध ही धर्मनिरपेक्षता है।

प्र0 3. आर. एस. एस. के हिन्दुत्व की अवधारणा के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

उ0. आर. एस. एस. हिन्दु धर्म की बात को इस्लाम की तरह लागू करता है। आर. एस. एस. की विचारधारा बहुत खतरनाक है। हिन्दु धर्म में कहीं भी घृणा नहीं है। लेकिन आर. एस. एस. के लोग मुसलमानों से घृणा करते हैं।

प्र0 4. आर. एस. एस. के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को आप क्या मानते हैं ?

उ0 आर. एस. एस. का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद व्यवहार में सांस्कृतिक फांसीवाद है।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में दिनांक 4–08–07 को West Asian and African Studies, SIS के प्रोफेसर सुबोध नारायण मालाकार का साक्षात्कार–

प्रश्न 1 :– संस्कृति से आप क्या समझते हैं ?

उत्तरः– संस्कृति एक व्यापक चीज है। संस्कृति एक जीवन जीने की पद्धति है जो कई चीजों से मिलकर बनती है। हमारी संस्कृति सामाजिक संरचनाओं की देन है। संस्कृति कार्य करने की सहयोग की भावना है।

प्रश्न 2:– संस्कृति और राजनीति को आप किस रूप में देखते हैं ?

उत्तरः–राजनीति और संस्कृति का अन्यत्र सम्बन्ध है। संस्कृति का एक व्यापक मानवीय सन्दर्भ है। जिससे राजनीति का टकराव संस्कृति से होता रहता है। चूंकि राजनीति समाज के बदलाव पर निर्भर है। इसलिये उस काल में संस्कृति के ऊपर प्रभाव एक स्वाभाविक बात है।

प्रश्न 3:– राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में आपके क्या विचार है ?

उत्तरः– राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने आप को सांस्कृतिक संघटन होने का दावा करता है। वास्तविकता यह है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की राजनीति की प्रयोगशाला है। वह राजनीति की विचारधारा और उसकी दिशा व दशा तय करने वाली संस्था है।

नई दिल्ली राजेन्द्र नगर में स्थित राष्टीय स्वाभिमान आन्दोलन के कार्यालय में 5 अगस्त 07 को प्रदेश संगठन मंत्री विपिन कुमार सिंह का साक्षात्कार–

प्रश्न 1:– भाजपा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्बन्धों के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तरः– भाजपा के प्रति राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का मोह है। राजनीतिक समाधान के लिये राष्ट्रीय स्वयंसेवक को भाजपा को समर्थन देना संघ की मजबूरी है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रचारक जब भाजपा में जाता है तो उस पर भाजपा सिंर चढ़कर बोलती है और वह स्वयंसेवक होने को भूल जाता है। इसका मुख्य कारण सघ भाजपा को छोड़ नहीं सकता और भाजपा सुधर नहीं सकती।

प्रश्न 2:– क्या संघ में अगड़ी जाति का प्रभाव है ?

उत्तरः– हाँ संघ में अगड़ी जाति के प्रचारकों का अपना वचर्स्व है। संघ में अगड़ी जाति के प्रचारक ज्यादा हैं।

प्रश्न 3:– क्या संघ के प्रचारकों में राजनीति के प्रति मोह है ?

उत्तरः– संघ के प्रचारकों में कार्य के प्रति वो जुनून नहीं है। जो गुरूजी के समय था। स्वयं को दबी हुई राजनीति की इच्छा के कारण प्रचारक निस्वार्थभाव से सेवा नहीं कर पाते हैं।

प्रश्न 4:– संघ के स्वयंसेवक समाज में व्याप्त समस्याओं का समाधान करने में सक्षम है?

उत्तरः– संघ अपने कार्यकर्ता को इतना सक्षम बनाता है कि वह अपनी और समाज की समस्याओं का समाधान कर सके।

नई दिल्ली राजेन्द्र नगर में स्थित राष्टीय स्वाभिमान आन्दोलन के कार्यालय में 5 अगस्त 07 को संघ के चिन्तक और वर्तमान में स्वदेशी आन्दोलन प्रमुख विचारक गोविन्दाचार्य का साक्षात्कार

प्रश्न 1:– क्या गुरूजी जन्म शताब्दी के बाद संघ का कार्य बढ़ा है ?

उत्तरः– गुरूजी जन्म शताब्दी के बाद शाखा घटी एवं संघ शिक्षा वर्ग (ओ. टी.सी.) में भी स्वयंसेवकों की संख्या घटी।

प्रश्न 2 :– वर्तमान में जाति की राजनीति ज्यादा हो रही है। क्या इससे समाज का या जाति विशेष का विकास होगा ?

उत्तरः– जाति का जो राजनीतिकरण हुआ उससे जाति की सौदेबाजी का पुख्ता सबूत है। जातिगत राजनीति से जातियों में आपसी विद्वेष बढ़ा है जिससे आपसी झगड़े बढेंगे।

प्रश्न 3:– उत्तर प्रदेश में ब्राह्मण अनुसूचित जाति गठजोड़ कितना सफल होगा।

उत्तरः– अनुसूचित जाति मूक जाति है ब्राह्मण मुखर है जब मुखर लोग अपनी प्रक्रिया दिखायेंगे तब बहुजन समाज पाटी का विखराव होगा।

प्रश्न 4:– संघ परिवार का भाजपा पर क्या प्रभाव है ?

उत्तरः– सत्ता हथियाने के लिये भाजपा संघ परिवार बन गया भाजपा को सत्ता में देख संघ के कार्यकर्ताओं ने माना हमारा काम पूर्ण हो गया।

दिनांक 16 जून 2004 को राठ में आयोजित संघ शिक्षावर्ग में सरकार्यवा

मोहन भागवत से लिया गया साक्षात्कार

प्र0 1. संस्कृति और राजनीति के सम्बन्धों को आप किस प्रकार देखते हैं ?

उ0. संस्कृति यह सामाजिक स्वाभाव होता है अनेक वर्षों के अनुभव पर जीवन से कुछ मूल्य समाज, निश्चित करता है इन मूल्यो के आधार पर जीवन जीने वाले आदर्शों को समाज ने जन्म दिया वर्षानुवर्ष उन मूल्यों की सुरक्षा करते हुये अपना जीवन गुजरता है। तो उसके कारण उसका दृष्टिकोण स्वाभाव नीति बनती है उसे संस्कृति कहते हैं ?

ये संस्कृति जीवन के सब अंगों को प्रभावित करती है। जैसे– सामने वाला निशस्त्र है उस पर वार नहीं करना महाभारत में कर्ण पर वार किया जाता है उसे अपवाद बताया गया बदनामी हुई और निंदा का जवाब देना पड़ा। अंग्रेजों के साथ हमारे यहाँ के राजाओं और वनवासियों की वनवासियों में हमारी संस्कृति अधिक प्रभावी और जीवित है युद्ध के पहले वनवासी अंग्रेज सेनापति से मिलते थे वे अंग्रेजों से पूछते थे युद्ध कितने बजे होगा कौन से अस्त्र–शस्त्र प्रयोग करेंगे उसके अनुसार युद्ध होता था। यह संस्कृति सभी बातों को प्रभावी करती है तो वो राजनीति को भी प्रभावी करती है।

लेकिन वो प्रभावी करने के लिये कुछ करना नहीं पड़ता ये अपने आप सब बातें प्रभावी होती हैं।

प्र0 2. भारतीय संस्कृति से आपका क्या तात्पर्य है ? क्या सिर्फ वैदिक संस्कृति को ही आप भारतीय संस्कृति का पर्याय मानते हैं या मुस्लिम शासन की शुरूआत के बाद संस्कृति की मिली–जुली विरासत को महत्व देना आप भी उचित मानेंगे।

उ0. ये संस्कृति शब्द का अर्थ क्या है ? संस्कृति एक कल्चर नहीं है कल्चर ये कल्ट शब्द से है और कल्ट में आपकी भेष–भूषा है, आप पूजा में क्या पहनते हैं यह सब कल्ट कल्ट में है। हमारी संस्कृति में यह सब नहीं है संस्कृति जीवन का एक दृष्टिकोण है। हमारे जीवन का दृष्टिकोण यह है कि ये सारी भावना एक ही शब्द का आविष्कार है विविधता में एकता है इसलिये सर्वत्र समन्वय है मूल्य एक तत्व का साक्षात्कार करना यह सबका प्रमुख जीवन लक्ष्य है। इसके लिये त्याग और संयम पूर्वक जीना चाहिये। कृतघ्नता से सारे विषयों की सेवा करनी चाहिये। ये हमारी संस्कृति के मूल तत्व है। इस मूल तत्व में मिल सकने वाला कुछ है तो वह होगा सर्वत्र एक है यह हमारी मूल्य मान्यता है एक मात्र सत्य है बाकी सब झूठ है हम ही सही है बाकी सब झूठ है ये सब संस्कृतिगत नहीं है।

हमारे से है यह हमारी संस्कृति है हम से है यह इसमें शामिल नहीं होता आप जो मुस्लिम प्रभाववाली बात कर रहे हैं वो सभ्यता की बात है यह कुछ प्रभाव है जो कभी आते है और जाते है कभी रहते हैं कभी नहीं रहते हैं ऐसे प्रभाव को लेना पचाना न लेना सर्वत्र दुनिया में चलता है। ये संस्कृति से सम्बन्धित नहीं है। संस्कृति किसी की बनायी हुई चीज नहीं है यह सामाजिक प्रकृति है। प्रकृति में जो प्रकृति है वह निश्चित है। वैदिक

संस्कृति नहीं है वैदिक सभ्यता है संस्कृति वेदों के पहले भी थी और वेदों के बाद भी है। समाज और संस्कृति यह चिरन्तर है समय–समय पर जो विचार आये उसके कारण जो दर्शन आये उसके कारण वैदिक इस्लाम बाद में ईसायत ये सब आ गये। ये संस्कृति के मूलतत्व नहीं है ये ऊपर की बात हो सकती मूल में फर्क करने वाली बातें इसमें मेल नहीं खाती लेकिन मूल में कायम रख के जो आन्दोलन होता है।

प्र0 3. क्या आप समझते हैं कि राजनैतिक व्यवस्था के लिये महत्वपूर्ण बिजली, पानी, रोजी–रोटी जैसे बुनियादी सवालों को हल करने में संस्कृति सवालों से कोई मदद मिल सकती है।

उ0. मैं नहीं मानता जापान की आर्थिक प्रगति का कारण चार ज्ञाताओं ने ढूंढा है जो दो अर्थशास्त्री हैं। दो समाजशास्त्री है जो कारण उन्हें मिले वह पुस्तक के अन्त में लिखे हैं। नौ में से पहले पाँच संस्कृति से सम्बन्धित है स्वादेशाभिमान से सम्बन्धित है सामाजिक जीवन अनुशासन से सम्बन्धित है अपने जीवन में अपने लिये जीना दूसरों के लिये जीवन जीवन से सम्बन्ध रखने वाले पाँच कारण हैं जिसके कारण जापान प्रगति के शिखर पर पहुँचा इग्लैण्ड में आप जायेंगे तो इग्लैण्ड के शहर में नेंसन ने जो जहाज जीता उसको रख वहाँ प्राइमरी के बच्चों को ले जाते हैं। उसमें एक चीज बताते हैं कि हमारे पूर्वजों द्वारा जीता हुआ यह जहाज है। इसकी आवश्यकता क्या है? अपना जो कुछ भी है उसके गौरव पर उसको अपनी पहचान मानकर आदमी खड़ा होता है बाकी सब बाद में है। उसके बिना ये सब बातें साकार हो ही नहीं सकती यह मेरा मानना नहीं है यह दुनिया का अनुभव है। आप

अध्ययन कीजिये आपको यही बात जो भी बड़े–बड़े राष्ट्र है उनके बड़े होने की यही बात लगेगी। चीन का इतिहास देखिये अभी जो चीन है अमेरिका फ्रांस इजरायल अभी जर्मनी यह किन–किन बातों पर बने।

प्र0 4. संस्कृति या सभ्यताओं के युद्ध की हटिंगटन की बहुचर्चित अवधारणा के बारे में आपके विचार क्या है ?

उ0. हटिंगटन की जो विचार (पुस्तक) है उसमें उन्होंने बहुत कम विचार तीसरी दुनिया को दिया है।

प्र0 5. भारत में संस्कृति की राजनीति के बीच अल्पसंख्यकों के स्थान को आप किस रूप में देखते हैं ?

उ0. भारत में संस्कृति सबकी एक ही है अल्पसंख्यक सांस्कृतिक दृष्टि से कोई है ही नहीं। मुस्लिम पुश्तैनी यहाँ के रहने वाले यहाँ की परम्परा में उनका जीवन पला है उसका परिणाम भी उसके रिलीजन पर हुआ है उनके रिलीजन की रौली भारत में परिपूर्ण है इसलिये सांस्कृतिक दृष्टि से कोई अल्पसंख्यक नहीं है सबको एक ही मानकर चलना है।

इसलिये एक देश एक जन एक राष्ट्र हमारी एक विशेषता है कि सारी विविधताओं की सुरक्षा एंवं प्रतिष्ठा करना सबके लिये सुरक्षा और प्रतिष्ठा का पूर्ण अवसर देकर उनको समान अवसर का अधिकार देकर सबको एक रखना चाहिये एकता का सूत्र ही संस्कृति है।

प्र0 6. संघ का भारत में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के नवीनीकरण में क्या योगदान है इस सम्बन्ध में आपके क्या विचार है ?

उ0 संस्कृति है, सांस्कृतिकरण नहीं संस्कृति के रूप का नवीनीकरण तो होना चाहिये।

उसका युगान्तर अर्थलंगाकार आचरण में फर्क करना इसी को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं ? इसमें संघ ने भी बहुत बड़ा योगदान किया है। सामाजिक समरसता के बारे समाजसुधार के बारे में संघ अपने स्वयंसेवकों को संस्कार देता है उनके जीवन में परिवर्तन आता है ऐसे स्वयंसेवक जहाँ–जहाँ काम करते हैं वहाँ युगानुकूल परिवर्तन आता है। जैसे जातिपात की बात है।

संघ के प्रयासों से साधु महात्मा के प्रयासों से तर्कशास्त्र में ऐसा कोई आधार नहीं है। यह एक दुराचार गले का हार बन गया वह जो गलत था उसे बदलना चाहिये। ऐसे गलत आचरणों को बदलने के लिये जो आन्दोलन होते हैं, उनके पीछे संघ खड़ा है।

प्र0 7. वैदिक संस्कृति के मूलाधार के रूप में वर्ण व्यवस्था की भी चर्चा की जाती है। क्या आप नहीं समझते कि वर्ण व्यवस्था को मान्यता देना आज भारतीय समाज के लिये विभेदकारी सिद्ध होगा प्राचीन वर्ण व्यवस्था और आधुनिक मान्यताओं के बीच सन्तुलन को लेकर आपकी दृष्टि क्या है ?

उ0 व्यवस्था कभी मूलाधार नहीं होती व्यवस्था अस्थायी होती है बदलती है और बदलनी चाहिये वैदिक संस्कृति का मूलाधार वर्ण व्यवस्था हो ही नहीं सकती। ये व्यवस्था है उसके पीछे उस समय जो कल्पना की होगी कि सबको रोजगार की सुरक्षा हो प्रत्येक उसकी क्षमता के अनुसार अपनी रूचि के अनुसार कार्य मिले ये मूल तत्व है। उसकी व्यवस्था कैसे बनाये उस समय बनी होगी पता नहीं कैसे बनी होगी व्यवस्थायें युगानुकूल बदलती रहती है। वर्ण व्यवस्था वैदिक संस्कृति को मूलाधार नहीं है। मूलाधार पाँ बातें हैं। 1. विविधता में एकता 2. समन्वय 3. उस एक तत्व का साक्षात्कार 4. त्याग और संयम 5. कृत्घनता। ये मूल्य ले के चलती हैं।

कोई व्यवस्था सदा के लिये नहीं होती कोई व्यवस्था निर्दोष नहीं होती। वर्ण व्यवस्था उस समय की व्यवस्था होगी इस समय नहीं चल सकती।

दिनांक 12-09-2005 को उरई में लिया गया संघ के

सरसंघचालक के0 सी0 सुदर्शन का साक्षात्कार

प्र0 1. राष्ट्रीयता में संस्कृति की भूमिका को आप किस प्रकार देखते हैं ?

उ0. वास्तव में राष्ट्रीयता ही संस्कृति है क्योंकि संस्कृति राष्ट्रमानस के स्वभाव की अभिव्यक्ति है संस्कृति के लिये शब्द कल्चर अपर्याप्त अपूर्ण है और इसी कारण हिन्दू राष्ट्र के सम्बन्ध में अनेक गलतफैमियां पैदा हुई है। राष्ट्र यदि शरीर है तो संस्कृति उसका मन है और सभ्यता उसकी वाह्य अभिव्यक्ति है। अंग्रेजी में सही शब्द संस्कृति के लिये रखना हो तो वह एथास है।

प्र0 2 आधुनिक राष्ट्र राज्य के विकास में संस्कृति के नाम पर रूढ़िवादिता थोपने के परिणाम नकारात्मक होते हैं। इस धारणा को लेकर आपका क्या मत है ?

उ0. संस्कृति का मतलब रूढ़िवादिता नहीं है, रूढ़ियां तो तब पैदा होती है जब किसी भी रीति–रिवाज का पालन उसके मूल्य उद्देश्य को विस्मृत करके होता है। प्रत्येक समाज में इस प्रकार की रूढ़ियाँ है। पाष्चात्य देशों में 13 के अंक को बड़ा अमंगलकारी मानते हैं। और इसको टालने को प्रयत्न करते है और इसलिये संस्कृति को रूढ़िवादिता कहना यह विचारधारा ही पूर्णतः गलत है। प्राचीन संस्कृति में कुछ भाग सनातन और शाश्वत होता है और कुछ भाग कालांनुसार बदलता रहता है और जो भाग समय के अनुसार बदलता रहता है उसे युग धर्म कहते हैं। एक दूसरी गलती जो हुई धर्म का अनुवाद रिलीजन किया गया।

सर्वोच्च न्यायालय ने अपने तीन–तीन निणर्यों में यह बात स्वीकार की है कि हिन्दू कोई रिलीजन नहीं है यह एक जीवन की पद्धति है। यह एक जीवन दृष्टि भी है।

प्र0 3. क्या अखण्ड भारत की आपकी परिकल्पना से पाक, बंग्लादेश नेपाल म्यामार जैसे देशों की संप्रभुता के आक्रमण की आशंका उत्पन्न नहीं होती क्या इससे पड़ोसियो के साथ सद्भावपूर्ण सम्बन्ध रखने की भारत की नीति के विफल होने का खतरा नहीं है ?

उ0. अखण्ड भारत एक सांस्कृतिक वास्तविकता है। मजहब के आधार पर भारत के वे हिस्से होने के बाद भी लोगों के स्वाभाव में कोई बड़ा अन्तर नहीं आया है। आज भी बंग्लादेश में रविन्द्रनाथ ठाकुर और काजी नसूरूल इस्लाम के गीत सर्वाधिक लोकप्रिय है। मुस्लिम समाज जो मतभेद हुआ इसी मत पर हुआ कि मुसलमानों को भारत के साथ और भारत के पूर्वजों के साथ सम्बन्ध जोड़ना चाहिये था ईरान और अरब से सम्बन्ध जोड़ना चाहिये। राजनेता कुछ भी कहे सर्वसाधारण जनता की सोच और भावनायें भारत के साथ ही जुड़ी हुई है और इसलिये पाकिस्तान और भारत, बंग्लादेश तथा श्रीलंका की जनता में भारतीय संस्कृति (हिन्दू संस्कृति) के सम्बन्ध में एक अपनेपन का भाव है।

अभी कुछ समय पूर्व महिला आयोग की सदस्या श्रीमती नफीसा हुसैन जब पाकिस्तान गयी थी तो अनेक मुस्लिम महिलाओं ने उनकी साड़ी देखकर उनसे प्रश्न किया कि हिन्दुस्तान में कहा रहती हो तो उन्होंने उत्तर दिया कि मुम्बई में तो कहा कि हमारे पूर्वज भी तो मुम्बई से आये थे। और

फिर पूछने लगी कि महाराष्ट्र में शादी के समय में एक विशेष गहना पहना जाता है उसका नाम क्या है ? तो नफीसा ने कहा कि मंगलसूत्र की बात कर रही हो तो उन्होंने कहा हाँ और कहा कि जब तुम मुम्बई जाओगे तो हम लोगों के लिये मंगलसूत्र भेज देना और अनेक पढ़े लिखे लोगों के मन में है कि देश के विभाजन से हम लोगों को मिला क्या पाक से भी जो कई महिलायें या पत्रकार या जनता भारत आती है तो उनको यहां पर अपार स्नेह मिलता है। इस बात को पाक के हुक्मरान भी समझते हैं इसलिये हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच अच्छे सम्बन्ध होने नहीं देते क्योंकि उनको मालूम है कि ये सम्बन्ध बड़े तो फिर पाक नहीं रहेगा क्योंकि पाक का अस्तित्व ही घृणा पर आधारित है। एक बार यदि घृणा समाप्त हो गयी तो पाक ही नहीं रहेगा इसलिये वह हमेशा इस प्रयत्न में रहते हैं कि घृणा का वातावरण बना रहे बहुत पहले पाक के एक अर्थशास्त्री ने एक पुस्तक लिखी थी जिसका शीर्षक था "दी इन्डीविजुअल इकानमी" उसमें उसने लिखा कि पूरा भारत ही इस प्रकार का बना है कि उसकी अर्थव्यवस्था में एक ओर अभिभाज्य है। उसमें उसने अनेक उदाहरण देकर समझाया है और कहा था कि भारत का विभाजन मूलतः गलत है। वही बात म्यामार के सम्बन्ध में भी सत्य है वहाँ पर बौद्ध मत ही प्रचलित था और बौद्ध मत भारत में ही उत्पन्न हुआ और उसका जीवन आदर्श और मूल भारत के अन्य पंथों के समान ही है। नेपाल अपने आपको हिन्दू राष्ट्र कहता है। वहां की संस्कृति हिन्दू संस्कृति है। राज्य अलग है किन्तु नेपाल के लोगों को भारत में भारत के लोगों को नेपाल में परायेपन का अनुभव नहीं होता उनको

अपना ही लगता है। राज्य के नाते वो आज भी अलग है और भारत में इस प्रकार के राज्य अनेक हैं किन्तु भारत को सांस्कृतिक दृष्टि से सदैव एक ही माना जाता है। यह संप्रभुता आधुनिक पाश्चात्य अवधारणा का फल है। पहले यूरोप में पोप का शासन था। उसमें धीरे–धीरे विद्रोह हुये और ईसायत के अन्तर्गत ही नया उपसम्प्रदाय प्रोस्टेंट के नाते से खड़े हुआ और पोप के शासन से मुक्ति पाने वाले को प्रोस्टेंट कहा जाने लगा और इस यूरोप में ही चर्च के अन्दर विभाजन हुआ रोमन कैथोलिक, प्रोस्टेंट, लूथरल ऐसे अनेक सम्प्रदाय पैदा होते चले गये इस पोन्यिस पाशा से उन्होंने अपने आप को मुक्त कर लिया उनका तर्क ये था कि परमामिक मामलों में भले ही चर्च अपना मत दे पर जो अहिम मामले है वो राज्य सत्ता को प्राप्त होने चाहिये तो इस प्रकार परमार्मिक सत्ता को अधिकारिक सत्ता से मुक्त करने को ही सेक्यूलिरिजम कहा गया है।

प्र0 4. आर0 एस0 एस0 हिन्दू राष्ट्र चाहता है या मिली जुली संस्कृति का राष्ट्र चाहता है राष्ट्र के प्रति आपकी धारणा क्या है ?

उ0. मिली जुली कोई संस्कृति नहीं होती संस्कृति एक प्रवाह है जब गंगा से यमुना और यमुना से जब घाघरा मिलती है तो इसे गंगा यमुना और घाघरा नहीं कहा जाता उसे गंगा ही कहा जाता है। इसी प्रकार संस्कृति है। संस्कृति का प्रवाह इससे तय नहीं होता है। संस्कृति तो वह अध्यात्मिक संस्कृति है।

प्र0 5. आर0 एस0 एस0 के संगठन में और आर0 एस0 की विचारधारा में क्या परिवर्तन आयेगे। क्या 1925 से अब तक क्या आप परिवर्तन आगे भी स्वीकार नहीं करेंगे तो क्या स्थिति बनेगी ?

उ0. संघ ने समयानुसार परिवर्तन किये है। पहले हमारे यहां पेन्ट फुल थी। बाद हाफ की गयी। पहले हमारी मिलिट्री ड्रिल होती थी उसमें में भी परिवर्तन हुआ। हमारी प्रार्थना पहले मराठी और हिन्दी में होती थी। लेकिन 1939 से प्रार्थना संस्कृत में होने लगी। समयानुसार संघ में नये विषय शामिल किये जाते है और जो विषय अनुकूल नहीं होते उन्हें हम छोड़ देते हैं।

प्र0 6. हिन्दू संस्कृति में वर्ण व्यवस्था अपरिहार्य समझी जाती है क्यों इसके रहते हुये दलित पिछड़े और अन्य जातियों के साथ न्याय संभव है।

उ0. वास्तव में वर्ण व्यवस्था और जाति अलग–अलग है। जो विचार उन्हें क्षत्रिय कहते हैं और जो व्यापार करते हैं उन्हें वैश्य और जो सेवा कार्य करते थे उन्हें शूद्र कहते हैं। पहले जाति व्यवस्था धन्धों के आधार पर थी। कोई कभी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के कार्य का अतिक्रमण नहीं करता था जैसे– चमार का काम वैश्य नहीं करता था नाई का काम चमार नहीं करता था। लेकिन वर्तमान में जाति व्यवस्था का कोई मतलब नहीं रहा।
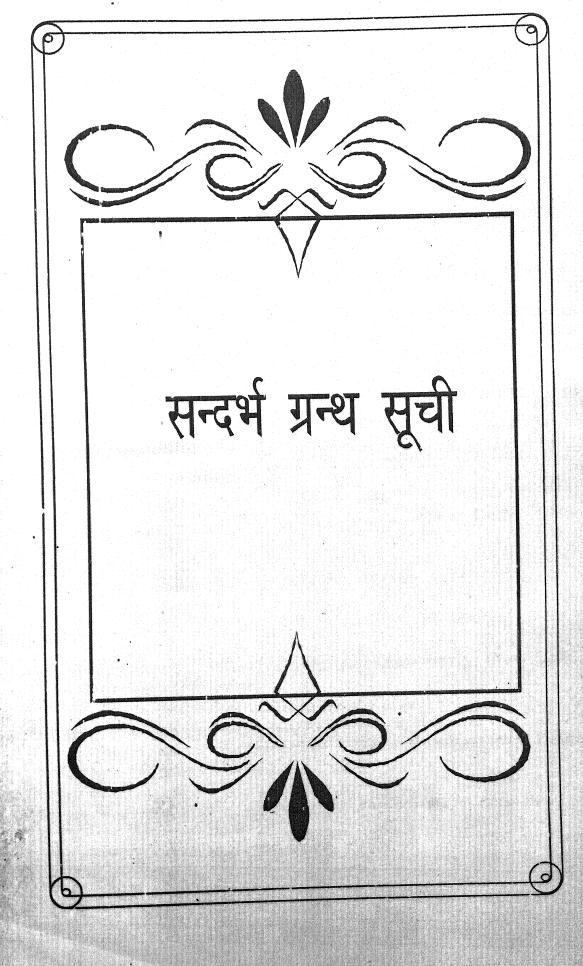
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

Bibliography

मूल स्रोत (Primary Sources) :

Akhil Bharathiya Vidyarthi Parishad, Why and How ? (Delhi, Nava Laxmi Press).

Answer to All Questions, (New Delhi, RSS Office, 1969).

Anti-Malappuram District Action Committee-Marxist-Muslim League conspiracy in Malappuram (M), (Calicut, Anti-Malappuram District Action Committee leaflet, 1969).

Bharathiya Jana Sangh, Bharathiya Jana Sangh, Principal and Policy, (Bombay, Excel Printers, 1965).

Bharathiya Janata Party, Our Five Gommitments, (New Delhi, BJP Publication, 1980).

Bharathiya Mazdoor Sangh, BMS Souvenir, (New Delhi, BMS, 1980).

Census of India, 1961, 1971, 1981.1991, 2001

Chitaranjan Facts about RSS, (New Delhi, Suruchi Sahitya, 1979).

Deoras Bala Saheb, RSS and the Present Controversy, (New Delhi, Suruchi Sahitya, 1979).

Economic Policy Declaration, Adopted by First National Conference of BJP on 28, 29, 30, December 1980, in Bombay, (New Delhi, BJP Publication, 1982).

Election Commission- Report on the First General Elections in

India, 1951-52, Statistical (New Delhi, 1955).

Facts about RSS and Gandhi Murder, RSS and Freedom movement and RSS and Communal Riots (New Delhi, Suruchi Sahitya).

Golwalkar M. S. From Red Fort Grounds, (Delhi, Asia Press) Spotlight, (Bombay, Sahitya Sindhu, 1974).

Golwalkar, M. S. - Bunch of thought (Bangolore) 1969

Golwalkar, M. S. - We or our Nationhood Defined (Nagpur)

High Court on RSS (Bangalore, Srirenganithi Printers, 1972).

Hindu Front, Hindu Mannani Nayarekha (M), (Trivandrum, Hindu Front Election Committee, 1987).

Hindu Rashtra and Minorities, (Bangalore, Nav Bharath Press, 1969).

Hindu Sanghatan, (New Delhi, Suruchi Sahitya, 1979).

India 1985 (New Delhi, Ministry of Information and Broadeasting, 1987).

India 1986 (New Delhi, Ministry of Information and Broadcasting, 1987).

Justice on Trial, A Collection of the Historic Letters between Sri Guruji and The Government, 4th ed, (Bangalore, Sharada Press, 1968).

Manifesto and Programme of Jana Sangh (New Delhi, Jana Sangh Publication, 1967).

Mysore High Court on RSS : A Historic Judgement, (Bangalore, Kesari Press, 1966).

Not Socialism, But Hindu Rashtra, (Bangalore, Kesari Press, 1964).

Olivile Thelinalangal (M), (Cochin, Kurukshetra Publications, 1980).

Publications of RSS, Jana Sangh, BJP and other Related Agencies

Ram Mohan, Truth Triumps, (New Delhi, Suruchi Sahitya, 1979).

Rashtriya Swayam Sevak Sangh (RSS), The Answer to all Questions, (Delhi, Bharat Mudranalay).

Report submitted in the first State Convention of BJP of Ernakulam, on 28, 29 April 1984, (Trivandrum, BJP Publication, 1984).

RSS : A Brief Introduction, (Delhi, RSS Office, 1970).

RSS : A Vision in Action, (Bangalore, Jagaran Prakasan, 1988).

RSS Resolves, Full text of Resolutions passed by Akhil Bharathiya Prathinidhi Sabha, from 1950 to 83 (Bangalore, RSS Publication Division, Karnataka, 1983).

Sangha Darsan, Sangh at a Glance, (Bangalore Prrinnte Stall 1964).

Sinnarkar Sathis (ed), RSS, Why Hindu Rashtra, (Bombay, RSS Publication, 1986).

Sixty years of the RSS, (New Delhi, Suruchi Prakasan, 1985).

Spearheading National Renaissance, (Bangalore, Prakasan Vhibhag, Karnataka, 1985).

Sri Guruji Meets Delhi Newsmen, (New Delhi, Suruchi Sahitya, 1970).

Sri Guruji, (Delhi, Punjab National Press).

Sri Guruji, the Man and His Mission (New Delhi, Bharat Prakasan, 1956).

The War and After, (Banglore, Rashtrothana Mudralaya, 1972).

Thengadi, D. B., The Onward March of BMS, (New Delhi, BMS Central Office, New Delhi).

Truth and Travesty- RSS vis-avis Gandhi murder : A myth exploded, (Bangalore, Jagaram Prakasan, 1973).

Viswa Hindu Parishad, *Hindu Sammelan,* (New Delhi, Virat Hindu Samaj, 1982).

Vivek, RSS, a Brief Introduction, (New Delhi, Surchi Sahitya, 1979).

हेडगेवार, केशवराव बलिराम – संघ तत्व और व्यवहार (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

सुदर्शन, के. सो. – संघ की सफलता का रहस्य (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

सिंह, राजेन्द्र – कृति रूप संघ दर्शन (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources)

I. Books

A Hindu Rastra, (Delhi, Swastik Prakashan, 1955).

A Survey of Kerala History, (Kottayam, National Book Stall, 1957).

Advani, L.K., *Prisoners Scrap Book,* (Delhi, Hind Pocker Book, 1979).

Alam, Muhammad Badiul; *Contemporary ideas and theorics of Nationalism,* Indian Journal of Political Science, Vol. 41 No. 3, September 1980.

Almond, Gabriel A. and Powell, Bingham G., *Comparative Polities Today,* A World View, (Boston, Little Brown and Company. 1980).

Anderson, Walter K. and Damle, Shridhar, *The Brotherhood in Saffron, The RSS and Hindu Revivalism,* (New Delhi, Vistar Publications, 1987).

Anderson, Walter K. *The Rashtriya Swayam Sevak Sangh,* Economic and Political Weekly, 11, 18, 25, and 1 April 1972.

Balakrishnan, V. And Leela Devi, R., *Mannath Padmanabhan and the Revival of Nairs in Kerala* (New Delhi, Vikas Publishers, 1982).

Bartarya, S. C., *Indian Nationalist Movement,* (Allahabad, India Press Publicationas, 1958).

Bateille, A., *Castes-Old and New,* (Bombay, Asia Publishing House. 1969).

Baxtar, Craig, *The Jana Sangh, A Biography of and Indian Political Party,* (Philadelphia, University of Pensylvania Press, 1969).

Bhaskaran N. K., *Democratic Movement in Travancore,* Unpublished Ph. D. dissertation, University of Kerala, 1983.

Bhishikar, C.P., *Kesar Sangh Nirmatha,* (M), Trans. R. Hari, (Cochin Kurukshetra Publieations, 1981).

Bose, Subhash Chandra, *Indian Struggle,* (Calcutta, Netaji Publishing Society, 1948).

Chagla, M. C. *Hindu Rashtra and Muslims,* Bavan's Journal 27 August 1978.

Chaitanya, Krishna, *Kerala,* (New Delhi, National Book Trust, 1972).

Chander, Jose (ed.), *Dynamics of State Politics,* Kerala (New Delhi, Sterling Publishers, 1987).

Chandra, Bipin, *Communalism in Modern India,* (New Delhi, Vani Educational Books, 1984).

Chaudhari Nirad, C., *Hinduism,* (New Delhi, BI Pbublications, 1979).

Chaudhari, *K. C., Role of Religion in Indian Politics,* (New Delhi, Sundeep Prakasan, 1978).

Chentarasseri, T.H.P., *Ayyankali* (M), (Trivandrum, Prabhath Book House, 1979).

Chintamani, Yajneswara, *Indian Pclitics Since the Mutiny,* (Allahabad, Kitabistan, 1947).

Chirol, Valentine, *India,* Indian Edition (New Delhi, Deep and Deep Publishers, 1983).

Choudhari, Sukhbir, *Growth of Nationalism in India,* 2 Vols. (New Delhi, Trimurthi Publishers, 1973).

Communist Party Keeralathil (M), 3 Vols. (Trivandrum, Chinta Publishers, 1987).

Curran, Jean A., *Militant Hinduism in Indian Politics,* A Study of the RSS, (New York, Institute of Pacific Relations, 1951).

Das, Durga, ed., *Sardar Patelis Correspondence* : 1945-50, 10 Vols. (Ahmedabad, Navajivan Publishing House, 1973).

Deshmukh, Nana, *RSS : Victim of Slander,* (New Delhi, Vision Books, 1979).

Ebenstein, *Modern Political Thought,* Indian Ed., (New Delhi, Oxford and IBH Publishing Co., 1970).
Ed., RSS : A Vision in Action, Bangalore, Jagaram Prakashan, 1988).

Elenjimittam, Antony. *Philosophy and Action of RSS for Hind Sawaraj,* (Bombay, Laxmi Publications, 1951).

Engineer, Asghar Ali, *A Theory of Communal Riots*, Seminar No. 291 Novermber 1983.

Fadia, Babulal, *Pressure Groups in Indian Politics,* (New Delhi, Radiant Publications, 1980).

Farquhar, J. N., *Modern Religious Movements in India,* Indian Ed., (Delhi, Munshi Manoharlal, 1967).

Ghose, Sankar, *Political Ideas and Movements in India,* (Bombay, Allied Publishers, 1975).

Gladstone, *J. W., Pratestant Christianity and People's Movement in Kerala,* (Trivandrum, Seminary Publications, 1984).

Godse, Nathuram, *May it Please your Honor,* (Pune, Vilasta Prakasan, 1968).

Golwalkar, M.S., *Bunch of Thoughts,* 4th Edition, (Bangalore, Vikram Prakasan, 1968)

Gopakumar, G., *Regional Political Parties and State Politics,* (New Delhi, Deep and Deep Publishers, 1986).

Gopakumar, G., *The Congress Party and State Politics,* (Delhi, Deep and Deep, 1984).

Goyal, D. R., *Rashtriya Swayam Sevak Sangh,* (New Delhi, Radhakrishna Prakasan, 1979).

Griffiths, Perciral, *The British Impact on India,* (London, Mac Donald, 1952).

Gupta, D. O., *Indian National Movement,* (New Delhi, Vikas Publications, 1970).

Guru, Natraj, *The World of the Guru,* (Ernakulam, Paico Publishing House, 1963).

Hadi, Abdul A. *Agitational Politics in Kerala,* Unpublished Ph. D. dissertation, University Kerala, 1983.

Hans, Khon, *A History of Nationalism in the East,* (London, George Routledge and Sons Ltd. 1929).

Hardgrave, *R.L., India, Government and Politics in a Developing Country,* (New York, Haroust Brace Jovanovich, 1975).

Hardgrave, Robert L, *Caste, Fission and Fusion,* Economic and Political Weekly, Special Number, July 1968.

Hartmann, Horst, Political Parties in India, (Meerut, Meenakshi Prakashan. 1980).

Hartmnn, H. *Change and Stability of the Indian Party System,* Political Science Review, Vol. 7 No. 3 and 4, 1968.

Havell, E.B., *The History of Aryan Rule in India,* (London, George G. Harap and Co. Ltd., 1915).

Hindu Religion and Indian Communism (M), (Cochin, Kurukshetra Publications, 1982).

Hindu Renaissance, (Bombay, Sahitya Sindhu, 1982).

Hinslay, F. H., *Nationalism and International System,* (London, Hodder and Stonghton, 1973).

Indian Nationalism, (New Delhi, Bharathiya Sahitya Sadan, 1969).

Indian Swathanthriya Samara Charithram (M), (Trivandrum, Chinta Publishers, 1982).

Indianisation (New Delhi, S. Chand and Co.).

Indra Prakash, *A Review of the History and Work of Hindu Maha Sabha,* (New Delhi, Hindu Maha Sabha Publications, 1952).

IV. Articles and Periodicals

Jayakar, M. R., *The Story of My Life,* 2 Vols., (Bombay, Asia Publishing House, 1950).

Jeelany, Saifuddin - Shri Guru Ji on the muslim problem

Jeffray Robin, *Culture of Daily Newspapers in India,* Economic and Political Weekly, 14 April, 1987.

Jeffrey, Robin, *The Decline of Nayar Dominance* : Society and Politics in Travancore, 1947-1968, (New Delhi, Vikas Publishing House, 1976).

Jhangiain Motilal A., *Jana Sangh and Swathantra,* A Profile of Rightist Parties in India, Bombay, Manaktalas, 1967).

Keer, Dhananjay, Savakar and His Times, (Bombay, Indian Printing Workes, 1950).

Kerala Yesterday, Today and Tomorrow, (Calcutta, National Book Agency, 1968).

Key, V. O., Politics, *Parties and Pressure Groups,* (New York, T. Y. Chowelland Co., 1964).

Khilnani, N. M., *India's Road to Independence,* (New Delhi, Sterling Publishers, 1987).

Kochanck, Stanley, *The Congress Party of India,* The Dynamics of One Party Democracy, (Princeton, Princeton University Press, 1988).

Kothari, Rajin, *Politics in India,* (Boston, Little Brown, 1970).

Lemercinier, Genevieve, *Religion and Ideology in Kerala,* (Louvain-La-nerve, Centre for Socio-Religious Research, University Catholique de Louvain, 1983).

Lowith, Kart Max Weber, and Karlmarx 1982

Madhok, Balarj, *India's Muslim Minority-Persecuted or Pampered,* IIlustrated Weekly of India, 9 January 1983.

Madhok, Balraj - Portrait of a Martyr (Bombay) 1969

Madhok, Balraj, Portrait of a Martyr, Biography of Syama Prasad Mookerjee, (New Delhi, Jaico Publishing House, 1969).

Mahadevan, T.M.P., Outlines of Hinduism, (Bombay, Chetna Ltd., 1956).

Mahajan, V. D., The Nationallist Movement in India, (New Delhi, Sterling Publishers, 1976).

Malkani, K. R., RSS Story, (New Delhi, Impe India Ltd., 1980).

Manjumdar, R. C., History of Freedom Movement in India, 5 Vols. (Calcutta, Firma, K. L., Mukhopadhyaya, 1963).

Marx and Vivekananda, (New Delhi, Sterling Publishers, 1987).

Marxist State Governments in India, (London, Printer Publishers, 1988).

Matter, Samuel, Native Life in Travancore, (London, W. H. Allen and Co., 1983).

Mehrotra, N. C., Todays Isms, (New Delhi, Atma Ram and Sons, 1983).

Mehta, Ashok and Patwardhan Achyut, Communal Triangle in India, (Bombay, Alavi Book Depot, 1942).

Menon, A. Sreedhara, Social and Cultural History of Kerala, (New Delhi, Sterling Publishers, 1979).

Menon, P. Shangoony, A History of Travancore from the Earliest Times, (Madras, Higginbothem, 1978).

Menon, V. P., Transfer of Power in India, (Princeton, Princeton University Press, 1975).

Miller, R. E., Mappila Muslims of Kerala, (Bombay, Orient Longman, 1976).

Minougue, K. R., Nationalism, (London, Methuen and Co. Ltd., 1969).

Mishra, B. B., The Indian Political Parties, (New Delhi, Oxford University Press, 1976).

Misthra, D. N., RSS Myth and Reality, (New Delhi, Vikas Publishing House, 1980).

Mitra, C. R., Sree Narayana Guru and Social Revolution, (Shertalai, Mitraji Publications 1979).

Moosath, C. K., Kelappan Enna Maha Manusyan (M), (Kottayam, National Book Staff, 1982).

Morris Jones, W.H., The Government and Politics of India, (London, Hutchinson University Library, 1964).

Nair Service Society, NSS Charitram, (M), (Changanassery, NSS Head Office, 1972).

Nair, K., Madhavan, Malabar Kalapom (M), Second Ed. (Calicut, Mathrubhoomi Publications, 1987).

Nair, R. Ramakrishnan, Social Structure and Political Development in Kerala, (Trivandrum, Kerala Academy of Political Science, 1976).

Namboodiripad, E. M. S., National Question in Kerala, (Bombay, People's Publishing House, 1952).

Narain Iqbal, ed., State Politics in India, (Meerut, Meenakshi Prakashan, 1976).

Narayan, Jayaprakash, Prison Diary, (Bombay, Popular Prakashan, 1977).

Nationalism, *Its Meaning and History*, (New York, V. Van Nostrand Co., 1968).

Nehru, Jawaharlal, Discovery of India, (Calcutta, Signet Press, 1946).

Noorani, A. G. *Non-Partisan Approach,* Seminar No, 174, February 1974.

Nossiter, T. J., Communism in Kerala, (New Delhi, Oxford University Press, 1982).

Overstreet, G. D. and Wind Miller, Communism in India, (Berkelay, University of California Press, 1959).

Palmer, Norman D., Indian Political System, 1960, (Boston, Houghton Mifflin Company, 1971).

Panikker, R. Sukumara, *Muslim League in Kerala*, Unpublished Ph. D. dissertation, University of Kerala, 1976.

Pannikar, K. M., A Survey of Indian History, (Bombay, Asia Publishing House, 1947).

Pannikar, K. M., Hindu Society at Cross roads, (Bombay, Asia Printing House, 1956).

Pannikksseri V., Doctor Palpu, (Trichur, Current Books, 1970).

Parameswaran, P., Sree Narayana Guru, the Prophet of Renaissance, (New Delhi, Suruchi Sahitya, 1979).

Pillai, E. Kunjan, Studies in Kerala History, (Kottayam, National Book Stall, 1970).

Pillai, K, Bhashara, Chattampi Swamikal (M), (Trivandrum, Vidyadhiraja Sabha, 1978).

Pillai, K. Gopalakrishna, Ed., Mannathinte Sampoorna Krithikal (M), (Kottayam, Vidyarthi Mitram, 1977).

Pochhammer, W. V., India's Road to Nationhood, (New Delhi, Allied Publishers, 1981).

Political Trends in India, (New Delhi, S. Chand and Co., 1959).

Prasad, Birendra, Indian Nationalism and Asia, 2 Vols. (New Delhi, B. R. Publishing Company, 1979).

Puri, Geetha, Bharatheeya Jana Sangh, (New Delhi, Sterling Publishers, 1980).

Raj, Ramachandra, Functions and Disfunctions of Social Conflict, (Bombay, Popular Prakashan, 1974).

Rajendran, N., Ezhava Community and Kerala Politics, (Trivandrum, Kerala Academy of Political Science, 1974).

Ram, G. M., Bible of Hinduism, (New Delhi, Allied Publishers, 1985).

Ramdas, G. Bhatka, ed., Political Alternatives in India, (Bombay, Popular Prakashan, 1967).

Ranade, Eknath, Comp. Swami Vivekananda's Rousing Call to the Hindu Nation, (Calcutta, Swastik Prakashan, 1963).

Rao, M. S. A., Social Movements and Social Transformation, Backward Class Movement in India, (New Delhi, Mac Millan, 1979).

Rasthore, L. S., Political Sociology, (Meerut, Meenakshi Prakashan, 1982).

Resolutions passed by Pranthiya Prathinidhi Sabha (Kerala) of RSS 1979 to 1988.

Sadasivan, S. N., Party and Democracy in India, (New Delhi, Tata McGraw Hill Publishing Co. Ltd., 1977).

Sanu, M. K., Sahodaran Ayyappan (M), (Kottayam, D. C. Book, 1980).

Sartori, Giovanni, Parties and Party Systems, (London, Cambridge University Press, 1976).

Savarkar, V. D. - Historic Statements (Bombay) 1971

Savarkar, V. D., Hindutva, (Bombay, Veer Savarkar Prakashan, 1969).

Shash, Giriraj, India Rediscovered, (New Delhi, Abhinav Publications, 1975).

Sheshadri, H. V., Ed., Dr. Hedgewar, the Epoch Maker, Bangalore, Sahitya Sindhu, 1981).

Singh, K. Jaswant, *Alienationa*, Seminar No. 315, September 1985.

Sinha, B. M., Operation Emergency, (New Delhi, Hind Pocket Books, 1977).

Sitaramayya, Pattabhi B., History of Indian National Congress, 2 Vols. (New Delhi, S. Chand and Co., 1969).

Sixty Years of RSS, Hindu World, December 1985.

Smith, Antony D., Nationalism in the Twentieth Century, (Oxford, Martin Robertson and Co. Ltd., 1979).

Smith, Vincent A., The Oxford History of India, (Oxford, Oxford University Press, 1958).

Socialism, *Democracy and Nationalism,* (Bombay, Allied Publishers, 1973).

Spratt, Philip, Hindu Culture and Personality, (Bombay, Manaktalas, 1966).

Sreeniva, M. N., Social Change in Modern India, (New Delhi, Orient Longman, 1972).

The Imperative, Seminar No. 298, June 1984.

The Nation, its Malady and Remedy, (Cochin, RSS State Office, Kerala, 1969).

The Politics of Scarcity, (Chicago, University of Chicago Press, 1962).

The RSS, *Resolutions* passed by All India Prathinidhi Sabha of RSS 1982-88.

The Tragic Story of Partition, (Bombay, Jagaram Prakashan, 1982).

Thomas E. J., Coalition Game Politics in Kerala after Independence, (New Delhi, Intellectual Publishing House, 1985).

Thomas, Cyriac, *Church and Politics in Kerala,* 1947-72, Unpublished Ph. D. dissertation, University of Kerala, 1977.

Thomsons, Joseph, Kerala Guide and Trade Directory, (Ernakulam, J. Thomsons and Co., 1960).

Thurston, E., Castes and Tribes of South India, 2 Vols., (New Delhi, Cosmo Publications, 1975).

Upadhyaya, Deendayal, Integral Humanism, (New Delhi, Navchetan Press, 1968).

V. Unpublished Thesis and Records

Varma, V. P., Modern Indian Political Thought, (Agra, Lakshmi Narain Agarwal Educational Publishers, 1978).

Verma, S. L. *Problems of Measuring Communalism in India*, Indian Journal of Political Studies, Vol. II December 1987.

Victor, M. Fic, Kerala Yenan of India, (Bombay, Nachiketa Publications, 1970).

We or our Nationhood Defined, 4th Edition, (Nagpur, M. N. Kate, 1947).

Weiner Myron, Party Politics in India, (Princeton, Princeton University Press, 1957).

What RSS Should Do, Indian Express, 22 September 1987.

Woodcock, George, Kerala, A Portrait of the Malabar Coast, (London, Faber and Faber, 1967).

बबेजा, कृष्ण कुमार – राष्ट्रीय आपदाओं के समय गुरूजी का मार्ग दर्शन (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

बर्थ्वाल, हरिश्चन्द्र – राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एक परिचय (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

वाजपेयी, माणिकचन्द्र – संघ की पहली अग्नि परीक्षा (1993)

विरमानी, मदनलाल – भारत विभाजन का दुःखान्त और संघ (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

बैद्य, मा0 गो0 – व्यक्ति व राष्ट्रीय चरित्र गुरूजी के दृष्टिकोण से (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

बंकर, राधेश्याम – गुरूजी जीवन प्रसंग (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

चन्द्र, सुधीर – हिन्दु, हिन्दुत्व, हिन्दुस्तान (राजकमल प्रकाशन दिल्ली)

चक्र, सुदर्शन सिंह – हमारी संस्कृति (वाणी प्रकाशन, दिल्ली)

दत्त, योगेन्द्र – हमारी सांस्कृतिक धरोहर (वाणी प्रकाशन, दिल्ली)

दाणी, प्रभाकर बलवंत – संघ दर्शन (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

दुबे, अभय कुमार – भारत का भूमण्डलीयकरण (वाणी प्रकाशन, दिल्ली)

देवरस, बाला साहब – हिन्दु संघटन व सत्तावादी राजनीति (जाग्रति प्रकाशन, नोएडा)

कुमार, आनन्द – भारतीय समाज की संरचना (विवेक प्रकाशन, दिल्ली)

केतकर, सुरेश राव – सघ कार्यकर्ता विचार साधना नागपुर

कौशलेन्द्र – संघ कार्यकर्ता तथा विविध विषय (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

गुरूदत्त – भारत में राष्ट्र (राजकमल प्रकाशन)

गुरूदत्त – वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान हिन्दू राष्ट्र

गुप्ता, बंजरंग लाल – श्री गुरूजी का आर्थिक चिन्तन (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

गोलवलकर, माधवराव – संघ दर्शन (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

पराडकर, श्रीधर — अमृतवाणी श्री गुरूजी (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

पालकर, ना. हा. — डा0 हेडगेवार चरित्र (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

भिशीकर, चन्द्रशेखर परमानन्द — संघ वृक्ष के बीज (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

भिशीकर, चन्द्रशेखर परमानन्द — नवयुग प्रर्वतक श्री गुरूजी (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

महाजन, धर्मवीर — भारत की सांस्कृतिक विरासत (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली)

मोडक, अशोक — व्यक्ति व राष्ट्रीय चरित्र गुरूजी के दृष्टिकोण से (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

मोहन, नरेन्द्र — भारतीय संस्कृति प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

शापित, मुरारी लाल — राष्ट्र चिन्तक डा0 हेडगेवार (साधना पब्लिकेशन, दिल्ली)

सिन्हा, राकेश — डा0 केशव बलिराम हेडगेवार (सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली)

सोनी, सुरेश — हमारी सांस्कृति विचारधारा के मूल स्रोत (लोकहित प्रकाशन, लखनऊ)

हुसैन, आबिद — भारत की राष्ट्रीय संस्कृति (नेशनल ट्रस्ट बुक, नई दिल्ली)

II. (लेख) Article

शर्मा, महेश चन्द्र — संघ परिवार से लड़ने का परिणाम (दैनिक जागरण 14 जून, 1993)

कसोलरी, मार्त्सिया — हिन्दू राष्ट्रवादियों के विदेशी प्रेरणा स्रोत (राष्ट्रीय सहारा 11 मार्च, 2000)

वैध, माधव गोविन्द — पोशाक बदली अंदाज नहीं (हिन्दुस्तान 7 अक्टूबर, 2000)

सिंह, भगवान — एक ही नाव पर सवार संघ और सरकार (राष्ट्रीय सहारा 2 नवम्बर, 2002)

लिमये, मधु — आर. एस. एस. एक परिचय (राष्ट्रीय सहारा 11 मार्च, 2000)

कपूर, मस्तरा — नव नाजीवाद का उभार (राष्ट्रीय सहारा 11 मार्च, 2000)

माधवराम — सरकार से मतभेद है भाजपा से नहीं (राष्ट्रीय सहारा 2 नवम्बर, 2002)

सौरभ, प्रदीप — सत्ता रास आयी संघ को (हिन्दुस्तान 7 अक्टूबर, 2000)

ठेगड़ी, दत्तोपंत — संघ वृक्ष का बीज (पाञ्चजन्य 6 अप्रैल, 2003)

कुमार, आनन्द — ऐसे तो आर. एस. एस. को गरियाते ही रह जाओगे (हिन्दुस्तान 7 अक्टूबर, 2000)

पुंज, बलवीर — देशभक्ति के पुंज हेडगेवार (दैनिक जागरण 22 अप्रैल, 2003)

राय, आलोक — संघ परिवार की दुविधा (राष्ट्रीय सहारा 2 नवम्बर, 2002)

बाजपेयी, अखिलेश	–	संघ अब चुनावी राजनीति में खुलकर सक्रिय (अमर उजाला, 7 मार्च, 2004)
सोनी, सुरेश	–	हम भाजपा के समर्थक भी और आलोचक भी (राष्ट्रीय सहारा 11 मार्च, 2000)
खाँ अमलेन्दु भूषण	–	संघ में राजनीतिक महत्वाकांक्षा की झलक नहीं (राष्ट्रीय सहारा, 11 मार्च, 2000)
नकवी, मुख्तार अब्बास	–	संघ सही और हम भी (राष्ट्रीय सहारा 2 नवम्बर, 2002)
भदौरिया, ओमकार सिंह	–	भूमण्डलीयकरण का भारतीयकरण (स्वदेश 6 अगस्त, 2004)
शुक्ल, भानुप्रताप	–	राज्यपालों को हटाना गैर कानूनी (स्वदेश 12 जुलाई, 2004)
मिश्र, दीनानाथ	–	संघ परिवार छवि और यथार्थ (दैनिक जागरण 4 मार्च, 2000)
शुक्ल, भानु प्रताप	–	संघ के तिरस्कार की साजिश (दैनिक जागरण 2 मई, 2005)
शुक्ल, संजीव	–	दो दशक से दुगुनी शाखायें (हिन्दुस्तान 7 अक्टूबर, 2000)
मेहता, ओम प्रकाश	–	यहाँ तो मुसलमान भी शाखाओं में (हिन्दुस्तान 7 अक्टूबर, 2000)
मिठौलिया, राज	–	लाल दुर्ग के कोने में भगवा (हिन्दुस्तान 7 अक्टूबर, 2007)
जोशी, प्रवास	–	एक और असंवैधानिक सत्ता केन्द्र से निपटना (राष्ट्रीय सहारा 2 नम्बर, 2002)
इस्लाम, शम्सुल	–	संघ टोली का मुसलमानों पर उमड़ता प्यार (हिन्दुस्तान 4 मई, 2004)

पाण्डेय, गोपेश	–	तो आखिर 'हिन्दुत्व' से क्यों परहेज कर रही भाजपा (दैनिक आज 4 मई, 2005)
मोहन, नरेन्द्र	–	सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय राजनीति (दैनिक जागरण, 28 अक्टूबर, 2001)

III. पत्र एवं पत्रिकाएं (Magzines)

इण्डिया टुडे	–	नई दिल्ली
आउटलुक	--	नई दिल्ली
सरस सलिल	–	नई दिल्ली
दलित चेतना	–	नई दिल्ली
असली भारत	–	नई दिल्ली
हंस	–	नई दिल्ली
पाञ्चजन्य	–	नई दिल्ली
परीक्षा मंथन	–	इलाहाबाद
पाथेकण	–	जयपुर
कर्मदर्शन	–	लखनऊ
राष्ट्रधर्म	–	लखनऊ
पथ संकेत	–	लखनऊ
टाईम्स आफ इण्डिया	–	नई दिल्ली
नव भारत टाईम्स	–	नई दिल्ली
स्वतन्त्र भारत	–	नई दिल्ली

हिन्दुस्तान — नई दिल्ली

राष्ट्रीय सहारा — लखनऊ

जनसत्ता — लखनऊ

अमर उजाला — लखनऊ

दैनिक जागरण — लखनऊ

स्वदेश — भोपाल

दैनिक भास्कर — भोपाल